उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

(अप्रैल, 2022 – सितम्बर, 2022)
वर्ष 19, अंक 1

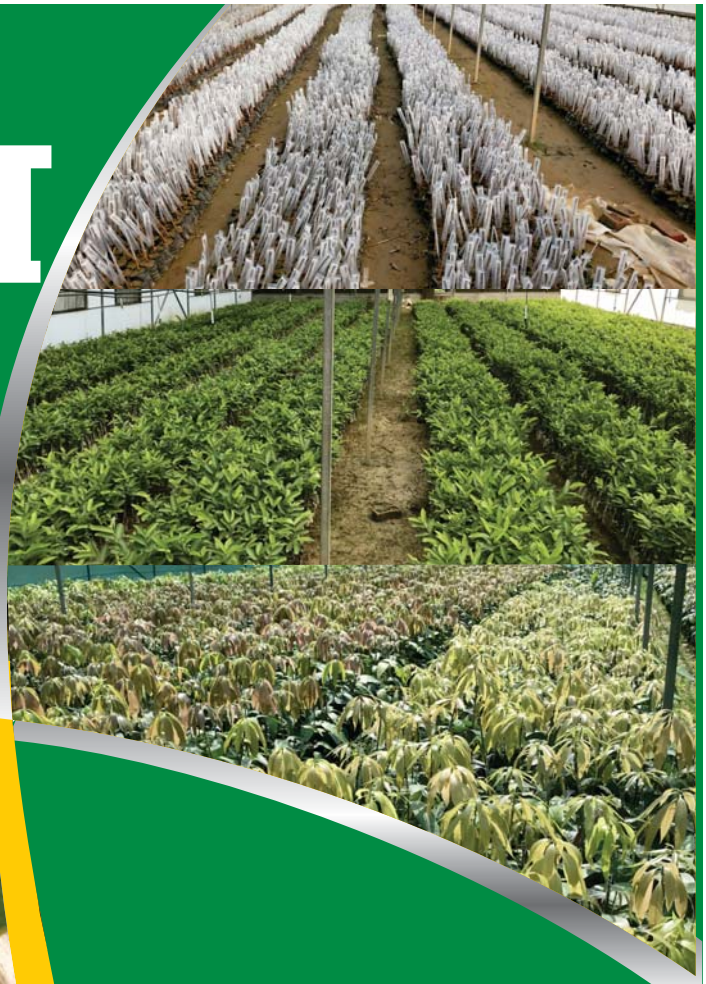

G20
भारत 2023 INDIA
वसुधैव कुटुम्बकम्
ONE EARTH • ONE FAMILY • ONE FUTURE

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, मो.: 6306935633
ई-मेल : cish@icar.gov.in वेबसाइट : www.cish.icar.gov.in

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
CENTRAL INSTITUTE FOR SUBTROPICAL HORTICULTURE
ISO : 9001-2015

संस्थान की राजभाषा गतिविधियाँ

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agrisearch with a human touch

स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, समृद्ध भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

उद्यान रश्मि

राजभाषा पत्रिका

(अप्रैल, 2022 – सितम्बर, 2022)
वर्ष 19, अंक 1

भाकृअनुप
ICAR

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, मो. : 6306965633
ई-मेल : cish@icar.gov.in वेबसाइट : www.cish.icar.gov.in

ISO : 9001-2015

राजभाषा पत्रिका
(अप्रैल, 2022 - सितम्बर, 2022)
वर्ष 19, अंक 1

© भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ

संरक्षक एवं प्रकाशक
टी. दामोदरन
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
रहमानखेड़ा, लखनऊ-226101, उ.प्र.

संपादन मंडल
अंजू बाजपेई
ए.के. त्रिवेदी
के.के. श्रीवास्तव
प्रीति शर्मा
सुमित कुमार सोनी

डिजाइनिंग
सुभाष पाण्डेय

अस्वीकरण
इस पत्रिका में प्रकाशित तथ्यात्मक लेखों के लिए लेखक ही उत्तरदायी हैं न कि भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ, इसके प्रकाशक, संरक्षक या संपादन मंडल। फिर भी उपयोगकर्ताओं को यह सलाह दी जाती है कि पत्रिका में दी गयी जानकारियों को उपयोग में लाने से पूर्व लेखक या किसी अन्य विशेषज्ञ से अनिवार्य रूप से विचार-विमर्श कर/सलाह लेकर ही प्रौद्योगिकियों, तकनीकियों आदि का प्रयोग करें। अनेक प्रयास के बावजूद टंकण संबंधी त्रुटियाँ रह सकती हैं।

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ-226 101
फोन : 0522-2841022-24, मो. : 6306965633
मीडिया संसाधन कक्ष नं : 0522-2841082
ई-मेल : cish@icar.gov.in
वेबसाइट : www.cish.icar.gov.in

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की,
सुखद प्रतीक हरित भारत की,
कृषिधन, पशुधन मानव जीवन,
दुग्ध, मत्स्य, फल, यंत्र सुवर्धन,
वैज्ञानिक विधि नव तकनीकी,
पारिस्थितिकी का संरक्षण,
सस्य-श्यामला छवि भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।

हिम प्रदेश से सागर तट तक,
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक,
हर पथ पर है, मित्र कृषक की,
शिक्षा, शोध, प्रसार सकल तक,
आशा स्वावलंबित भारत की,
जय जय कृषि परिषद भारत की।
जय जय कृषि परिषद भारत की।।

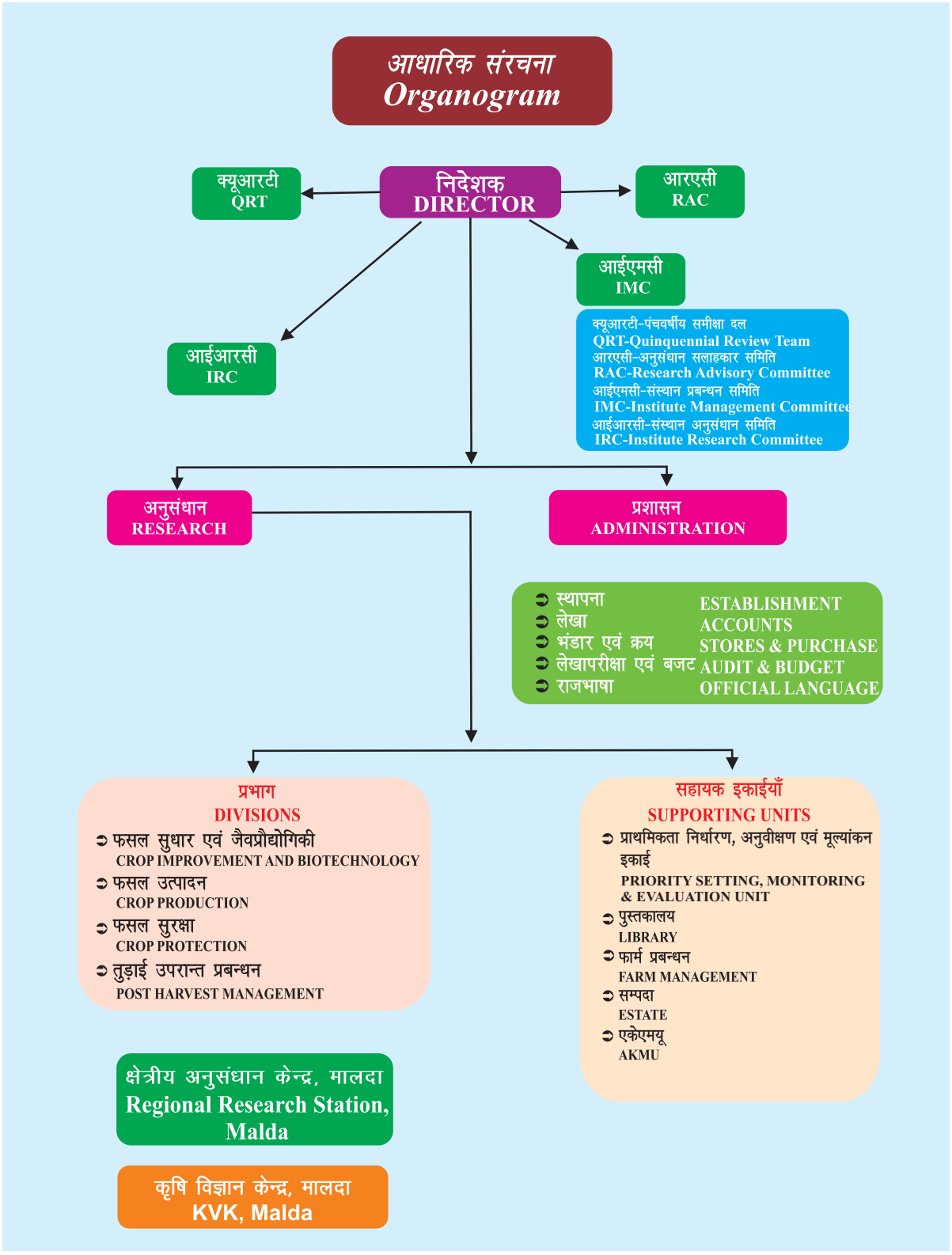
आधारिक संरचना
Organogram
निदेशक
DIRECTOR
क्यूआरटी
QRT
आरएसी
RAC
आईएमसी
IMC
आईआरसी
IRC
क्यूआरटी-पंचवर्षीय समीक्षा दल
QRT-Quinquennial Review Team
आरएसी-अनुसंधान सलाहकार समिति
RAC-Research Advisory Committee
आईएमसी-संस्थान प्रबन्धन समिति
IMC-Institute Management Committee
आईआरसी-संस्थान अनुसंधान समिति
IRC-Institute Research Committee
अनुसंधान
RESEARCH
प्रशासन
ADMINISTRATION
स्थापना ESTABLISHMENT
लेखा ACCOUNTS
भंडार एवं क्रय STORES & PURCHASE
लेखापरीक्षा एवं बजट AUDIT & BUDGET
राजभाषा OFFICIAL LANGUAGE
प्रभाग
DIVISIONS
फसल सुधार एवं जैवप्रौद्योगिकी
CROP IMPROVEMENT AND BIOTECHNOLOGY
फसल उत्पादन
CROP PRODUCTION
फसल सुरक्षा
CROP PROTECTION
तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन
POST HARVEST MANAGEMENT
सहायक इकाईयाँ
SUPPORTING UNITS
प्राथमिकता निर्धारण, अनुवीक्षण एवं मूल्यांकन इकाई
PRIORITY SETTING, MONITORING & EVALUATION UNIT
पुस्तकालय
LIBRARY
फार्म प्रबन्धन
FARM MANAGEMENT
सम्पदा
ESTATE
एकेएमयू
AKMU
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मालदा
Regional Research Station, Malda
कृषि विज्ञान केन्द्र, मालदा
KVK, Malda

प्राक्कथन

जनसंख्या वृद्धि और शहरीकरण के कारण बढ़ते तनाव ने सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है जिनकी भविष्य में और अधिक बढ़ने की संभावना है। बागवानी का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है और इसका कृषि जीडीपी में 30.4 प्रतिशत योगदान है। बागवानी के उत्थान द्वारा समाज के आर्थिक उन्नयन के साथ साथ पर्यावरण उत्थान और सामाजिक सामंजस्य भी स्थापित होता है। केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान इस क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाते हुए आम, अमरूद, जामुन, आंवला, बेल आदि फलों पर शोध द्वारा न केवल बागवानी से जुड़े किसानों को व्यवसाय द्वारा आय वृद्धि में योगदान दे रहा है बल्कि मानव स्वास्थ्य में फलों के महत्वपूर्ण योगदान पर भी जागरूकता बढ़ा रहा है। आनुवांशिक संसाधन का उपयोग, उत्पादन दक्षता बढ़ाना एवं उत्पादन हानि को पर्यावरण हितैषी तरीकों से कम करना आदि इस क्षेत्र के अनुसंधान की प्राथमिकताएं हैं। भारत की विकासशील अर्थव्यवस्था में बागवानी हेतु आवश्यक ज्ञान के साथ सस्ती तकनीक और पोषण सम्बन्धी जानकारी द्वारा समाज के स्वास्थ को प्राथमिकता देना भी हमारा दायित्व है।

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ की राजभाषा पत्रिका के नूतन अंक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यंत गर्व का अनुभव हो रहा है। यह संस्थान, संस्थान की विकसित तकनीकों और बागवानी संबंधित ज्ञान को हिन्दी में प्रकाशित करता रहा है ताकि अधिक से अधिक लोग इसका लाभ प्राप्त कर सकें।

संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'उद्यान रश्मि' के इस संस्करण में उपरोक्त नूतन जानकारियों का समावेश है। संस्थान द्वारा राजभाषा के क्षेत्र में विशेष प्रयास किया जा रहा है और उसी कड़ी में हम 'उद्यान रश्मि' का नियमित प्रकाशन करते रहे हैं। इसके प्रकाशन में संस्थान के समस्त वैज्ञानिकों के विशेष योगदान के लिए उनका साधुवाद। इस अंक के प्रकाशन के लिए संपादक मंडल का बहुमूल्य योगदान है, जो अत्यन्त सराहनीय है।

टी. दामोदरन
निदेशक

संपादकीय

भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान की ओर से प्रकाशित राजभाषा पत्रिका ''उद्यान रश्मि के उन्नीसवें वर्ष का प्रथम अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस पत्रिका में राजभाषा अनुभाग की गतिविधियों के अलावा संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों एवं कृषि क्षेत्र में संलग्न सभी शोधकर्ताओं की ओर से सृजित ज्ञानप्रद एवं उपयोगी लेख, रिपोर्ट, आदि प्रकाशित किए गए हैं। इस अंक में वाणिज्यिक बागवानी में उगाई जाने वाले फल, उन्नत किस्में, उनकी रोपण सामग्री, मीडिया और फीड, उत्पादन प्रणालियों, फसल संरक्षण और फसल कटाई उपरांत प्रबंधन और प्रसंस्करण के लेख शामिल हैं। यह पत्रिका बागवानी क्षेत्र से संबंधित नवोदित शोधकर्ताओं को भी विभिन्न विषयों पर हिन्दी में लेख लिखने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती है, जिससे हिन्दी में वैज्ञानिक सृजन को नयी दिशा मिलती है। अभी तक संस्थान प्रगतिशील बागवानी किसानों के लिए अनेक प्रकाशन निकाल चुका है जिसको सभी ने सराहा है।

संस्थान द्वारा प्रक्षेत्र में जैविक खेती की उपयोगिता के दृष्टांत उसकी विधाओं पर शोध और प्रयोग किये गए हैं तथा उसको लोकप्रिय बनाने के लिए इस पत्रिका में विशेष स्थान दिया गया है। बेल, आँवला जैसे स्थानीय फलों को भी बढ़ावा दिया गया है। बागवानी फसलों में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका पर भी लेख लिखे गए हैं।

यह प्रयास, जिसमें संस्थान की गतिविधियों के साथ–साथ सृजित वैज्ञानिक साहित्य भी उपलब्ध हो एवं उसे जन मानस तक पहुँचाना बहुत आवश्यक है। यह पत्रिका वैज्ञानिक लेखन में हिन्दी के प्रति सकारात्मक सोच उत्पन्न करेगी एवं किसी प्रकार के भाषा विरोध को भी दूर करेगी, ऐसा मेरा मानना है। भारत सरकार की राजभाषा नीति को और अधिक प्रभावी बनाने में यह हमारी प्रबल इच्छाशक्ति को दर्शाती है। इस अंक के प्रकाशन में सहयोग के लिए मैं संपादकीय मंडल का आभार प्रकट करती हूँ और निदेशक द्वारा प्रोत्साहन का भी सहर्ष धन्यवाद देती हूँ।

अंजू बाजपेई

(अंजू बाजपेई)
प्रधान वैज्ञानिक

विषय-वस्तु

1. **बेल की उन्नत खेती** 1–8
देवेन्द्र पाण्डेय, शिव पूजन एवं देवानंद गिरि
2. **जैविक खेती की उपयोगिता एवं विधायें** 9–18
राम अवध राम
3. **आम की वैश्विक प्रजातियों की उपयोगिता एवं संरक्षण** 19–23
आशीष यादव, पी.एल. सरोज, विशम्भर दयाल, विनीत सिंह एवं शैलेन्द्र राजन
4. **उच्च व्यावसायिक क्षमताओं से युक्त हैं फलों एवं सब्जियों के किण्वित उत्पाद** 24–27
नीलिमा गर्ग एवं संजय कुमार
5. **उत्तर प्रदेश में फल प्रसंस्करण की वर्तमान परिदृश्य एवं संभावनाएं** 28–32
संजय कुमार सिंह, आलोक कुमार गुप्ता, कर्म वीर एवं अजय कुमार त्रिवेदी
6. **आम के जान लेवा रोग और उनका प्रबंधन** 33–36
पी.के. शुक्ल, निधि कुमारी एवं हरिपाल सिंह
7. **नीबू वर्गीय फलों में लगने वाले कीट और उनकी रोकथाम** 37–40
हरि शंकर सिंह एवं गुंडप्पा बी.
8. **फल पक्वन, समस्या और समाधान** 41–42
कर्म वीर, अनिल कुमार वर्मा, आलोक कुमार गुप्ता, रवि एस.सी. एवं नीलिमा गर्ग
9. **अधिक छायादार एवं अनुत्पादक आम के बाग का जीणोद्धार** 43–46
कंचन कुमार श्रीवास्तव, दिनेश कुमार, श्यामराज सिंह एवं इसरार अहमद
10. **आम के पुष्पन एवं फलन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव** 47–49
शरद कुमार द्विवेदी एवं विशम्भर दयाल
11. **मौसमी फल और सब्जी का आहार–स्वस्थ जीवन का आधार** 50–53
आभा सिंह, कर्मवीर एवं रवि एस.सी.
12. **फसल विविधीकरण से पर्यावरण एवं आय सुरक्षा** 54–57
नरेश बाबू, तरुण अदक एवं अरविन्द कुमार
13. **बागवानी उत्पादन और व्यापार की दिशा में डिजिटल क्रांति की भूमिका** 58–59
हरीश चन्द्र वर्मा एवं तरुण अदक
14. **बागवानी फसलों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता** 60–63
स्वास्ती शुभदर्शिनी दास, विशम्भर दयाल, एच.सी. वर्मा, इसरार अहमद, मुथ्थूकुमार एम. एवं देवेन्द्र पाण्डेय

15. **उपोष्ण फलों की जैव विविधता संरक्षण में किसानों की सहभागिता** **64—66**
स्वास्ती शुभदर्शिनी दास, विशम्भर दयाल, अमर कांत कुशवाहा, मनीष मिश्रा, आशीष यादव, अंशुमान सिंह एवं देवेन्द्र पाण्डेय

16. **सूक्ष्म सिंचाई : किसानों के लिए एक वरदान** **67—69**
कर्म वीर, आलोक कुमार गुप्ता, रवि एस.सी., आभा सिंह एवं विशम्भर दयाल

17. **केले की खेती** **70—76**
विशम्भर दयाल, शरद कुमार द्विवेदी, आशीष यादव एवं वीरेन्द्र कुमार गौतम

18. **आंवला (*एम्ब्लिका ओफ्फिसिनालिस* जी.) के पोषण एवं औषधीय गुण** **77—79**
सुमित कुमार सोनी, लक्ष्मी, यशी बाजपेई, अंजू बाजपेई एवं देवेन्द्र पाण्डेय

19. **बेल के पोषण एवं औषधीय गुण** **80—84**
सुमित कुमार सोनी, लक्ष्मी, यशी बाजपेई, अंजू बाजपेई एवं देवेन्द्र पाण्डेय

20. **टमाटर की जैविक खेती** **85—89**
अवधेश कुमार, रवीन्द्र कुमार, राजीव कुमार, प्रज्ञा ओझा, भगवान दीन एवं विशम्भर दयाल

21. **पपीते की बागवानी से सेहत एवं लाभ कमाए** **90—94**
दिनेश कुमार, के.के. श्रीवास्तव, एस.आर. सिंह एवं इसरार अहमद

22. **आधुनिक तरीके से करें आम की बागवानी** **95—98**
नरेश बाबू, सुभाष चंद्र एवं अरविन्द कुमार

23. **आधुनिक विधि से बेर उत्पादन एवं प्रबंधन** **99—103**
लवकुश पाण्डेय, संजय पाठक, शिव पूजन एवं रितेश सिंह

24. **फलों के अपशिष्ट का निस्तारण तथा आर्थिक उपयोग** **104—108**
अजय कुमार त्रिवेदी

24. **संस्थान में राजभाषा गतिविधियाँ (2022)** **109—112**
अरविन्द कुमार

बेल की उन्नत खेती

देवेन्द्र पाण्डेय[1], शिव पूजन[2] एवं देवानंद गिरि[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

परिचय

बेल (*एगल मार्मेलास* लिन. *कोरिया*) भारत के देशज वृक्षों में से एक द्विव्य वृक्ष है। भारत में उगाये जाने वाले फलो में बेल काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है एवं अपनी विशिष्ट एवं विविध गुणवत्ता के कारण काफी लोकप्रिय है। बेल के पंचाग (जड़, छाल़, पत्तें, शाख एवं फल) को औषधीय गुणो के लिए जाना जाता है एवं इसका उपयोग आयुर्वेदिक दवा बनाने में किया जाता है। ऐसा कहा गया है कि रोगान् विलति भिनन्ति इति बिल्ब अर्थात रोगों को नाश करने वाला बेल कहलाता है। भगवान शिव की पूजा में उपयोग के कारण बेल को 'शिव फल' भी कहा जाता है। बेल में विपरीत परिस्थिति के प्रति सहनशीलता, जनन द्रव्यों की विविधता, कम देख भाल में अधिक उत्पादकता और विभिन्न प्रकार के परिरक्षित पदार्थ बनाने के लिए सुग्राहिता के साथ बदलती जलवायु और औषधियों गुणों से भरपूर होने के कारण लोगो की रूचि इस फल की तरफ दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है।

भारत में बेल की प्रचुर आनुवांशिक विविधता पायी जाती है। विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़ एवं ओडिशा राज्यों में बेल के वृक्ष बहुतायत में मिलते हैं। भारत के अतिरिक्त कुछ दूसरे देशों जैसे श्रीलंका, पाकिस्तान, नेपाल, म्यांमार, बांग्लादेश, वियतनाम, लाओस, थाईलैण्ड आदि में भी बेल की खेती लघु स्तर पर की जाती है। यद्यपि बेल की उत्पत्ति भारत के उपोष्ण क्षेत्रों में मानी जाती है परन्तु यह उष्ण, शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जाता है। भारतीय उत्पत्ति होने के बावजूद भी बेल की व्यावसायिक खेती अभी भी सीमित स्तर पर की जा रही है और यह मुख्यतः मैदानी और कुछ पहाड़ी क्षेत्रों के शुष्क वनों में जंगली या अर्द्ध–जंगलीअवस्था में प्रचुरता से पाया जाता है। बेल के वृक्ष घरों की शाक–वाटिकाओं, सामुदायिक भूमियों और मन्दिरों में भी सामान्यतः पाए जाते हैं।

[1]पूर्व निदेशक,[2,3]शोध छात्र

क्षेत्रफल एवं उत्पादन

भारत में अभी भी बेल की खेती व्यवस्थित रूप में नहीं की जा रही है जिस कारण से बेल के अन्तर्गत क्षेत्रफल और कुल फलोत्पादन के सटीक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। विगत कुछ वर्षों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा बेल के आनुवांशिक सुधार एवं उन्नत फसल प्रबंधन हेतु कई अनुसंधान योजनाएं चलाई गई हैं जिनसे उन्नत प्रजातियों और फसल प्रबंधन की नई तकनीकियों का विकास सम्भव हुआ है। प्रवर्धन के तौर–तरीकों में भी महत्वपूर्ण प्रगति हुई है और अधिक उत्पादक प्रजातियों के पौधों की सुगम उपलब्धता भी सुनिश्चित हुई है। इस कारण से कुछ प्रगतिशील किसानों ने बेल की व्यावसायिक खेती में रूचि लेना प्रारम्भ किया है और वो बेल की व्यावसायिक खेती कर रहे हैं। छोटे स्तर पर व्यावसायिक खेती के अतिरिक्त भारत के कुछ भागों में जंगलों एवं सड़कों के किनारे बेल के बीज प्रवर्धित वृक्ष भी पाए जाते हैं। वर्तमान में भारत में बेल का कुल फलोत्पादन लगभग 1000 टन है।

भूमि एवं जलवायु

बेल किसी भी प्रकार की जलवायु में पैदा किया जा सकता है। परन्तु उपयुक्त जल निकास युक्त बलुई दोमट भूमि इसकी खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त होती है। ऊसर, बंजर, कंकरीली, खादर एवं बीहड़ भूमि जैसी समस्याग्रस्त क्षेत्रों में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। वैज्ञानिक विधि से बेल की खेती के लिए 6–8 पी.एच. मान वाली भूमि अधिक उत्तम होती है। परन्तु ऊसर भूमि में जिसमे विनिमयशील सोडियम 30 प्रतिशत, पी.एच. मान 8.5 तथा विद्युत चालकता 9 सिमेन्स प्रति मीटर तक हो तो भी इसकी व्यावसायिक रूप से खेती की जा सकती है। इसकी बागवानी समुन्द्र तल से 1200 मीटर ऊँचाई तक और 7°–48° सेल्सियस तापमान तक सलतापूर्वक किया जा सकती है। मई–जून की गर्मी के समय इसकी

पत्तियाँ गिर जाती है। जिससे पौधों में शुष्क और अर्द्ध शुष्क जलवायु को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है।

प्रवर्धन

बेल में प्रवर्धन विभिन्न प्रकार की विधियों से किया जा सकता है। लेकिन व्यवसायिक रूप से चश्मा (पैच) विधि सबसे उत्तम और सरल मानी जाती है। इस विधि में अच्छे मूल वृंत की प्राप्ति के लिए बीजों की बुवाई मई–जून में 10–12 से.मी. की ऊँचाई एवं 1–10 मी. की क्यारियों (नर्सरी बेड) में 1–2 से.मी. की गहराई पर करना चाहिए। जब पौधा 6–8 से.मी. लम्बा क्यारियों में हो जाए तो उसको 45×45 से.मी. की दूरी पर पूर्व में बनाई दूसरी क्यारियों में रोप देते है या पॉलीथीन के बैग में (25×15 से.मी.) रोप देते है। वर्षा प्रारम्भ होने से पहले मई–जून के महीने में एक साल के पौधों पर एक महीने पुरानी शाखा (पेंसिल आकार का) से कलिका को चश्मा विधि से प्रवर्धन करने पर 90 प्रतिशत से अधिक सफलता प्राप्त किया जा सकता है। चश्मा विधि के साथ–साथ कुछ और विधियों जैसे सॉफ्ट वुड ग्राफ्टिंग से प्रवर्धन किया जा सकता है। स्व–स्थाने (इन–सीटू) पैच विधि से प्रवर्धन करके शुष्क क्षेत्रों में 95 प्रतिशत से ज्यादा सफलता प्राप्त किया जा सकता है। बेल के बीजो को फरवरी–मार्च के पहले सप्ताह में पॉलीथीन बैग में बुवाई करके मई–जून में इसके ऊपर सॉफ्ट–वुड ग्राफ्टिंग करने पर 65–75 प्रतिशत सफलता प्राप्त कर सकते है।

उन्नत प्रजातियाँ

अभी हाल के कुछ वर्षों तक बेल की कोई भी उन्नत प्रजाति ज्ञात नहीं थी। कुछ स्थानीय प्रजातियाँ जैसे–मिर्जापुरी, कागजी गोण्डा, कागजी इटावा,दरोगाजी और रामपुरी स्थान विशेष के किसानों द्वारा उगायी जा रही थीं। पिछले कुछ वर्षों में बेल की कई उन्नत प्रजातियों का विकास हुआ है। जिनमें कई अच्छे गुण जैसे–पेड़ का बौना आकार, फलों का मध्यम वनज (1.0–1.5 किलोग्राम), कम रेशा, कम बीज, अधिक कुल घुलनशील ठोस पदार्थ, पतला छिलका, कम म्यूसिलेज व उत्कृष्ठ स्वाद सम्मिलित हैं। इसी के साथ इन उन्नत प्रजातियों में फल फटने व गिरने की समस्या भी कम होती है और उन्हें विभिन्न कृषि–जलवायुवीय दशाओं में व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त पाया गया है। ऐसी कुछ उन्नत प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

सीआईएसएच बेल–1

यह बीजू पौधों से चयनित, मध्यम देरी से पकने वाली प्रजाति है जिसके फल अप्रैल–मई में तैयार होते हैं। इसके वृक्ष लम्बे, सीधे बढ़ने वाले, अधिक ओजवान, सघन छत्रक वाले व जल्दी एवं अधिक फल देने वाले होते हैं। इसके फल आकृति में अण्डाकार से लम्बाकार होते हैं। फलों की औसत लम्बाई 15–18 सेमी. एवं परिधि लगभग 40 सेमी. होती है। औसत फल वजन लगभग 1.0 किग्रा. होता है। फलों का छिलका पतला (लगभग 0.15 सेमी.), गूदा गहरा पीला एवं म्यूसिलेज की मात्रा कम एवं स्वाद उत्कृष्ट होता है। गूदे में बीज कम (35–40 बीज/फल) एवं गूदा अधिक (लगभग 65 प्रतिशत) होता है। पकने पर फलों का रंग नींबू जैसा पीला हो जाता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की अधिकता (लगभग 38° ब्रिक्स) के साथ ही कुल कैरोटिनायड्स (1.18 मिग्रा. प्रति 100 ग्रा.), कुल शर्करा (लगभग 20.5 प्रतिशत) एवं टैनिन (3.5 प्रतिशत) की अधिक मात्रा पायी जाती है। इसके फल प्रसंस्करण हेतु भी उपयुक्त होते हैं। 8–10 वर्ष की आयु वाले पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 50–80 किग्रा. तक फल मिलते हैं (चित्र–1)।

चित्र 1 : बेल प्रजाति सीआईएसएच बी–1

सीआईएसएच बेल–2

यह प्रजाति भी बीजू पौधों से चयनित की गई है। इसके पेड़ बौने और कम फैलाव वाले होते हैं। पेड़ विरले और लगभग काँटा रहित, जल्दी फल देने वाले और अधिक उत्पादक होते हैं। फलों की आकृति लम्बाकार से गोल, औसत लम्बाई लगभग 15 सेमी. एवं परिधि लगभग 53 सेमी. होती है। फलों का औसत वजन लगभग 2.25 किग्रा. होता है। गूदे का रंग पीला–नारंगी एवं छिलका पतला (लगभग 0.25 सेमी.) होता है। फलों में बीज एवं रेशे की मात्रा कम होती है और बीजों की संख्या लगभग 50 प्रति फल होती है। गूदे की कुल मात्रा लगभग 61 प्रतिशत होती है। फलों का स्वाद अच्छा एवं सुगन्ध उत्कृष्ट होती है। फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ लगभग 32.0° ब्रिक्स, कुल कैरोटिनायड्स लगभग 1 मिग्रा. प्रति 100 ग्रा. गूदा, कुल शर्करा लगभग 16 प्रतिशत एवं टैनिन की मात्रा लगभग 2.50 प्रतिशत होती है। 8–10 वर्ष की आयु वाले पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग से 60–90 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–2)।

चित्र 2 : बेल प्रजाति सीआईएसएच बेल–2

नरेन्द्र बेल–5

इस प्रजाति के पेड़ मध्यम ऊँचाई (3.0–5.0 मी.) के होते हैं और उनमें फल जल्दी लगते हैं। फल आकृति में गोल और दोनों शिराओं पर लगभग चिपटे होते हैं। फलों का आकार मध्यम (21×25 सेमी.) एवं औसत वजन 900–1000 ग्रा. होता है। गूदे में म्यूसिलेज, बीज एवं रेशे की मात्रा कम होती है। फलों में कुछ घुलनशील ठोस पदार्थ अधिक (35–38° ब्रिक्स) होते हैं और गूदे का स्वाद उत्कृष्ट होता है। 8–10 वर्ष की आयु वाले पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 50–60 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–3)।

चित्र 3 : बेल प्रजाति नरेन्द्र बेल–5

नरेन्द्र बेल–7

इस प्रजाति के पेड़ मध्यम ऊँचाई (5.0–7.0 मी.) एवं कम फैलाव वाले होते हैं। फलों की आकृति गोलाकार और दोनों शिरे चिपटे होते हैं। फलों का औसत वजन 3.0 से 4.5 किग्रा. होता है। गूदे में बीजों की संख्या और रेशे की मात्रा कम और मिठास मध्यम (कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 27–30° ब्रिक्स) होती है। 8–10 वर्ष की आयु वाले पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 70–80 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–4)।

चित्र 4 : बेल प्रजाति नरेन्द्र बेल–7

नरेन्द्र बेल–9

इस प्रजाति के वृक्ष मध्यम ऊँचाई के (4.0–6.0 मी.) और फैलाव वाले होते हैं। फल आकार में मध्यम (26×33 सेमी.), आकृति में लम्बाकार, चिकनी सतह वाले और बहुत मीठे (कुल घुलनशील ठोस 35–40° ब्रिक्स) होते हैं। फलों के गूदे में म्यूसिलेज और रेशे की मात्रा मध्यम होती है। गूदा कम बीजयुक्त नारंगी पीला व सुगन्धयुक्त होता है। पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 70–80 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–5)।

चित्र 5 : बेल प्रजाति नरेन्द्र बेल–9

नरेन्द्र बेल–16

इस प्रजाति के वृक्ष सीधे बढ़ने वाले एवं अर्द्ध सघन होते हैं। वृक्षों में कांटे मध्यम आकार के एवं बहुत कम होते हैं। इसके फलों में बीज अपेक्षाकृत अधिक (130 बीज/फल) होते हैं। फलों का औसत वजन लगभग 900 ग्रा. एवं कुल घुलनशील ठोस की मात्रा लगभग 35° ब्रिक्स होती है (चित्र–6)।

चित्र 6 : बेल प्रजाति नरेन्द्र बेल–16

नरेन्द्र बेल–17

इस प्रजाति के वृक्ष फैलाव वाले होते हैं और उनका छत्रक अर्द्ध–सघन होता है। वृक्षों में कांटो का आकार मध्यम एवं संख्या बहुत कम होती है। इसके फलों में बीज थोड़ा अधिक (लगभग 100 बीज/फल) होते हैं। फलों का औसत वजन लगभग 2.0 किग्रा. एवं मिठास अधिक (कुल घुलनशील ठोस लगभग 36.0° ब्रिक्स) होती है (चित्र–7)।

चित्र 7 : बेल प्रजाति नरेन्द्र बेल–17

पंत शिवानी

इस प्रजाति के वृक्ष लम्बे, ओजवान, घने, जल्दी व अधिक फल देने वाले होते हैं। फलों की आकृति अण्डाकार से लेकर लम्बाकार एवं औसत वजन लगभग 1.2 से 2.0 किग्रा. होता है। छिलका अपेक्षाकृत पतला एवं गूदे का रंग नींबू जैसा पीला होता है। गूदे में म्यूसिलेज कम जबकि बीजों की संख्या व रेशे की मात्रा कम से मध्यम होती है। फलों में गूदे की कुल मात्रा लगभग 69 प्रतिशत एवं कुल घुलनशील ठोस लगभग 35° ब्रिक्स होते हैं। इस प्रजाति के फलों की भण्डारण क्षमता अधिक होती है। पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 50–60 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–8)।

चित्र 8 : बेल प्रजाति पंत शिवानी

पंत अपर्णा

इस प्रजाति के वृक्ष बौने लटकती हुई शाखाओं वाले, विरले व लगभग काँटा रहित होते हैं। यह प्रजाति जल्दी और अधिक फल देती है। फलों की आकृति गोलाकार एवं औसत वजन 600–800 ग्रा. होता है। फलों का गूदा पीला एवं छिलका पतला होता है। फलों में गूदे की मात्रा लगभग 46 प्रतिशत एवं कुल घुलनशील ठोस लगभग 35° ब्रिक्स होते हैं। गूदे में म्यूसिलेज, बीज एवं रेशे की मात्रा कम होती है। फलों का स्वाद एवं सुगन्ध उत्कृष्ट होता है। इसके फल प्रसंस्करण के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। औसत फलोत्पादन लगभग 30–40 किग्रा. प्रति वृक्ष होता है (चित्र–9)।

चित्र 9 : बेल प्रजाति पंत अपर्णा

पंत उर्वशी

इस प्रजाति के वृक्ष लम्बे, ओजवान और सीधे बढ़ने वाले होते हैं। फलों की आकृति अण्डाकार–लम्बाकार होती है एवं औसत वजन लगभग 1.6 किग्रा. होता है। छिलके की मोटाई मध्यम एवं रंग नींबू जैसा पीला होता है। गूदे का रंग गहरा पीला एवं स्वाद रूचिकर होता है। गूदे में बीजों की संख्या और म्यूसिलेज की मात्रा मध्यम एवं रेशे की मात्रा कम होती है। फलों में गूदा लगभग 68 प्रतिशत एवं कुल घुलनशील ठोस लगभग 32° ब्रिक्स होते हैं। पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 30 किग्रा. फल मिलते हैं (चित्र–12)।

चित्र 10 : बेल प्रजाति पंत उर्वशी

पंत सुजाता

इस प्रजाति के वृक्ष मध्यम आकार के और अपेक्षाकृत विरले होते हैं। यह जल्दी से और अधिक फल देने वाली प्रजाति है। फलों की आकृति गोलाकार होती है और उनके दोनों शिरे अपेक्षाकृत दबे हुए होते हैं। फलों का औसत वजन लगभग 1.0–1.5 किग्रा. होता है। पके हुए फलों का छिलका पतला एवं हल्का पीला होता है। गूदे का रंग हल्का पीला होता है और उसमें बीजों की संख्या तथा म्यूसिलेज व रेशे की मात्रा कम होती है। फलों का स्वाद उत्कृष्ट होता है। फलों में गूदे की मात्रा 78 प्रतिशत एवं कुल घुलनशील ठोस लगभग 30° ब्रिक्स होते हैं। प्रतिवृक्ष औसत फल उपज लगभग 45–50 किग्रा होती है।

गोमा यशी

यह जल्दी से तैयार होने वाली प्रजाति है। इस प्रजाति के वृक्ष अपेक्षाकृत बौने और कम फैलाव वाले होते हैं। फलों की औसत लम्बाई लगभग 13 सेमी., चौड़ाई 12.5 सेमी. एवं परिधि 41–45 सेमी. होती है। फलों का औसत वजन 1.0–1.6 किग्रा. होता है। फलों का छिलका अपेक्षाकृत पतला (0.17 सेमी.) होता है। फलों में कुल घुलनशील ठोस 35–39° ब्रिक्स होते हैं। यह प्रजाति सघन बागवानी के लिए बहुत उपयुक्त है। पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 65 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–11)।

चित्र 11 : बेल प्रजाति गोम यशी

थार दिव्य

इस प्रजाति के वृक्ष ओजवान और सघन छत्रक वाले होते हैं। इसके वृक्षों में कांटे बहुत कम होते हैं। इस पर सूखे और सूर्य के तेज प्रकाश का कम प्रभाव पड़ता है। यह बहुत जल्दी (फरवरी) पककर तैयार होने वाली किस्म है। फलों का वजन 1.3–2.3 किग्रा. तक होता है। फलों का छिलका पतला, बीज कम गूदा अधिक एवं रेशे पतले होते हैं। पके हुए फलों में गूदे का रंग गहरा पीला एवं कुल घुलनशील ठोस लगभग 38° ब्रिक्स होते हैं। पके हुए फलों को 15 दिनों तक भण्डारित किया जा सकता है। इस प्रजाति के फल पाउडर और शर्बत बनाने हेतु बहुत उपयुक्त होते हैं। पूर्ण विकसित वृक्षों से 70–80 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं (चित्र–12)।

चित्र 12 : बेल प्रजाति थार दिव्य

थार नीलकंठ

इस प्रजाति के वृक्ष ओजवान और सघन छत्रक वाले होते हैं। यह सूखा सहिष्णु प्रजाति है और रोपण के तीसरे वर्ष ही फल देने लगती है। फलों का औसत वजन लगभग 1.5 किग्रा. एवं गूदे की मात्रा लगभग 71 प्रतिशत होती है। गूदे में बीज अपेक्षाकृत कम (लगभग 83 प्रति फल) एवं मिठास बहुत अधिक (कुल घुलनशील ठोस लगभग 41° ब्रिक्स) होती है। पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 75 किग्रा. फल प्राप्त होते हैं।

पौधो रोपण

बेल के पौधों की रोपाई पौधो के आकार और व्यवहार के अनुसार करनी चाहिए।10×10 मी., 8×8 मी., और 8×6 मी. की दूरी पर पौधो को लगाया जा सकताहै। उपोष्ण और शुष्क क्षेत्रों में बरसात के समय (जुलाई माह)पौधों का रोपड़ करते है। 8–8 मी. के अंतर पर एक घनमीटर के गड्ढों को मई के माह में ही तैयार कर लेते हैं। गड्ढों की सतह को समतल और कंकड़ रहित करके 25–30

दिन के लिए खुला छोड़ देते है। गड्ढे में 3–4 टोकरी (15–20 कि.ग्रा.) गोबर की खाद तथा 1–2 कि.ग्रा. नीम की खली के साथ गड्ढे की ऊपरी लगभग आधी मिट्टी भुरभुरा करके अच्छे से मिला कर डाल देते है। ऊपरी भूमि जहा पर सिंचाई की समुचित व्यवस्था कम होती है। वहा पर वर्षा प्रारम्भ में ही पौधों का रोपड़ कर देना चाहिए। जिससे पौधें वर्षा के मौसम में ही आसानी से वृद्धि करना प्रारंभ कर दें।

पोषक तत्व प्रबंधन

बेल के पौधों की अच्छी वृद्धि और गुणवत्तायुक्त अधिक फलोत्पादन के लिए खाद और उर्वरक का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से करना चाहिए। खाद और उर्वरक को संक्रिय जड़ क्षेत्र (मुख्य तने से 1 मीटर दूरी पर) में छत्रक के नीचे डाल कर ऊपरी 10–15 सेमी. मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

टपकदार सिंचाई विधि के प्रचलित होने और घुलनशील उर्वरकों की सुगम उपलब्धता बढ़ने से अन्य फल फसलों की तरह बेल में भी फर्टीगेशन तकनीक की प्रासंगिता बढ़ी है। चूँकि बेल को एक गौण या नगण्य फल फसल मानते हैं अतः इसमें पोषक तत्व प्रबंधन की दिशा में कोई विशेष अनुसंधान नहीं हुआ है। सामान्य तौर पर, एक वर्ष पुराने पौधों में 5 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फास्फोरस एवं 50 ग्राम पोटेशियम डालते हैं। खाद और उर्वरकों की यह मात्रा पौधों की आयु के गुणांक में 10 तकइसी अनुपात में बढ़ाते रहते हैं। अतः 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के पौधों में प्रतिवर्ष 50 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फास्फोरस एवं 500 ग्राम पोटेशियम डालनी चाहिए। क्षारीय मृदाओं में बेल के पौधों में सामान्यतः जिंक की कमी के लक्षण देखे जाते हैं जिसे दूर करनेके लिए प्रति वृक्ष प्रति वर्ष 250 ग्राम जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जुलाई, अक्टूबर और दिसम्बर के महींनों में जिंक सल्फेट (0.5 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव लाभप्रद रहता है। खाद और उर्वरकों की पूरी मात्रा जून–जुलाई में डालनी चाहिए। ऐसे क्षेत्र, जहाँ फल फटने की समस्या हो, में खाद और उर्वरकों के साथ 100 ग्राम सुहागा प्रति वृक्ष भी प्रयोग करना चाहिए। ऐसा देखा जाता है कि अधिक उर्वर मृदाओं में बेल के वृक्षों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक और फलत कम होती है। ऐसी स्थिति में खाद और उर्वरकों की मात्रा थोड़ी घटा देना चाहिए।

सिंचाई एवं खरपतवार नियंत्रण

बेल का पौधा प्राकृतिक रूप से कठोर होता है इसलिए स्वस्थापित पौधो को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है परन्तु नए एवं युवा पौधो को एक वर्ष में 8–10 सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। जबकि फलवृद्धि और विकास के समय 2–3 सिंचाई करनी चाहिए। शुष्क गर्मी के समय बेल के पौधे अपनी सभी पत्तियों को गिरा कर सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं। इस समय सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। सिचाई की सुविधा होने पर एक दो वर्षो तक गर्मी के महीने में 15 दिनों के अंतराल में सिचाई करनी चाहिए। वर्षा आधारित परिस्थितियों में बड़े पौधों में सिंचाई के बिना भी सफलतापूर्वक उत्पादन किया जा सकता है। खरपतवार के नियंत्रण के लिए समय–समय पर पेड़ के थालो की निराई, गुड़ाई करके साफ रखना चाहिए।

मल्चिंग

शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रो के बंजर भूमि में बेल के बाग की स्थापना बहुत लाभप्रद होती है। मिट्टी के तापमान का अत्यधिक उतार–चढ़ाव, वाष्पीकरण के माध्यम से पानी की कमी, मिट्टी की उर्वरता का रखरखाव, खरपतवार के विकास पर नियंत्रण करके बेल का अधिक उत्पादन किया जा सकता है। धान, मक्का और गन्ने के पलवार का प्रयोग पेड़ के तने की चारो तरफ करने से थालो में केचुएँ और सूक्ष्मजीवों की संख्या बढ़ जाती है। इससे जमीन की नमी और उर्वरता का संचय आसानी से होता है। जिससे पौधो का विकास अच्छा होता है। जिसका सीधा अनुकूल प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है।

दैहिक विकार

फलों का फटना

फलो का फटना बेल में एक प्रमुख शरीरिक समस्या के रूप में देखा गया है। बेल के फल मुख्य रूप से साल में

दो बार फटते हैं। सर्दियो के मौसम में (दिसम्बर–जनवरी) परिपक्वता के समय और गर्मियों के मौसम में (मार्च–अप्रैल) जब फल पकने की अवस्था में होते है। इस समय के मौसम में फलों का फटना बहुत गंभीर समस्या है।

प्रबंधन

जड़ विन्यास क्षेत्र में मिट्टी की नमी को बनाए रखने और बाग को हवा अवरोधी करके क्रैकिंग को कम किया जा सकता है। धान के पुआल, मक्का के भूसे, सूखे पत्ते आदि का उपयोग पेड़ के बेसिन में मिट्टी की नमी बनाये रखने से यह समस्या कम होती है। कभी–कभी बोरान की कमी से फल फट जाते हैं इसलिए 50–100 ग्राम बोरेक्स प्रति पौधा डाल कर फलो के फटने को रोका जा सकता है।

फलो का गिरना

बेल के फलों का गिरना एक प्राकृतिक घटना है। यह प्रक्रिया फल लगने से शुरू होकर तोड़ाई तक निरंतर चलती रहती है। अगस्त–सितम्बर के समय अधिकतम फल गिरता है। फलो को गिरने से बचाने के लिए कुछ रासायनिकों का प्रयोग करके इस समस्या को कम किया जा सकता है।

प्रबंधन

बोरॉन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव बोरेक्स या बोरिक अम्ल के रूप में कुछ हद तक फलों को गिरने से रोकने के लिए प्रभावी है। इसके अलावा जब फल मटर के आकार हो तब (प्लांनोफिक्स 2 मि.ली. 15 ली. पानी) का पर्णीय छिड़काव के द्वारा भी फलो के गिरना कम किया जा सकता है। यदि फलों का गिरना फ्यूजेरियम के डंठल संक्रमण के कारण होता है तो काबेन्डाजिम या थिफेनेट मिथाइल 0.1 प्रतिशत का छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करके फलों को गिरने से बचाया जा सकता है।

तुड़ाई एवं तुड़ाई उपरांत प्रबन्धन

बेल के फल अप्रैल–मई के महीनों में परिपक्व हो जाते हैं। इस समय फल भित्ति का रंग गहरे हरे से पीला हरा हो जाता है। इस समय सारी पत्तियाँ गिर जाती हैं और केवल फल ही दिखते हैं। पेड़ों को हिलाकर फल नहीं तोड़े जाने चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर फल जमीन पर गिरकर फट जाते हैं। फलों को सावधानीपूर्वक एक–एक करके हाथ से तोड़ना चाहिए। चूँकि तुड़ाई उपरान्त फलों में डंठल सड़न रोग की संभावना रहती है। अतः उन्हें लगभग 2 सेमी. लम्बे डंठल के साथ तोड़ना चाहिए।

श्रेणीकरण एवं डिब्बाबंदी

चूंकि बेल के फलों का आकार एवं आकृति भिन्न–भिन्न होती है, अतः तुड़ाई उपरांत फलों का श्रेणीकरण करना आवश्यक होता है। श्रेणीकरण केसमय छोटे, विकृत और फटे हुए फलों को अलग कर देना चाहिए। फलों को बड़े, मध्यम और छोटे आकार में वर्गीकृत करना चाहिए। बेल के फलोंको सामान्यतः जूट के बैग या लकड़ी की टोकरी में रखते हैं या कभी–कभीखुला रखकर ही ढुलाई करते हैं। डिब्बाबंदी करते समय गदेली सामग्रियों जैसे पुवाल, पेपर आदि का प्रयोग करने से ढुलाई के समय फलों को क्षति नहीं पहुँचती। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि डिब्बाबंदी, ढुलाई और भण्डारण के समय फलों को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे।

कीट एवं रोग

रोग

बेल की प्रजाति में ज्यादा रोग का प्रभाव नही होता है। लेकिन कैंकर एवं गमोसिस जैसी बीमारी की समस्या कुछ क्षेत्रो में हो सकती है। गमोसिस रोग को ताबां फफूंदनाशक के लेपन से आसानी से दूर किया जा सकता है या फफूदनाशंक का छिड़काव करने से इसकी रोकथाम आसानी से कर सकते है। कैंकर को स्ट्रेप्टोमाइसीन (200 पी.पी.एम.) के छिड़काव से सरलता से दूर कर सकते हैं।

कीट

बेल के पौधे प्रकृतिक रूप से कठोर होने के कारण इसमें कीट का प्रकोप बहुत कम होता है। लेकिन पर्ण सुरंगी एवं पर्ण भक्षी इल्ली नामक कीट पेड़ की पत्तियों को काट कर थोड़ा नुकसान पहुँचाते है। रोगर (0.5 प्रतिशत) का छिड़काव दो से तीन सप्ताह के अन्तराल पर एक या दो बार कर देने से इसका नियंत्रण किया जा सकता है।

भण्डारण

बेल के फलों की भण्डारण क्षमता तुड़ाई की अवस्था पर निर्भर करती है। बेल के फलों को सामान्य तापमान पर 10–15 दिनों के लिए भण्डारित किया जा सकता है। ऐसा पाया गया है कि भण्डारण कक्ष का तापमान 30° सेल्सियस होने पर बेल के फल लगभग 2 सप्ताह में तक संरक्षित रहते हैं। यदि भण्डारण कक्ष का तापमान 9° सेल्सियस और सापेक्ष आर्द्रता 85–90 प्रतिशत हो तो फलों को 12 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

विपणन

बेल के फल मुख्यतः घरेलू बाजारो में प्रसंस्करण के लिए बेचे जाते हैं। बेल के फलों की बाहरी परत कठोर होने के कारण उन्हें दूरस्थ बाजारों में भी बिक्री के लिए आसानी से भेजा जा सकता है। आजकल बेल के फलों का प्रयोग विभिन्न आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण में भी तेजी से बढ़ रहा है। दुनिया के दूसरे देशों में बेल के फलों की मांग बढ़ाने के लिए वहां के उपभोक्ताओं में बेल के फलों में विद्यमान उत्कृष्ट औषधीय गुणों के बारे में जन–जागरण बहुत आवश्यक है। उत्तर भारतीय क्षेत्रों में बेल की उन्नत प्रजातियों जैसे नरेंद्र बेल–5 और सीआईएसएच बेल–1 के पूर्ण विकसित वृक्षों से लगभग 60 किग्रा फल प्राप्त होते हैं। बेल की खेती से प्रति हेक्टेयर लगभग 100000 रुपए की का शुद्ध लाभ मिलता है। बेल की खेती से होने वाले लाभ को लघु प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना द्वारा और बढ़ाया जा सकता है।

❁❁❁❁

कबीर दास

हिन्दी साहित्य की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर भक्तिकाल के महान समाज सुधारक थे। उन्होंने समाज में व्याप्त छुआछूत, धार्मिक आडम्बर, ऊँच–नीच एवं बहुदेववाद का कड़ा विरोध करते हुए 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के मूल्यों को स्थापित किया। उन्हें पहले समाज–सुधारक और बाद में कवि कहा जाता है। कबीर की रचनाओं के संकलन को बीजक कहा जाता है। कबीर की सभी रचनाएँ कबीर–ग्रंथावली में संकलित हैं। बीजक, रमैनी और सबद नाम से उनके तीन काव्य–संग्रह हैं। सिक्ख धर्म के गुरु–ग्रंथ में भी उनकी वाणी को स्थान मिला है।

जैविक खेती की उपयोगिता एवं विधायें

राम अवध राम[1]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

हरित क्रान्ति के शुभारम्भ के साथ रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी के प्रयोग से पर्यावरण एवं भूजल प्रदूषण में भारी वृद्धि हुयी है। कृषि उत्पाद जैसे अनाज, दलहन, तिलहन, फल, सब्जी के उत्पादन में रसायनों का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। फलस्वरूप मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। खास तौर से औद्यानिक फसलों पर रसायनों का प्रयोग अधिक हो रहा है। जिससे प्रदूषण के साथ–साथ उत्पादन लागत मे भी वृद्धि हो रही है। अतः भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि, वायुमण्डलीय प्रदूषण एवं लागत खर्च की कमी हेतु जैविक/बायोडायनमिक उत्प्रेरकों एवं खादों का प्रयोग आवश्यक हो गया है।

पूरे विश्व में अधिकतर देश अब सुरक्षित या विषमुक्त भोजन के उत्पादन का प्रयास कर रहें हैं। पर्यावरण संरक्षण एवं स्वास्थ्य समस्याओं को देखते हुये जागरूक उपभोक्ता भी अब सुरक्षित भोजन अर्थात जैविक उत्पादों की ओर आकर्षित हो रहें हैं। एफ.आई.बी.एल. संस्था द्वारा किये गये 2021 के सर्वेक्षण के अनुसार 172 देशों में 2.3 लाख किसानों ने जैविक कृषि को अपनाया है। पूरे विश्व में 72.3 लाख हेक्टेयर भूमि में जैविक खेती की जा रही है। सबसे अधिक वृद्धि एशिया प्रायःद्वीप में देखी गयी है जहां 4.7 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है। जिसका क्षेत्रफल अब 3.6 लाख हेक्टेयर हो गया है। यूरोप में 2 प्रतिशत की दर से जैविक खेती के क्षेत्रफल में वृद्धि हुयी है। चीन, भारत एवं स्पेन में जैविक खेती के क्षेत्रफल में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक वृद्धि पायी गयी है। विश्व का जैविक खेती का क्षेत्रफल ओशियाना देशों, यूरोप एवं दक्षिण अमेरिका में अधिक है। पूरे विश्व में सबसे अधिक जैविक कृषि भूमि (17.3 लाख हे.) आस्ट्रेलिया में है। तत्पश्चात् यूरोप 11.6 लाख हेक्टेयर के साथ दूसरे स्थान पर है। भारतवर्ष में विभिन्न फसलों जैसे चाय, काफी, इलायची एवं चावल का जैविक उत्पादन निर्यात हेतु किया जाता है। उत्तरोत्तर भारत में अधिकतर क्षेत्रों में कृषि रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता है। इन क्षेत्रों में जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

मार्च 2021 तक भारत में 2.99 लाख हेक्टेयर प्रक्षेत्र में खेती की जा रही थी। जिसके अन्तर्गत 1.69 लाख हेक्टेयर भूमि कृषि योग्य एवं 1.30 लाख हेक्टेयर जंगल है। 2021 में भारत से 888179.68 मैट्रिक टन जैविक उत्पादों का निर्यात किया गया। जिससे कुल 1040,95 लाख अमेरिकन डालर आय प्राप्त की गयी। भारत वर्ष में बैंगलोर की स्थानीय बाजार में जैविक उत्पादों का विक्रय 600 करोड़ तक आँकलन किया गया। देश के स्थानीय बाजारों में जैविक उत्पादों की खपत में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई।

जैविक उत्पादन के मानक सदैव इंगित करते हैं कि जैविक खादों एवं जैविक नियामकों का खेत पर उत्पादन होना चाहिए। जैविक कृषि में भूमि की उर्वरता में वृद्धि, खाद, प्राकृतिक खनिज एवं कार्बनिक अवशेषों को कम्पोस्ट में परिवर्तित करके किया जाता है। कीटों एवं व्याधियों का प्रबंधन प्राकृतिक स्रोतों, जैविक कीट एवं व्याधि नाशकों, शस्य क्रियाओं, फसल चक्र एवं अवरोधी किस्मों के उपयोग आदि से किया जाता है।

जैविक कृषि प्रणाली में कृषकों द्वारा पूर्ण पारिस्थितिकीय का प्रबन्धन किया जाना चाहिए। जिसमें कम खर्च वाले जैविक खाद एवं उत्प्रेरकों का समावेश फसल चक्र, मिश्रित, आच्छादन, अन्तः फसलों, हरी खाद एवं स्थानीय कीटों एवं व्याधि अवरोधी अधिक उत्पादन वाली जातियों का समावेश आवश्यक है।

जैविक खेती के लाभ

पूरे विश्व में छोटे बड़े कृषकों के लिए जैविक खेती के विभिन्न लाभ हैं। जिनमें प्रमुख हैं कि जैविक उत्पाद अधिक मूल्य पर विक्रय किये जाते हैं। जैविक खेती से लाभ, हानि एवं पर्यावरण पर प्रभाव का विस्तृत विवरण निम्न है।

[1]पूर्व प्रधान वैज्ञानिक

1. पोषण

जैविक उत्पादों की पोषण गुणवत्ता रासायनिक उत्पादों से अधिक होती है। क्योंकि स्वस्थ मृदा में स्वस्थ पौधें का विकास होता है। जिससे प्राप्त उत्पाद भी पौष्टिक एवं उच्च गुणवत्ता युक्त होते है।

2. विष रहित

रासायनिक खेती में कृषि रसायनों का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जाता है। जिससे उनके उत्पादों में भी प्रयुक्त रसायनों की मात्रा अधिक होती है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। परन्तु जैविक खेती में कृषि रसायनों का उपयोग नहीं किया किया जाता है जिससे जैविक उत्पादों में किसी भी प्रकार के विषैले तत्वों की मात्रा नहीं पायी जाती है।

3. अच्छी गुणवत्ता

जैविक उत्पादों की गुणवत्ता रासायनिक उत्पादों से अधिक होती है क्योंकि जैविक खेती में मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन का विशेष ध्यान दिया जाता है। जैविक खेत की मृदा में सारे पोषक तत्व संतुलित मात्रा में पाये जाते हैं। फलस्वरूप उस मृदा में उगने वाले उत्पादों में भी पोषक तत्व, महक एवं स्वाद भरपूर मात्रा में पाये जातें हैं।

4. बेहतर टिकाऊपन

जैविक उत्पाद तुड़ाई उपरांत अधिक समय तक ताजा बने रहते हैं। जबकि रासायनिक प्रणाली से उत्पादित उत्पादों का तुड़ाई उपरांत टिकाऊपन कम होता है।

5. किसानों का हित

चूँकि जैविक खेती में फसल उत्पादन उर्वर भूमि में किया जाता है जिससे उस भूमि में विकसित पौधों में कीट एवं बीमारी प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है।

6. निवेश लागत क्रय

जैविक कृषि में महँगे रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता है। साधारणतया प्रक्षेत्र पर उत्पादित जैविक खादों एवं जैव नियामकों का प्रयोग किया जाता है। जिसका लागत मूल्य न के बराबर होता है।

7. सूखा प्रतिरोधिता

जैविक खेती की मृदा की जल धारण क्षमता अधिक होती है एवं उस मृदा में विकसित होने वाले पौधों की भी जैव एवं अजैव कारकों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता अधिक होती है। जबकि रासायनिक कृषि प्रणाली में पौधों को पानी की आवश्यकता अधिक होती है। पौधों का संतुलित विकास नहीं होता है जिससे विभिन्न कीट एवं बीमारियों के प्रति उनकी सहिष्णुता बनी रहती है।

8. अतिरिक्त गुण

आजकल जागरूक शहरी उपभोक्ता पौष्टिक एवं जैविक उत्पाद किसी भी मूल्य पर खरीद रहे हैं जिससे उत्पादक को अधिकतम लाभ मिलता है।

जैविक कृषि के प्रकार

प्राचीन काल से भारत वर्ष में जैविक कृषि का प्रचलन रहा है तथा आज भी विभिन्न प्रदेषों में कृषक विभिन्न जैविक खेती की विधाओं का प्रयोग कर रहें हैं जिनका विवेचन निम्न है :

1. बायोडायनमिक कृषि
2. पंचगव्य कृषि
3. ऋषि कृषि
4. नातूइको कृषि
5. प्राकृतिक कृषि
6. होमा कृषि
7. पर्मा कल्चर

उपरोक्त विधाओं के समन्वयन से निम्नलिखित उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति की जा सकती है।

- उत्पादन क्षमता रासायनिक खेती के बराबर या अधिक
- भूमि की पोषक क्षमता में निरन्तर वृद्धि
- उत्पादन गुणवत्ता में वृद्धि
- सभी प्रकार के खादों, कीटनाशकों एवं व्याधिनाषकों का गांवों/खेतों पर उत्पादन
- तकनीक सस्ती एवं प्रदूषण रहित

बायोडायनमिक खेती

भूमि की उर्वराशक्ति व सूक्ष्म जैव शक्ति को ब्रहमाण डीय शक्तियों से उत्प्रेरित कर उत्पादन एवं गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी करने की एक सम्पूर्ण पद्वति है। बायोडायनमिक कृषि में कृषि पांचांग का प्रयोग कर उत्पादन में वृद्धि लाई जा सकती है। रूडोल्फ स्टेनर ने वर्ष 1912 में ही बारह राशियों की तालिका (1912–13) प्रस्तुत किया। इसमें चन्द्रमा का विभिन्न राशियों से होकर पृथ्वी की परिक्रमा करते हुये प्रभाव का वर्णन किया गया है। तत्पष्चात विभिन्न खगोलविदों द्वारा अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये। वर्ष 1963 में मारिया थुन ने सर्वप्रथम चन्द्र और राशियों की समय सारिणी का प्राक्कथन किया। जिसके आधार पर आजकल कृषि पांचांग बनाये जा रहे हैं तथा विभिन्न देशों में उसका उपयोग किया जा रहा है। कृषि पांचांग का प्रयोग कर उत्पादन में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि लायी जा सकती है। कृषि पांचांग (सारिणी–1) का रासायनिक खेती में भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। पौधों में वृद्धि, कीट एवं व्याधि प्रबन्धन हेतु निम्न उत्प्रेरकों का प्रयोग किया जाता है।

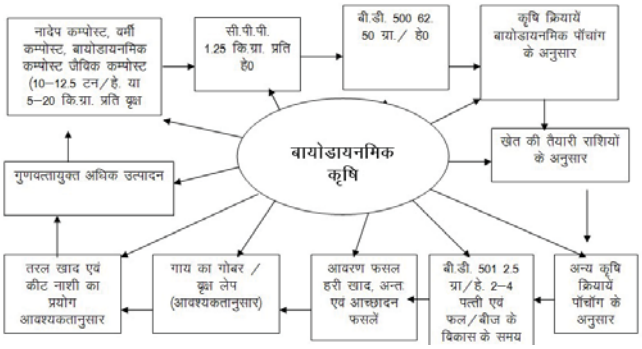

चित्र 1. बायोडायनमिक कृषि का क्रमबद्ध विवरण

कम्पोस्ट

कम्पोस्ट जैविक अवशेषों एवं पशुओं के मल मूत्र का एक निश्चित अवधि तक सूक्ष्म जीवों के किण्वन के उपरान्त दुर्गन्ध रहित, दानेदार, ह्यूमस युक्त पदार्थ होता है। जिसमें मुख्य, सूक्ष्म पोषक तत्व एवं लाभदायक सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। कम्पोस्ट को फसलों के उत्पादन हेतु खेत में उपयोग किया जाता है।

यदि पूर्ण रूप से न सड़ी हुई कम्पोस्ट को खेत में प्रयोग करते हैं तो किण्वन की प्रक्रिया पुनः खेत में शुरू हो जाती है जिससे मृदा के तापमान में वृद्धि होती है एवं सूक्ष्म जीव मृदा से नत्रजन ग्रहण करते हैं। जिससे कुछ समय के लिए मृदा में नत्रजन की कमी उत्पन्न हो जाती है। जिससे पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

नादेप कम्पोस्ट

इन्दौर के एक किसान ने हवादार तरीके से खाद बनाने की विधि का विकास किया जिसको नादेप कम्पोस्ट विधि कहते हैं। 90–120 (जुलाई–अक्टूबर) दिनों में खाद तैयार हो जाती है। कम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाने हेतु बायोडायनमिक कम्पोस्ट की भॉति चूना, राख, राक फास्फेट इत्यादि डालकर तथा तैयार होने के बाद जैव कारकों का प्रयोग कर अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

चित्र–2. नादेप कम्पोस्ट का बनाना

केंचुए की खाद (वर्मीकम्पोस्ट)

वर्मीकल्चर जैव तकनीक केंचुओं द्वारा विष रहित कार्बनिक पदार्थो द्वारा खाद बनाने की क्रिया है। फलस्वरूप मृदा में लाभदायक सूक्ष्म जीवों में वृद्धि, बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्म जीवों में कमी एवं भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है। भारतीय केंचुआ खाद बनाने के लिए उपयुक्त पाया गया है। इस प्रजाति में विभिन्न प्रकार के तापमान एवं आर्द्रता को सहन करने की क्षमता पायी जाती है। वर्मी कम्पोस्ट की पौष्टिकता प्रयुक्त खाद्य पदार्थों पर निर्भर करती है।

चित्र 3. वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन

वर्मीवाश

वर्मीवाश (तरल) ड्रम/मिट्टी के बड़े वर्तन में रखे केंचुओं की अधिक संख्या से बनाया जाता है। तरल में मुख्य एवं सूक्ष्म तत्वों के अलावा हारमोन एवं विटामिन भी पाये जाते है। वर्मीवाश का प्रयोग फसलों एवं फलों की वृद्धि एवं अधिक उत्पादन हेतु किया जाता है।

चित्र 4: वर्मीवाश का बनाना

पलवार (बिछावन)

पलवार से भूमि में विद्यमान नमी को वाष्पीकरण से रोकथाम, खरपतवार का प्रभावी नियंत्रण, भूमिक्षरण की रोकथाम, पौधों के मूलतन्त्र के आसपास उचित नमी तथा तापमान बनाये रखने में सहायता मिलती है। जैविक पदार्थों का नियमित रूप से पलवार के रूप में प्रयोग करते रहने से भूमि की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक दशा में उत्तरोतर सुधार केंचुओं तथा सूक्ष्मजीवों की संख्या तथा गतिविधियों को प्रोत्साहन तथा बढ़वार कर रहे फलों के गिरने में कमी, अधिक तथा उच्चगुणवत्ता युक्त उत्पादन होता है।

पंचगव्य कृषि

पंचगव्य का प्रयोग प्राचीन काल से मानव स्वास्थ्य हेतु किया जाता रहा है। आजकल विशेषकर तमिलनाडु राज्य में कृषि, मनुष्य तथा पषुओं के स्वास्थ्य हेतु भी इसका उपयोग किया जा रहा है। गाय का गोबर, गौमूत्र, स्लरी, दूध, दही, घी, गन्ने का रस, नारियल पानी, पके केले एवं ताड़ी को निश्चित मात्रा में मिलाकर पंचगव्य तैयार किया जाता है। 3 प्रतिशत घोल का प्रयोग बीज अथवा पौध को बोने या रोपण से पहले 30 मिनट तक शोधन के लिए किया जाता है। हल्दी, अदरक, केला एवं आलू के कंदों को बुआई के पहले 30 मिनट तक घोल से उपचारित किया जाना चाहिए।

चित्र 5. पंचगव्य का बनाना

ऋषि कृषि

यह श्री मोहन शंकर देशपांडे द्वारा विकसित की गयी जैविक विधि है। इसका प्रयोग महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में हजारों कृषक कर रहे हैं। इस विधि में बरगद के पुराने वृक्ष के दायरे से 15–20 किलोग्राम मिट्टी बुआई पूर्व खेत में प्रति एकड़ की दर से बिखेर कर तैयारी की जाती है। गोबर, घी एवं शहद से अमृत पानी बनाया जाता है। अमृत पानी एवं वट वृक्ष की मृदा के मिश्रण से फल एवं सब्जियों के बीजों का बुआई पूर्व उपचार कर छाये में सुखाकर बुआई की जाती है। अमृत पानी के 5 प्रतिषत घोल का पर्णीय छिड़काव, सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग, बीज/पौध षोधन इत्यादि के लिए अत्यन्त प्रभावी पाया गया है। ऋषि कृषि में खरपतवार नियंत्रण हेतु निराई, अवरोध पर्त (मलचिंग) एक प्रचलित प्रथा है।

चित्र 6. अमृत पानी का बनाना

नातूइको कृषि

नातूइको कृषि प्राकृतिक कृषि के सिद्धान्तों से भिन्न है। यह पारिस्थिकी के सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें सूर्य ऊर्जा के उपयोग पर ध्यान दिया जाता है। नातूइको कृषि में स्थानीय स्रोतों का उपयोग होता है तथा पौधों के ज्यामिति, विकास, अभिजनन एवं जैव रसायन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस पद्धति का विकास एवं प्रचार स्व. श्री श्रीपद धवोलकर द्वारा महाराष्ट्र में किया गया था। इस तकनीक का प्रोत्साहन श्री दीपक सुचदे द्वारा नेमवार, देवास, मध्य प्रदेश में कृषकों के बीच कई वर्षों से किया जा रहा है।

नातूइको कृषि की विधियाँ

नातूइको कृषि में तीन संगत पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

1. मृदा–कार्बनिक अवशेषों का पुनः उपयोग कर मृदा के स्वास्थ्य में वृद्धि की जाती है।
2. सूक्ष्म, सफेद जड़ों के विकास प्रबन्धन पर ध्यान दिया जाता है जिससे पोषक तत्वों का अधिक से अधिक पौधों द्वारा अवशोषण किया जा सके।
3. वृक्ष छत्र–सूर्य के प्रकाश का अधिक से अधिक उपयोग। जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया एवं उत्पादन में वृद्धि हो सके।

प्राकृतिक कृषि

प्राकृतिक कृषि का विकास मसानोबू फूकोका द्वारा (1913–2008) जापान में किया गया था। फूकोका ने अपनी किताब "द वन स्ट्रा रिवोल्यूसन" में प्राकृतिक कृषि की विधियों का उल्लेख किया है। इस कृषि को "कुछ भी न करो" कृषि भी कहते हैं। इसमें लाभदायक सूख्म जीवों को अधिक महत्व दिया जाता है। जिसका भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि करना प्रमुख उददेश्य है। फूकोका ने कृषि को सुरूचिपूर्ण या अध्यात्मिक रूप से भोजन उत्पादन करने की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया था।

फूकोका ने कृषकों को स्थानीय जलवायु का अध्ययन एवं उससे लाभ प्राप्त करने का सुझाव दिया था। प्राकृतिक कृषि की क्रियाओं से वातावरण का प्रदूषण नहीं होता है। जबकि रासायनिक खेती से जल प्रदूषण, जैव विविधता एवं भूमि की उर्वरता का क्षरण होता है।

बीजामृत

खासतौर से पादप सुरक्षा एवं फसल सुरक्षा हेतु तीन जैव नियामकों का उपयोग किया जाता है। बीजामृत एक जैव नियामक है। जिसमें लाभदायक सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। बीजामृत मिट्टी के घड़े या प्लास्टिक के बर्तन में बनाया जा सकता है। बीजामृत का 20 प्रतिशत मिश्रण बीज/पौध शोधन हेतु किया जाता है। तैयार बीजामृत का

उपयोग 2–3 दिन में पूर्ण करना श्रेयस्कर होता है। बीज के आकार एवं वजन के अनुसार बीजोपचार का समय भिन्न होता है। हल्के बीज कम समय एवं बड़े आकार के बीज 30 मिनट तक उपचारित किये जाते हैं।

चित्र 7. बीजामृत का बनाना

जीवामृत

आदिकाल से ही कृषक बीज उपचार गोमूत्र, गोबर आदि से करते आ रहे हैं। जीवामृत गोबर, गोमूत्र, गुड़, बेसन एवं उपजाऊ मृदा के किण्वन के पश्चात् तैयार किया जाता है। यह जैव नियामक गाँवों में किसानों के खेत पर आसानी से तैयार किया जाता है। जिसका प्रचार प्रसार श्री पालेकर वर्षों से प्राकृतिक कृषि में कर रहें हैं। 7–8 दिन में जीवामृत उपयोग हेतु तैयार हो जाता है। तैयार जीवामृत का उपयोग 15–30 दिनों के अन्तराल पर फसलों पर किया जाता है। इसका 20 प्रतिशत घोल पर्णीय छिड़काव, सिंचाई के पानी के साथ फसलों में, बीज एवं पौध शोधन हेतु किया जा सकता है। जीवामृत में लाभदायक सूक्ष्म जीव एवं पोषक तत्व पाये जाते हैं। जीवामृत का प्रयोग टपक सिंचाई प्रणाली में भी किया जा सकता है। जीवामृत में किण्वन प्रक्रिया में वृद्धि करने वाले सूक्ष्म जीव भी पाये जाते हैं। अतः इसका उपयोग कम्पोस्ट बनाने में भी किया जा सकता है। जीवामृत का छिड़काव बिछावन पर करने से जैविक अवशेषों में किण्वन की प्रक्रिया तेज हो जाती है।

चित्र 8. जीवामृत का बनाना

धन जीवामृत

यह ठोस जीवामृत है। चूँकि जीवामृत को अधिक समय तक संरक्षित नहीं किया जा सकता है। अतः धन जीवामृत को बनाकर अधिक समय तक रख सकते है। धन जीवामृत में लाभदायक जीवाणुओं की संख्या अधिक होती है। इसमें नत्रजन स्थिरीकारक, फोस्फोरस घोलक, एक्टिनोमाइसिटीज, राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पीटिलम इत्यादि पाये जाते है। धन जीवामृत का कम्पोस्ट के साथ प्रयोग करने पर भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है। धन जीवामृत से कम्पोस्ट की गुणवत्ता में भी सुधार किया जा सकता है। इसके लिए वांछित कम्पोस्ट की मात्रा भूमि पर बिछाकर उसमें 51 कि.ग्रा. धन जीवामृत मिलाकर पानी का छिड़काव करते हैं। कम्पोस्ट का ढेर बनाकर टाट या बोरे से 5–6 दिन के ढक दिया जाता है। 6 दिन बाद कम्पोस्ट प्रयोग हेतु तैयार हो जाती है।

अग्नि अस्त्र

अग्नि अस्त्र बनाने के लिए 50 लीटर का मिट्टी या प्लास्टिक का पात्र लेते हैं। पात्र में 10 लीटर गोमूत्र डालकर, एक किलोग्राम नीम की पत्ती गोमूत्र के साथ पीसकर पात्र में डाल देते हैं। 500 ग्राम हरी मिर्च पीसकर मिश्रण में डालकर अच्छी तरह मिला लिया जाता है। तत्पश्चात्, 500 ग्राम लहसुन पीस कर मिश्रण में डालकर अच्छी तरह मिला लिया जाता है। 5 किग्रा. नीम की पत्ती पीसकर पात्र में डाल दिया जाता है। पूरे घोल को किसी

धातु के बने बर्तन में डालकर 5 बार उबाल कर 24 घंटे के लिए रख दिया जाता है। घोल को छानकर 3 ली. प्रति 100 ली. पानी में मिलाकर फसलों पर कीटों से सुरक्षा हेतु छिड़काव किया जाता है।

ब्रह्मास्त्र

ब्रह्मास्त्र बनाने हेतु एक 30–40 ली. क्षमता का पात्र लिया जाता है जिसमें 10 लीटर गोमूत्र डालते हैं तथा 3 कि.ग्रा. नीम की पत्ती पीसकर गोमूत्र में अच्छी तरह मिला लेते हैं। इसके पष्चात् 2 कि.ग्रा. शरीफे, 2 कि.ग्रा. पपीते, 2 कि.ग्रा. अमरूद, 2 कि.ग्रा. लैण्टाना एवं 2 किग्रा. धतूरा की पत्ती पीसकर बर्तन में अच्छी तरह मिला लेते हैं। घोल को 5 बार उबालकर 24 घन्टे के लिए रख देते हैं। तत्पष्चात्, मिश्रण को छानकर 2–3 ली. घोल को 100 ली. पानी में मिलाकर फसलों पर सभी कीटों से सुरक्षा हेतु छिड़काव किया जाता है। खास तौर पर, फल एवं सब्जियों पर कीटों का प्रकोप अधिक होता है अतः, प्रत्येक 15–20 दिनों के अन्तराल पर यदि ब्रह्मास्त्र का छिड़काव किया जाय तो कीटों का प्रकोप नहीं होता है।

नीमास्त्र

नीमास्त्र बनाने हेतु 150–200 ली. क्षमता का पात्र लेते हैं जिसमें 100 ली. गोमूत्र डालते हैं। तत्पश्चात्, पात्र में 5 ली. गोमूत्र डालते हैं। 5 किग्रा नीम की पत्ती पीसकर पात्र में डालकर अच्छी तरह मिला लिया जाता है। मिश्रण को 24 से 48 घंटे के लिए किण्वन हेतु रख देते हैं। तत्पष्चात्, घोल को छानकर रख देते हैं। एक ली. घोल को 4–5 ली. पानी में मिलाकर फसलों पर छिड़काव किया जाता है।

हरी खाद

भूमि में पर्याप्त मात्रा में जीवांश तथा उर्वरा शक्ति बनाये रखने में हरी खाद का अभूतपूर्व योगदान हो सकता है। इस विधा में अधिकांशतः हरी दलहनी फसलों को उगाकर फूल आने के पूर्व खेत में जुताई कर मिला दिया जाता है। हरी खाद के लिए दलहनी फसलों का चुनाव करना चाहिए। जिससे वायुमण्डलीय नत्रजन का भूमि में स्थिरीकरण हो सके एवं मृदा और पौधों के स्वास्थ्य में वृद्धि हो सके। दलहनी फसलों की जड़ों का राइजोबियम जीवाणु के साथ सहयोगिता होती है। ये जीवाणु जड़ों के पास एकत्रित होकर वृद्धि करते हैं जिससे जड़ें फूल जाती हैं एवं गाँठ का आकार ले लेती हैं। ये जीवाणु पौधों से कार्बोहाइड्रेट एवं शर्करा प्राप्त करते हैं एवं वायुमण्डल से नत्रजन प्राप्त कर उसको अमोनियम में परिवर्तित करते हैं। जिससे पौधों की वृद्धि एवं विकास समुचित होता है।

अंतराशस्य फसलें

जब एक ही प्रक्षेत्र में उगायी जा रही फसल के मध्य कम समयावधि की फसलें उगायी जाती हैं तो इसको अन्तराशस्यन कहते हैं। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से अन्तराशस्य फसलों के उगाने की प्रथा चली आ रही थी। जिससे फसल उत्पादन के नुकसान की कम आशंका होती थी। अन्तराशस्यन से प्रति इकाई क्षेत्र से उत्पादन अधिक होता है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति में सुधार होता है। परन्तु बड़े–बड़े कृषि यन्त्रों एवं रासायनिक उर्वरकों के अविष्कार एवं प्रचलन से अन्तराशस्य प्रणाली को काफी नुकसान हुआ है। अन्तराशस्य फसल प्रणाली में रासायनिक उर्वरकों एवं पादप सुरक्षा रसायनों का प्रयोग कम से कम होता है।

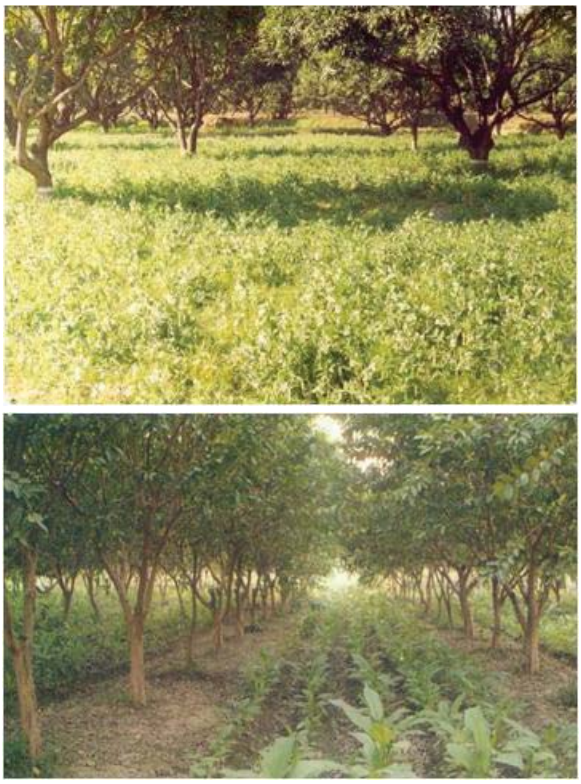

चित्र 9. आम के बाग में मटर एवं अमरूद के बाग में हल्दी की अन्तराशस्य फसल

अन्तराशस्य फसलों का योगदान :

- प्रारम्भिक अवस्था में अन्तराशस्य फसलों से कृषकों को नियमित अतिरिक्त आय प्राप्त होती रहती है।
- अन्तराशस्य फसलों के साथ मुख्य फसलों की देखभाल अच्छी प्रकार हो जाती है।
- दलहनी फसलों को अन्तराशस्य के रूप में उगाने से भूमि में नियमित रूप से जीवांश तथा पोषक तत्व उपलब्ध होते रहते हैं।
- खेत में अन्तराशस्य फसलों से मृदा के अपरदन की रोकथाम होती है।
- यदि विपणन की समुचित व्यवस्था हो तो औषधीय, सगन्ध, पुष्पी पौधों तथा सब्जियों को उगाकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

fefJr [ksrh

जब दो या दो से अधिक फसलों को एक ही साथ एक ही समय पर एक ही प्रक्षेत्र में उगाया जाता है तो इसे मिश्रित खेती कहते हैं। इस प्रकार की फसल प्रणाली से भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि एवं अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। विभिन्न प्राकृतिक विषम परिस्थितियों में भी पर्याप्त उत्पादन प्राप्त होता है।

चित्र 10. अन्नानास, नीबू, केला एवं नारियल की मिश्रित खेती

आवरण फसलें

जहां ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में मृदा का क्षरण होता है वहाँ आवरण फसलों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। आवरण फसलों के रूप में जलवायु की अनुकूलतानुसार दलहनी फसलें जैसे उड़द, मूंग, लोबिया, मसूर आदि की बुआई कर फूल आने के पहले इनकी पलटायी कर देने से भूमि की उर्वरता में वृद्धि होती है।

चित्र 11. आम के बाग में मूंग की आच्छादन फसल

फंदा फसलें (ट्रैप फसलें)

कीटों से फसलों की सुरक्षा हेतु फंदा फसलें खेत की मेड़ या कतारों के बीच उगायी जाती हैं। फंदा फसलें वे पौधे होते है जो मुख्य फसल की अपेक्षा अधिक कीटों को आकर्षित करती हैं। इन फसलों के पौधे कुछ विशेष प्रकार के रसायन या सुगन्ध का उत्सर्जन करते हैं जिससे कीड़े उनकी तरफ आकर्षित होते हैं। जिससे मुख्य फसल की सुरक्षा होती है। फंदा फसलों का प्रयोग जैविक कृषि में अति महत्वपूर्ण है क्योंकि मुख्य फसलों पर कीटों से सुरक्षा हेतु किसी प्रकार के रसायन के छिड़काव की आवश्यकता नहीं होती है।

फंदा फसलों के उगाने के पहले उक्त कीट या रोग के संक्रमण या व्यवहार का ज्ञान होना आवश्यक होता है। फंदा फसलों की संख्या, मुख्य फसलों के क्षेत्रफल पर निर्भर करती हैं। मुख्य फसल का 10–20 प्रतिशत भाग फंदा फसलों का होना चाहिए। जब फंदा फसलों पर कीटों की संख्या अधिक हो जाय तो उनका प्रबन्धन अति आवश्यक होता है। अन्यथा कीटों का प्रकोप मुख्य फसल पर सम्भव हो सकता है। आवश्यकता से अधिक कीटों की संख्या होने पर फंदा फसलों को कीटों सहित नष्ट कर देना चाहिए।

सहयोगी फसलें

सहयोगी फसलें मुख्य फसलों के उचित वृद्धि एवं विकास में सहायक होती हैं। ये हानिकारक कीटों से प्रतिरोधित करती हैं तथा पोषक तत्व, छाया एवं सहारा प्रदान करती हैं। वैज्ञानिक शोधों से यह सत्यापित हो गया है कि सहयोगी फसलों से अनेक लाभ है। सहयोगी फसलें एक दूसरे की सहायता करती हैं। कुछ सहयोगी फसलों के उदाहरण निम्न हैं।

गुलाब एवं लहसुन

गुलाब के साथ लहसुन की खेती करने पर लहसुन अनेक कीटों को दूर करता है तथा मृदा से अधिक मात्रा में सल्फर अवशोषित करता है। सल्फर पौधों को बीमारी से सुरक्षा प्रदान करता है।

कद्दूवर्गीय फसलें एवं गेंदा

चूँकि कद्दूवर्गीय फसलों में सूत्र कृमि की समस्या अधिक होती है। यदि साथ में गेंदा के पौधे लगाये जाय तो उनकी सूत्रकृमि से सुरक्षा होती है।

फसल चक्र

फसल चक्र का उपयोग रोग एवं खरपतवार प्रबन्धन हेतु भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इससे कीटों की संख्या को नियन्त्रित किया जा सकता है जिससे रासायनिक कीट एवं व्याधि नाशकों की उपयोग की मात्रा में कमी लायी जा सकती है। फसल चक्र में दलहनी फसलों के समावेश से कृत्रिम नत्रजन उर्वरकों के उपयोग को कम किया जा सकता है।

फल एवं सब्जियों में जैविक उत्पादन का क्रमबद्ध विवरण

1. पोषक तत्व प्रबन्धन

- तीस से चालीस कि.ग्रा, (10–12.5 टन प्रति हे.) नादेप/बायोडायनमिक/वर्मीकम्पोस्ट का जुलाई अगस्त में प्रयोग।
- वर्षा ऋतु में सनई/ढैंचा को हरी खाद के लिए उगाना।
- थाले एवं भूमि पर बी. डी. 500 एवं सी. पी. पी. (100 ग्रा.) जीवामृत/पंचगव्य/अमृत पानी का चन्द्र के दक्षिणायण में छिड़काव।
- बिछावन का प्रयोग।
- पौधों में वृद्धि हेतु बायोडायनमिक तरल खाद/वर्मीवाष/जीवामृत/पंचगव्य/अमृत पानी का प्रयोग।

2. कीट प्रबन्धन एवं व्याधि प्रबन्धन

- जानवरों, फसलों एवं अन्य जीवों का प्राकृतिक प्रबन्धन
- फसल चक्र एवं ट्रैप फसलों का प्रयोग
- स्थानीय रुप से सफल बीजों का प्रयोग
- गोमूत्र एवं मट्ठा, कीटों एवं बीमारियों के नियन्त्रण में सक्षम
- जीवामृत/अमृत पानी/पंचगव्य/होमा बायोसाल/अग्नि अस्त्र/ब्रह्मास्त्र/नीमास्त्र का पर्णीय एवं भूमि पर छिड़काव।
- स्थानीय पौधे जैसे नीम/अरण्डी/करंज/लेण्टाना/मदार/बिच्छू घास/कालमेघ/मिर्च/ लहसुन/सहजन की फली/बेल इत्यादि का आषिंक विघटन पश्चात प्रयोग।
- विभिन्न फसलों को कीट एवं बीमारियों के नियन्त्रण में स्थानीय/पूर्व अनुभवों का प्रयोग
- बी. डी. 501 का दो छिड़काव फूल एवं फलों के लगने के समय पांचांग के अनुसार।
- तने पर वृक्ष लेप का गोंद एवं उकठा रोग नियन्त्रण के लिए प्रयोग।
- झाउ/हार्स टेल की पत्तियों द्वारा तैयार तरल का बौर आने या फफूँदजनित बीमारियों के प्रकोप पर एक छिड़काव।

सारणी–1

बायोडायनमिक कृशि पाँचांग

जनवरी–दिसम्बर–2022

विवरण /मास	चन्द्र के विपरीत शनि	पूर्णिमा के 48 घंटे पहले	अमावस्या 1	उत्तरायण	दक्षिणायण	राहु एवं केतु	चन्द्र		सूर्य की स्थिति	बुआई एवं रोपण की तिथि			
							दूर	पास		जड़	पत्ती	फूल	बीज/फल
जनवरी	19	–	2,31	4.17,30	1.3,18.30	11,25	2,30	14	15 जनवरी से 10 फरवरी तक मकर में	4,5,23,24	1,8,9,18,19,28	6,7,25,26	3,11,12,21,29
फरवरी	–	12	1	1.13,28	14.27	7,21	27	11	11 फरवरी से 11 मार्च तक कुंभ में	10,19,20,28	5,6,14,24	2,3,12,13,21,22	7,8,17,18,26
मार्च	15	15	2	1.13,27.31	14.26	6,20	24	11	12 मार्च से 10 अप्रैल तक मीन में	9,10,19,27,28	4,5,14,15,23,31	3,12,21,29,30	6,7,16,25,26
अप्रैल	12	13	1,30	1.9,23.30	10.22	2,16,29	19	8	11 अप्रैल से 11 मई तक मेश में	5,6,15,16,23,24	10,11,20,28,29	9,17,25,26	3,13,21,22
मई	9	13	30	1.6,20 जव 31	7.19	12,27	17	5	12 मई से 11 जून तक वृषभ में	3,12,13,21,31	7,8,9,25,26	6,14,23	1,10,11,19,27,28
जून	6	11	29	1.2,17.30	3.16	9,23	15	2,29	12 जून से 13 जुलाई तक मिथुन में	9,17,18,26,27	4,5,13,21,22	1,11,19,20,30	5,7,16,23,24
जुलाई	3,30	10	28	14.27	1.13,28. 31	7,20	13	26	14 जुलाई से 13 अगस्त तक कर्क में	6,7,14,15,23,24	1,2,10,11,18,19,29	8,16,17,27	3,4,21,22,31
अगस्त	–	9	27	11.23	1.10,24. 31	3,16,30	10	23	14 अगस्त से 13 सितम्बर तक सिंह में	2,3,19,20,21,29,30	7,15,16,24,25	4,5,13,22	1,9,17,28
सितम्बर	22	–	25	7.20	1.6,21. 30	12,26	7	19	14 सितम्बर से 14 अक्टूबर तक कन्या में	8,16,17,26,27	3,4,11,12,21,22,30	1,18,28	5,6,13,23
अक्टूबर	19	6	25	4.17	1.3,18.31	10,23	4,29	17	15 अक्टूबर से 13 नवम्बर तक तुला में	5,13,14,23	1,18,19,27,28	7,16	2,3,11,21,22,30
नवम्बर	16	5	23	1.13,28. 30	14.27	6,19	26	14	14 नवम्बर से 12 दिसम्बर तक वृश्चिक में	1,10,11,19,20,28,29	5,6,15,16,24,25	3,4,12,13,30	17,18,27
दिसम्बर	13	–	23	1.11,25 .31	12.24	1,14,28	24	12	13 दिसम्बर से 14 जनवरी तक धनु में	17,18,25,26	2,3,13,21,29,30	1,9,10,19,27,28	4,14,15

पेरिगी (समीप) – बिन्दु जहाँ पर चन्द्र पृथ्वी के करीब होता है। एपोजी (दूर)– बिन्दु जहाँ पर चन्द्र पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर रहता है। पूर्णिमा से अमावस्या तक चन्द्र को आने में 29.5 दिन लगते हैं। उत्तरायण की स्थिति में चन्द्र जब रवि पथ से गुजरता है तो उसे राहु एवं जब दक्षिणायण की स्थिति में रवि पथ से गुजरता है तो केतु कहते हैं। ये दोनों दिन कृशि कार्य हेतु उपयुक्त नहीं होते हैं। उत्तरायण – चन्द्र के बढ़ते क्रम को कहते हैं। दक्षिणायण – चन्द्र के घटते क्रम को कहते हैं। शनि के विपरीत चन्द्र – यह दिन सभी कृषि क्रियायों के लिए उपयुक्त होता है। इस दिन बी.डी.501 का छिड़काव किया जाना श्रेयस्कर होता है। बुआई – पूर्णिमा के 48 घंटे पहले की जानी चाहिए।

आम की वैश्विक प्रजातियों की उपयोगिता एवं संरक्षण

आशीष यादव[1], पी.एल. सरोज[2], विशम्भर दयाल[3], विनीत सिंह.[4] एवं शैलेन्द्र राजन[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम भारत की सबसे महत्वपूर्ण फल फसल है। भारत का विश्व में आम उत्पादन एवं इसके क्षेत्रफल में पहला स्थान है। आम के आनुवंशिक संसाधन देश के किसानों की आवश्यकता के अनुसार नई प्रजातियों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और वैश्विक जलवायु परिवर्तन के परिदृश्य में यह और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। देश में आम की उत्पादकता में सुधार के साथ–साथ विशिष्ट लक्षणों वाली नई प्रजातियों का विकास करने के लिए मुख्य रूप से प्राकृतिक आनुवंशिक विविधता का ही उपयोग किया गया है। अन्य देशो में आम की विशिष्ट लक्षणों वाली बहुत सारी प्रजातियाँ पाई जाती है, इस संदर्भ में, वैश्विक आम जीन पूल का संग्रह एवं संरक्षण वर्तमान और भविष्य के संकरण कार्यक्रमों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान में आम की प्रजातियों का संग्रह 1975 में शुरू हुआ जब भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान ने सेंट्रल मैंगो रिसर्च स्टेशन, लखनऊ के रूप में शुरुआत की। सेंट्रल मैंगो रिसर्च स्टेशन, लखनऊ में पहली वैश्विक प्रजाति ऑस्ट्रेलिया की केंसिंग्टन प्राइड को लगाया गया, फिर संयुक्त राज्य अमेरिका (यू.एस.ए.) की टॉमी एटकिंस और सेंसेशन को जोड़ा गया। वर्तमान में संस्थान में विभिन्न देशों की आम की 18 वैश्विक प्रजातियों को संरक्षित किया जा रहा है। फील्ड जीन बैंक ने न केवल वैश्विक आम की प्रजातियों का संरक्षण किया है बल्कि आम की नई प्रजातियों के विकास के लिए उन्हें संकरण के उद्देश्य से उपलब्ध भी कराया है। आम की कुछ महत्वपूर्ण वैश्विक प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1. आम की कुछ वैश्विक प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण

वैश्विक प्रजातियाँ	जनक	उत्पत्ति का स्थान	संक्षिप्त विवरण
हैडेन	मुल्गोबा × टरपेंटाइन के बीजू पौधों से चयनित	फ्लोरिडा, यूएसए	हैडेन आम के फल बेहतर गुणवत्ता, शानदार रंग और अच्छे स्वाद वाले होते हैं। पहले हैडेन की खेती बड़े पैमाने पर होती थी, किन्तु फंगस की समस्याओं और असंगत उत्पादन के कारण धीरे–धीरे इसका क्षेत्रफल कम हो गया। फ्लोरिडा में विकसित आम की अधिकांश किस्में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हैडेन के वंशज हैं।
टॉमी एटकिंस	हैडेन × अज्ञात के बीजू पौधों से चयनित	फ्लोरिडा, यूएसए	टॉमी एटकिंस के फल अच्छे रंग, नियमित उत्पादन, अपेक्षाकृत अच्छे कवक प्रतिरोध, लंबी संग्रहण अवधि और अच्छी हैंडलिंग विशेषताओं से युक्त होते हैं। इसी कारण इसकी अच्छी व्यावसायिक खेती होती है। यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका में बिक्री किये जाने वाले आमों में टॉमी एटकिंस का योगदान लगभग 80% है।
सेंसेशन	हैडेन × ब्रूक्स	फ्लोरिडा, यूएसए	सेंसेशन फलों की बाहरी आवरण (छिलका) का रंग गहरा लाल होता है, गूदा बहुत महीन रेशे के साथ हल्का पीला होता है और हल्की सुगंध के साथ स्वाद हल्का मीठा होता है। यह अधिक उपज देने वाली एवं देर से पकने वाली आम की किस्म है, परन्तु इसमें असमान फल पकने की समस्या होती हैं।

[1,2]प्रधान वैज्ञानिक, [3]वैज्ञानिक, [4]शोधकर्मी, [5]पूर्व निदेशक

एडवर्ड	हैडेन × काराबाओ	फ्लोरिडा, यूएसए	एडवर्ड का नियमित लेकिन कम उत्पादन होता है और यह एन्थ्रेक्नोज के लिए मध्यम प्रतिरोधी है। फल की त्वचा चमकीले पीले रंग की होती है जिसमें गुलाबी से लाल रंग का मिश्रण होता है। उत्कृष्ट खाने के गुणों के साथ गूदा कोमल, रेशा रहित, रसदार और गहरे पीले से नारंगी रंग का होता है। फल मीठे एवं मीठी सुगन्ध वाले होते हैं।
एल्डन	कोवसाजी पटेल × अज्ञात	फ्लोरिडा, यूएसए	एल्डन के फल बड़े आकार के होते हैं, परिपक्वता पर रंग हरे, पीले, नारंगी और लाल ब्लश का मिश्रण हो सकता है। गूदा पीला, सुखद सुगंध एवं मीठा होता हैं। फल में एक भ्रूणीय बीज होता है।
इरविन	लिपेंस × हैडेन	फ्लोरिडा, यूएसए	इरविन की अच्छे उत्पादन, सापेक्ष रोग प्रतिरोधक क्षमता और आकर्षक रंग के कारण व्यावसायिक खेती होती है। फलों की त्वचा में परिपक्वता पर एक आकर्षक गहरे लाल रंग का ब्लश होता है। गूदा पीला, रेशा रहित होता है और इसमें हल्का लेकिन मीठा स्वाद और सुखद सुगंध होता है।
कीट	ब्रूक्स × अज्ञात	फ्लोरिडा, यूएसए	कीट के फल बड़े आकार के होते हैं; त्वचा का रंग आमतौर पर हल्का लाल ब्लश के साथ हरा होता है। गूदा रेशेदार और मीठा होता हैं। फल आमतौर पर अच्छी रोग प्रतिरोधक क्षमता और देर से पकने वाले होते है। फल में एक भ्रूणीय बीज होता है।
केंट	हैडेन × ब्रूक्स	फ्लोरिडा, यूएसए	केंट फ्लोरिडा में लोकप्रिय है। फल अधिक मीठी सुगंध, उत्कृष्ट स्वाद और रेशा की कमी होती है। परिपक्व होने पर यह आमतौर पर कुछ लाल ब्लश के साथ हरे–पीले रंग में बदल जाता है, बीज एक भ्रूणीय होता है। यह एन्थ्रेक्नोज के लिए अतिसंवेदनशील है, और फल की खराब संग्रहण अवधि ने फ्लोरिडा में इसके व्यावसायिक पैमाने को सीमित कर दिया है।
ओस्टीन	हैडेन × अज्ञात	फ्लोरिडा, यूएसए	ओस्टीन के फल बड़े आकार के होते हैं। चिकनी त्वचा (छिलका) पर पीले रंग की आभा होती है। लेकिन आमतौर पर यह गहरे बैंगनी रंग की हो जाती है। यह अपने रंग, उत्पादन विशेषताओं और स्वाद के कारण व्यावसायिक पैमाने पर उगाया जाता है। गूदा में न्यूनतम रेशा होता है, इसमें हल्का लेकिन मीठा स्वाद होता है। फलों में एकभ्रूणीय बीज होते हैं।
पाल्मर	हैडेन × अज्ञात	फ्लोरिडा, यूएसए	पाल्मर आम के फल बड़े आकार के होते हैं, यह व्यावसायिक रूप से देर से पकने वाली किस्म है। पके होने पर फलों का छिलका लाल ब्लश के साथ पीला होता है। गूदा नारंगी–पीला होता है और इसमें हल्का सुगंधित स्वाद एवं न्यूनतम रेशा होता है। फलों में एकभ्रूणीय बीज होता है।

केंसिंग्टन प्राइड	–	ऑस्ट्रेलिया	यह ऑस्ट्रेलिया की सबसे लोकप्रिय आम की प्रजाति है, जो देश के वार्षिक वाणिज्यिक आम बाजार का 80% हिस्सा है। इसे बहुभ्रूणीय बीज के साथ एक विशिष्ट स्वाद और सुगंध के लिए जाना जाता है। फलों की त्वचा का रंग पीला होता है, जिसमे लाल रंग का ब्लश विकसित होता है। गूदा पीला, मध्यम रेशा के साथ, मीठा और तीखा होता है।
माया	माया किस्म को एक इजरायली बाग में प्राकृतिक क्लोन के रूप में खोजा गया।	इजराइल	माया एक उच्च गुणवत्ता वाला आम है जिसमें एक अच्छा स्वाद, चिकना और रेशा रहित गूदा होता है। कई आमों की तुलना में आकार काफी गोल है। छिलके का रंग गहरा पीला होता है, जिसमें आकर्षक नारंगी–लाल रंग की होती है। छिलका पतला और बीज काफी छोटा एवं एक आभा भ्रूणीय होता है।

स्रोतः www.en.wikipedia.org/wiki/List_of_mango_cultivars

आम की वैश्विक प्रजातियों की उपयोगिता

भारत में आम सुधार कार्यक्रम 19वीं सदी की शुरुआत में शुरू हुआ। बाद में भारत में कई अनुसंधान केंद्रों द्वारा विशेष रूप से सबौर (बिहार) और कोदुर में चालीसवें दशक के प्रारंभ में आम सुधार कार्य शुरू किया गया। 1950 के दौरान, पंजाब में आम सुधार कार्य शुरू किया गया और 1951 में सहारनपुर में नियमित उपज वाली आम की किस्मों को विकसित करने के लिए कार्य शुरू किया गया। भा.कृ.अनु.सं. में आम सुधार कार्यक्रम 1961 में शुरू किया गया। 1980 तक, उच्च एवं नियमित उपज, उच्च सघन वृक्षारोपण में इसकी उपयुक्तता के लिए बौनापन, फलों की गुणवत्ता और लंबी संग्रहण अवधि के लिए आम की किस्मों के विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया। 1980 के दशक के बाद, आम सुधार कार्यक्रम में कम मिठास, अच्छी चीनीः अन्य मिश्रण, फलों की लंबी संग्रहण अवधि एवं लाल–छिलके वाली किस्मों के विकास के लिए अतिरिक्त उद्देश्य परिभाषित किया गया। वैश्विक निर्यात बाजारों को ध्यान रखते हुए विदेशी आम की प्रजातियों का आम के संकरण में उपयोग करके आम की कई संकर प्रजातियाँ विकसित की गई है जिनका विवरण तालिका 2 में दिया गया हैं।

तालिका 2. संकर आम के विकास में वैश्विक आम की प्रजातियों का उपयोग

जारी किए गए संकर आम	जनक	वर्ष	संस्थान	महत्वपूर्ण विशेषताएं
पूसा अरुणिमा	आम्रपाली × सेंसेशन	2002	भा.कृ.अनु.सं. नई दिल्ली	प्रजाति नियमित फल देने वाली एवं सघन बाग में उपयुक्त प्रजाति रोपण के लिए उपयुक्त (6 मीटर × 6 मीटर)। जुलाई के प्रथम सप्ताह तक फल पक जाते हैं। फल मध्यम से बड़े (230 से 250 ग्राम), फलों के कंधों पर आकर्षक लाल रंग की आभा और मध्यम टीएसएस (19.5° ब्रिक्स) हैं। यह पकने के बाद कमरे के तापमान पर लंबी संग्रहण अवधि (10 से 12 दिन) के साथ घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों बाजारों के लिए उपयुक्त है।
पूसा सूर्य	एल्डन से चयन (EC No. 141457)	2002	भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली	पेड़ अर्ध–बौने और करीब रोपण के लिए उपयुक्त (6 मीटर × 6 मीटर)। फल उत्तरी भारत में जुलाई के मध्य तक पक जाते हैं, मध्यम से बड़े (260 से 290 ग्राम) आकर्षक खुबानी–पीले छिलके वाले गुलाबी–लाल रंग के साथ। मध्यम कुल घुलनशील ठोस (19.0° ब्रिक्स), पकने के बाद कमरे के तापमान पर लंबी भण्डारण अवधि (10 से 12 दिन)। घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों बाजारों के लिए उपयुक्त।

पूसा प्रतिभा	आम्रपाली × सेंसेशन	2011	भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली	आकर्षक फल आकार, चमकीले लाल छिलके और संतरे के रंग के गूदे के साथ नियमित फलने वाली किस्म है। इसमें अच्छी मिठास : अम्ल मिश्रण एवं समान आकार के फल होते हैं। पकने के बाद कमरे के तापमान पर 7 से 8 दिन की भण्डारण अवधि होती है। पौधे कम वृद्धि करने वाले होते हैं और इस संकर के लगभग 278 पौधों को एक हेक्टेयर (6 मीटर × 6 मीटर) में लगाया जा सकता है, प्रति पौधे के आधार पर, यह दशहरी की तुलना में लगभग 3.0 गुना अधिक उपज देता है, जिसमें 'ऑन' और 'ऑफ' ईयर फ्रूटिंग शामिल है।
पूसा श्रेष्ठ	आम्रपाली × सेंसेशन	2011	भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली	पौधे कम वृद्धि करने वाले होते हैं और सघन बागवानी रोपण (6 मीटर × 6 मीटर) के लिए उपयुक्त होते हैं। लम्बे फल और आकर्षक लाल छिलके के साथ नियमित फलने वाली किस्म है। गूदा नारंगी रंग का, रेशा रहित और पकने पर दृढ़, मध्यम चीनी : अम्ल मिश्रण, एक समान फल आकार (228 ग्राम) और उच्च गूदा प्रतिशत (71.9%) होता है। इसमें बीटा–कैरोटीन और एस्कॉर्बिक अम्ल (बीटामिन बी) अच्छी मात्रा में होता है। कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 20.3%, विटामिन सी (40.3 मिलीग्राम/100 ग्राम पल्प) और β–कैरोटीन (10,964 माइक्रोग्राम/100 ग्राम गूदा) हैं। कमरे के तापमान पर भण्डारण अवधि (7 से 8 दिन) है। यह घरेलू बाजार के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिए भी उपयुक्त है।
पूसा लालिमा	दशहरी × सेंसेशन	2011	भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली	फल आकर्षक चमकीले लाल छिलके के साथ पीले हरे रंग की पृष्ठभूमि पर नियमित फलने वाली किस्म है। पौधे कम वृद्धि हैं और सघन बाग में रोपण के लिए उपयुक्त हैं, गूदा नारंगी रंग का होता है जिसमे अच्छा मिठास : अम्ल मिश्रण है। फल (209 ग्राम), कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (19.7%), विटामिन सी (34. 7 मिलीग्राम/100 ग्राम पल्प) और उच्च β–कैरोटीन (13,028 माइक्रोग्राम/100 ग्राम पल्प)। कमरे के तापमान पर संग्रहण अवधि (5 से 6 दिन)। यह घरेलू बाजार के साथ–साथ अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिए भी उपयुक्त है।
पूसा दीपशिखा	आम्रपाली × सेंसेशन	2020	भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली	फल नियमित और एक समान आकार के होते हैं। फल का छिलका चमकदार लाल, गूदा नारंगी–पीला, मध्यम कुल घुलनशील ठोस (18.67%), उच्च गूदा प्रतिशत (70%) और एस्कॉर्बिक अम्ल (35. 34 मिलीग्राम/100 ग्राम गूदा), β–कैरोटीन (9.48 मिलीग्राम/ किलो गूदा), कमरे के तापमान पर अच्छा संग्रहण अवधि (7 से 8 दिन)। यह मध्यम सघन बागवानी (6 मीटर × 6 मीटर) के लिए उपयुक्त है।
कोंकण सम्राट	अल्फांसो × टॉमी एटकिंस	2014	क्षे.कृ.अनु.के. वेंगुर्ले, दापोली, महाराष्ट्र	अल्फांसो और टॉमी एटकिंस की तुलना में इस किस्म में पौधों की वृद्धि बेहतर होती है। अल्फांसो (250 ग्राम) और टॉमी एटकिंस (484 ग्राम) की तुलना में मध्यम आकार के फल (284.50 ग्राम)। गूदा प्रतिशत (73.28), अल्फांसो (74.60%) और टॉमी एटकिंस (71.79%) के समान है। अच्छा कुल घुलनशील ठोस (20.03° ब्रिक्स) है। यह किस्म स्पंजी ऊतक नामक दैहिक व्याधि मुक्त और कम रेशे वाली होती है।

उत्कृष्ट भारतीय प्रजातियों की तुलना में, आम की वैश्विक प्रजातियाँ कई कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों के लिए अत्यधिक अनुकूल हैं और नियमित रूप से फलने वाली होती हैं। वैश्विक प्रजातियाँ अत्यधिक आकर्षक होती हैं और परिपक्वता पर लाल ब्लश विकसित करती हैं, दृढ़ गूदा, उच्च गूदा से बीज अनुपात, लंबी संग्रहण अवधि और नियमित रूप से फलन उनकी बढ़ती लोकप्रियता के कारण हैं। फ़्लोरिडा की किस्में, जैसे 'टॉमी एटकिंस', 'कीट', इत्यादि में उपरोक्त विशिष्ट लक्षणों के अतिरिक्त एन्थ्रेक्नोज के लिए मध्यम प्रतिरोधी क्षमता एक अतिरिक्त लाभ प्रदान करती है। जिसकी वजह से भारत में आम सुधार कार्यक्रम में इन प्रजातियों का उपयोग बहुतायात से किया जा रहा है। भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान का लगभग 35 वर्ष पुराना आम सुधार कार्यक्रम है। जिसमें आम की वैश्विक प्रजातियों का उपयोग करते हुए विभिन्न संकर आम विकसित किए जा रहे हैं, जैसे एच–1042, एच–1723, एच–1739, एच–2047, एच–2709, एच–3669, एच–3803, एच–3842, एच–4015, एच–4061, एच–4065, एच–4189, एच–4208, एच–4252, एच–4267 और एच–4352। इनमें से कुछ आशाजनक संकर आम हैं और मूल्यांकन के अग्रिम चरण में हैं। एक आशाजनक संकर आम एच–1739, भाकृअनुप–ए.आई.सी.आर.पी. फल के बहु स्थान परीक्षण में है और कई संस्थान के शोध पर अच्छी उपज एवं गुणवत्ता दर्ज की गई है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा हिन्दी भाषा की छायावादी युग के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक कवियत्री मानी जाती हैं। आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें आधुनिक मीरा के नाम से भी जाना जाता है। महादेवी ने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। उनके काव्य में सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी दिखता है। महादेवी वर्मा के आठ कविता संग्रह है जिनमे निहार, रश्मि, सांध्यगीत आदि प्रमुख हैं, साथ ही 10 से ज्यादा काव्य संकलन, रेखाचित्र, संस्मरण और निबंध संग्रह हैं।

उच्च व्यावसायिक क्षमताओं से युक्त हैं फलों एवं सब्जियों के किण्वित उत्पाद

नीलिमा गर्ग[1] एवं संजय कुमार[2]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

फल आरोग्यता का पर्याय है। यह न केवल पौष्टिक तत्व प्रदान कर हमें बलवान एवं ऊर्जावान बनाता है अपितु हमारे शरीर को निरोगी बनाये रखने में हमारी सहायता करता है। फलों में उच्च मात्रा में पोषक तत्व पाए जाते है जो हमारे शरीर के लिए अत्यंत उपयोगी होते हैं। इनमे प्रचुर मात्रा में खाद्य रेशे, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन्स, खनिज, फिनोलिक्स, फ्लेवेनोएड्स, वर्ण पदार्थ आदि उपलब्ध होते है, जो काफी स्वस्थ्यवर्धक होते हैं। अलग–अलग किस्म के फलों में विभिन्न जैव रसायन पदार्थों की मात्रा भी अलग–अलग होती है। इस प्रकार हर फल अलग प्रकार के गुणों से युक्त होते है।

भारत विश्व में फलों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है, जो कुल विश्व का लगभग 8 प्रतिशत फल पैदा करता है। फिर भी यहाँ फल प्रसंस्करण का स्तर बहुत ही कम है। यह भारत में कुल फल उत्पादन का केवल 10 प्रतिशत भाग ही प्रसंस्कृत करता है, जबकि इंडोनेशिया, मलेशिया जैसे छोटे देश में प्रसंस्करण का स्तर 70–80 प्रतिशत तक है। इसका सबसे प्रमुख कारण यहाँ प्रसंस्करण इकाइयों की कमी है। इसके अतिरिक्त एक कारण यहाँ नवीन उत्पादों के विकास में कमी भी है। बदलते युग में नए प्रकार के उत्पादों की मांग बढ़ी है। अब लोगों में इस प्रकार के उत्पाद ज्यादा अपेक्षित है, जो उत्तम स्वाद–सुगंध के साथ–साथ स्वास्थ्यप्रद भी हो।

भारतीय बाजारों में गैर–किण्वित प्रकार के फल पदार्थों का बाहुल्य है। इनमे गूदा, स्क्वैश, नेक्टर, रेडी–टू–सर्व पेय, शरबत, जैम, जेली, अचार, मुरब्बा, चटनी, कैंडी, टॉफी, सूखी व रसीली फांके, आदि प्रमुख हैं। किण्वित उत्पाद यदा–कदा ही बाजार में दिखाई देते हैं। गन्ने और जामुन का सिरका ही प्रमुख फल आधारित किण्वित उत्पाद है, जो साधारणतया दुकानों पर उपलब्ध होता है। किण्वित उत्पादों की अपनी अलग विशेषता होती हैं। सामान्यतया इस प्रकार के उत्पाद स्वास्थ्य के लिए काफी उत्तम होते हैं। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने सूक्ष्मजीवों का प्रयोग कर विभिन्न फलों से कई प्रकार के किण्वित उत्पादों का निर्माण किया है, जो स्वाद एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी उत्तम हैं। इनमे वाइन, साईडर, प्रोबायोटिक पेय, सिरका, किण्वित कैंडी, प्रोबायोटिक अचार तथा प्रोबायोटिक गूदा प्रमुख है। उक्त खाद्य पदार्थ कई प्रकार की किण्वन प्रक्रियाओं के उपयोग द्वारा बनाये गए हैं। इनमें अल्कोहलिक, लैक्टिक अम्ल तथा एसिटिक अम्ल किण्वन क्रियाएं प्रमुख हैं।

अल्कोहलिक किण्वन द्वारा जनित उत्पाद

फलों की वाइन

किण्वित उत्पादों में फलों की वाइन एक उच्च कोटि का पेय है, जो उत्कृष्ट स्वाद एवं सुवास से युक्त है। संस्थान ने *सैक्रोंमाइसिस सेरेविसी* यीस्ट का उपयोग करके अल्कोहलिक किण्वन प्रक्रिया द्वारा आम, अमरुद, बेल, जामुन, आंवला, शहतूत, महुआ, स्ट्राबेरी, आड़ू, गन्ने, आदि की वाइन का निर्माण किया है। लगभग 10 प्रतिशत अल्कोहल युक्त ये वाइन फलों की विशिष्ट सुगंध,

[1]पूर्व निदेशिका, [2]मुख्य तकनीकी अधिकारी

उपयुक्त कसैलापन तथा पोषक गुणों से परिपूर्ण हैं तथा स्वास्थ्य के लिए हितकर भी हैं। आम की कई व्यावसायिक किस्मों जैसे दशहरी, चौसा तथा लंगड़ा से निर्मित वाइन में इन किस्मो की विशिष्ट सुगंध पाई जाती है। आम की वाइन में पीले–नारंगी रंग का बीटा कैरोटिन नामक वर्ण तत्व पाया जाता हैं, जो एक उच्च कोटि का प्रतिआक्सीकारक योगिक है। इसके अतिरिक्त मैन्जिफेरिन तथा ल्युपियॉल जैसे कैंसर रोधी जैव रसायन भी आम की वाइन में पाए जाते हैं। ये सभी स्वास्थ्य के लिए काफी लाभकारी पदार्थ हैं। इसी प्रकार आंवले की वाइन में प्रचुर मात्रा में स्वास्थ्यप्रद विटामिन–सी व पॉलिफिनोल पाए जाते हैं। बेल की वाइन में काफी मात्रा में पॉलिफिनोल पाए जाते हैं। इसके अलावा मार्मेलोसिन तथा सोरालेन नामक उच्च कोटि के जैव रसायनिक पदार्थ भी इसमें उपस्थित होते है, जो शारीरिक लाभ प्रदान करते हैं। जामुन, स्ट्राबेरी, शहतूत तथा आडू की वाइन में एन्थोसायानिन नामक बैगनी–लाल वर्ण पदार्थ पाया जाता है, जिसकी उच्च प्रतिआक्सीकारक क्षमता होती है। यह मानव शरीर की विभिन्न रोगों से रक्षा करता है। संस्थान ने कई प्रकार की मिश्रित वाइन का भी निर्माण किया है, जिनमे गन्ने–आंवला, मशरूम–आंवला, शहद–आंवला की वाइन प्रमुख हैं। जो मिश्रित फलों के गुणों से युक्त हैं।

बाजार में उपलब्ध वाइन सामान्यतया आसवन विधि द्वारा निर्मित की जाती है। यह क्रिया उच्च ताप पर संचालित होती है, अतः इसमें पोषक तत्वों का काफी ह्रास होता है। इस प्रकार की वाइन स्वास्थ्य के लिए ज्यादा लाभकर नहीं होती है। संस्थान द्वारा निर्मित वाइन में आसवन क्रिया सम्मिलित नहीं होती है तथा सम्पूर्ण प्रक्रिया सामान्य ताप पर संचालित होती है, अतः तैयार वाइन में पोषक तत्त्व उचित मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इनमे फलों की सुगंध तथा रंग भली प्रकार परिरक्षित होते हैं। एक निर्धारित मात्रा में इनका सेवन स्वास्थ्य के लिए काफी लाभकारी होता है। ये मानसिक तनाव दूर करने तथा अच्छी नींद प्रदान करने में काफी सहायक हैं। बाजार में इनकी अच्छी संभावनाएं हो सकती हैं।

फलों के साईडर

साईडर एक हल्की अल्कोहल युक्त वाइन का रूप है, जो स्वाद में हल्की मीठी–कसैली होती है। साईडर में लगभग 4 प्रतिशत अल्कोहल उपस्थित होता है, जिसमे वाइन जैसा कसैलापन तो होता है पर नशा नहीं होता है। अतः इसका सेवन सभी आयु वर्ग के लोग कर सकते हैं। फलों की भीनी सुगंध लिए मिठास युक्त यह पेय हर एक को भाता है। सामान्यतया 'साईडर' शब्द का प्रयोग सेब के किण्वित पेय के लिए किया जाता है। सेब का साईडर ही बाजार में उपलब्ध होता है। संस्थान ने कई अन्य फलों से साईडर का निर्माण किया है, जैसे आम, आंवला, अमरुद, बेल, जामुन, आदि। इनमे इन फलों की विशिष्ट सुगंध उपस्थित होती है। आम के पने की तरह मसालेदार साईडर का निर्माण भी किया गया है, जो स्वाद–सुगंध में काफी उत्कृष्ट है। फलों के साईडर उच्च कोटि के नवीन उत्पाद हैं, जो सभी आयु वर्ग के अनुकूल होने के कारण बाजार में काफी सफल हो सकता है।

लैक्टिक अम्ल किण्वन द्वारा जनित उत्पाद

फलों एवं सब्जियों के प्रोबायोटिक पेय

'प्रोबायोटिक' का अर्थ है, ऐसे खाद्य पदार्थ जिनमें बड़ी संख्या में लाभकारी सूक्ष्मजीव जीवित अवस्था में उपलब्ध हों। इन सूक्ष्मजीवों में अधिकांशतः कई तरह के जीवाणुओं की प्रजातियाँ होती हैं, जैसे *लैक्टोबैसिलस, बाईफिडोबैक्टीरियम, स्ट्रैप्टोकोकस* आदि जीवाणुओं की विभिन्न प्रजातियाँ। इसी प्रकार सैकेरोमाइसेज यीस्ट की कुछ प्रजातियाँ भी प्रोबायोटिक का कार्य करती हैं। हमारे पाचन तंत्र विशेषकर आंतो में 400 से अधिक लाभकारी व हानिकारक प्रजातियों के जीवाणु पाए जाते हैं। लाभकारी जीवाणु आंतो को पाचन में सहायता प्रदान

करते हैं तथा उनकी सक्रियता तथा प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाते हैं। वर्तमान युग में बढ़ती एंटीबायोटिक औषधियों के उपयोग से हानिकारक जीवाणुओं के साथ साथ लाभकारी जीवाणु भी नष्ट हो जाते हैं, जिससे पाचन सम्बन्धी व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं, जो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। प्रोबायोटिक युक्त उत्पादों के उपभोग से पाचन तंत्र में उपस्थित लाभकारी जीवाणुओं की संख्या उचित स्तर पर बनाये रखने में सहायता मिलती है। प्रोबायोटिक पदार्थ कई प्रकार के रोगाणुओं को नष्ट करने में सक्षम होते हैं।

बाजार में उपलब्ध प्रोबायोटिक पेय मुख्यता डेरी आधारित हैं, जिनमे थोड़ी वसा की मात्रा भी होती है, जो स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है। संस्थान ने लैक्टिक अम्ल किण्वन विधि द्वारा *लैक्टोबैसिलस* जीवाणु की प्रजातियों का उपयोग कर फल एवं सब्जी आधारित कई प्रोबायोटिक पेयों का निर्माण किया है, जिनमे फलोंएवं सब्जियों के सम्पूर्ण गुण समाहित हैं। उक्त पेय विशिष्ट फल का सुगंध लिए हल्के खट्टे स्वाद के होते हैं। ये उच्च कोटि के स्वास्थ्यवर्धक तथा ताजगी प्रदान करने वाला पेय है, जिसके सेवन से पाचन सम्बन्धी रोगों जैसे गैस, कब्ज आदि में काफी राहत मिलती है, साथ ही रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। संस्थान ने कच्चे आम, आंवला, बेल, जामुन, स्ट्राबेरी, आड़ू, खीरा, गाजर, बंदगोभी, शिमलामिर्च, ब्रोकली, आदि फलों एवं सब्जियोंसे प्रोबायोटिक पेय का निर्माण किया है, जिनमे इन फलों के स्वास्थ्यवर्धक अवयव उपलब्ध हैं। फल आधारित प्रोबायोटिक पेय की बाजार में काफी अच्छी संभावनाएं हैं।

फलों की किण्वित कैंडी

संस्थान ने लैक्टिक अम्ल किण्वन तकनीक का प्रयोग कर उत्कृष्ट किस्म की कैंडी का विकास किया है। इस प्रकार से विकसित कैंडी काफी आकर्षक, चमकदार, हल्के रंग, उत्तम स्वाद तथा खाने में मुलायम होती है। इस प्रकार से आम, आंवले, बेल, स्ट्राबेरी, आड़ू, आदि फलों की कैंडी का विकास किया गया है। कैंडी के निर्माण के दौरान भी एक सह–उत्पाद के रूप में प्रोबायोटिक पेय बनता है, जो उत्पादनकर्ता को अतिरिक्त आय प्रदान करने में सक्षम है। किण्वित कैंडी का अच्छा बाजार हो सकता है।

फलों के प्रोबायोटिक गूदे

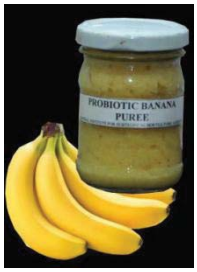

प्रोबायोटिक पेय की तरह संस्थान ने कुछ फलों से प्रोबायोटिक गूदे बनाने की तकनीक का विकास किया है, जैसे आम तथा केले के प्रोबायोटिक गूदे। इनमे अत्यधिक संख्या में आंतो के लिए लाभप्रद लैक्टिक अम्ल जीवाणु उपलब्ध होते है। इस प्रकार के खाद्य पदार्थ फलों का पूरा स्वाद, सुवास तथा उनके पोषक तत्त्व लिए होते हैं। इनका विपरण सुनिश्चित शीतल श्रृंखला के माध्यम से किया जा सकता है, क्योंकि की इनका परिवहन एवं भण्डारण ठंडे तापक्रम पर ही किया जाता है तथा इनकी भंडारण क्षमता भी अधिक नहीं होती है। यह एक नए प्रकार का उत्पाद है, जिसकी बाजार में अच्छी मांग हो सकती है।

फलों तथा सब्जियों के प्रोबायोटिक अचार

बाजार में उपलब्ध अचार एक परंपरागत विधि से बनाये जाते हैं। संस्थान ने लैक्टिक अम्ल किण्वन तकनीक का प्रयोग कर कुछ अचार बनाये हैं, जो स्वादोंन्मुख होने के साथ साथ स्वास्थ्यवर्धक भी हैं। इनमें लाभदायक *लैक्टोबैसिलस* जीवाणु भी पाए जाते हैं। संस्थान ने आम, बेल, जामुन, मशरूम, बंदगोभी, खीरा तथा मिश्रित सब्जियों के प्रोबायोटिक अचार बनाये हैं। इन अचारों के निर्माण में प्रोबायोटिक पेय एक सह–उत्पाद के रूप में जनित होता है। इस प्रकार से एक ही श्रोत पदार्थ से दो उत्पादों का निर्माण हो जाता है, जिससे उत्पादनकर्ता को दुगना फायदा हो सकता है। सहजन एक विशिष्ट स्वास्थ्य गुणों से युक्त पादप है, जो शरीर के जोड़ों के लिए काफी लाभप्रद है। संस्थान ने सफलतापूर्वक सहजन की अपशिष्ट पत्तियों का उपयोग किण्वित अचार बनाने में किया है।

एसिटिक अम्ल किण्वन द्वारा जनित उत्पाद

फलों के सिरके

सिरका भारतीय भोजन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह एक तीक्ष्ण सुगंध वाला तीखा खट्टा पेय है, जो भूख बढाने, भोजन का स्वाद बढाने तथा पाचन में काफी सहायक होता है। सामान्यतया इसका उपभोग इसमें प्याज, लहसुन, खीरा, मूली, आदि डालकर किया जाता है। बाजार में उपलब्ध सिरकों में गन्ने तथा जामुन का सिरका प्रमुख है। संस्थान ने इन परंपरागत सिरको के अलावा कुछ अन्य फलों से एसिटिक अम्ल किण्वन प्रक्रिया द्वारा *एसीटोबैक्टर* जीवाणु का प्रयोग कर सिरके का निर्माण किया है, जैसे आम, आंवले, अमरुद, अंगूर, बेल, आदि का सिरका, जिनकी बाजार में अच्छी मांग हो सकती है। संस्थान ने एक तीव्र गति से सिरका बनाने की तकनीक को भी उत्तर प्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद (यू.पी. सी.एस.टी.) को हस्तांतरण किया है।

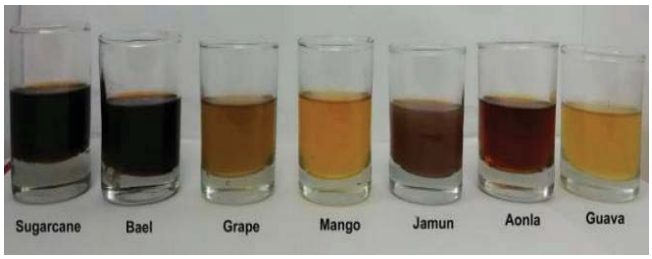

❁❁❁❁

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, निबन्धकार तथा सम्पादक थे। उन्होंने हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति के रूप में कार्य किया। वे सम्मेलन द्वारा विद्यावाचस्पति की उपाधि से सम्मानित किये गए थे। उन्होंने कृष्ण–राधा, राम–सीता से संबंधित विषयों के साथ–साथ आधुनिक समस्याओं को भी विषय बनाया और उन पर नवीन ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उनका सुप्रसिद्ध 'प्रिय प्रवास' नामक खड़ी बोली हिंदी का पहला महाकाव्य, मंग. लाप्रसाद पारितोषिक से सम्मानित किया गया। भाषा पर हरिऔध जी का अद्‌भुत अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ उन्होंने संस्कृत–गर्भित उच्च साहित्यिक भाषा में कविता लिखी वहाँ दूसरी ओर उन्होंने सरल तथा मुहावरेदार व्यावहारिक भाषा को भी सफलतापूर्वक अपनाया।

उत्तर प्रदेश में फल प्रसंस्करण की वर्तमान परिदृश्य एवं संभावनाएं

संजय कुमार सिंह[1], आलोक कुमार गुप्ता[2], कर्म वीर[3] एवं अजय कुमार त्रिवेदी[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

देश में खाद्य प्रसंस्करण की भारी संभावनाओं को देखते हुए केंद्र सरकार द्वारा फल प्रसंस्करण की दिशा में पिछले 5–6 सालों से कई महत्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे है। शहरीकरण, एकल परिवार के बढ़ते चलन के कारण प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की मांग बढ़नी ही है। विदेशी बाजारों में भी ऐसे गुणवत्ता युक्त उत्पादों की अच्छी मांग है। देश के शीर्षस्थ औद्योगिक संगठन एसोचौम और चार्टर्ड अकाउंटेंट की वैश्विक संस्था ग्रैंडथार्टन की रिपोर्ट के मुताबिक खाद्य प्रसंस्करण भारी संभावनाओं का क्षेत्र है। वर्ष 2024 तक इसमें करीब 90 लाख रोजगार के मौके सृजित होंगे, इसमें से करीब 10 लाख लोगों को तो सीधे रोजगार मिलेगा।

भारत बागवानी फसलों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है, जो वैश्विक फल–सब्जियों के उत्पादन का लगभग 12 प्रतिशत उत्पादन करता है। भारत की विविध कृषि जलवायु (समशीतोष्ण से लेकर उष्ण कटिबंधीय तक) के कारण उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण कटिबंधीय फलों और सब्जियों की उपलब्धता की बहुत अधिक गुंजाइश प्रदान करती हैं। वर्तमान में सभी बागवानी फसलों को मिलाकर 7 प्रतिशत क्षेत्रफल के साथ देश के 12 मिलियन हेक्टेयर में अच्छादित है। जिसमें 117 मिलियन टन का उत्पादन होता है। जो सकल कृषि उत्पादन का 18 प्रतिशत योगदान देता है।

भारत फल उत्पादन में चीन के बाद दूसरे और सब्जी उत्पादन में पहले स्थान पर है। भारत में फलों और सब्जियों के उच्च उत्पादन के वावजूद फल/सब्जी के 5 प्रतिशत ही प्रसंस्कृत किया जाता है जबकि थाईलैंड में 30 प्रतिशत, ब्राजील एवं अमेरिका में 70 प्रतिशत तथा फिलीपिंस में 78 प्रतिशत तक फलों का प्रसंस्कृत पदार्थ बनाया जाता है। पिछले 5 वर्षो के दौरान अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करने वाली कुछ इकाइयाँ कही–कही पर स्थापित हुई है, जिसमें वैक्यूम सांद्रता, अति ठंढ में सुखाने, सड़न रोकनेवाला पैकेजिंग, व्यक्तिगत त्वरित ठंड की मदद से विशेष रूप से टमाटर, मशरूम, उष्णकटिबंधीय फलों के गूदा, रस सांद्र और जमे हुए फल और सब्जियां के प्रसंस्करण की जा रही है। हालाँकि प्रसंस्करण इकाइयों की वृद्धि मुख्य रूप से कच्चे माल की तैयार उपलब्धता के अलावा बुनियादी ढांचागत सुविधाओं और सुविधाजनक बाजारों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। लुधियाना के सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ पोस्ट हार्वेस्ट इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी द्वारा 2015 के एक अध्ययन में यह जानकारी प्रदत्त की गई कि भारत में फलों और सब्ज़ियों के संदर्भ में पोस्ट हार्वेस्ट नुकसान तकरीबन 31,500 करोड़ रुपए का रहा।

राज्य में फलों व सब्ज़ियों का उत्पादन दिनोदिन बढ़ता ही जा रहा है परंतु सामान्य खाद्य प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी की अनुपलब्धता के कारण इनका एक बहुत बड़ा भाग (लगभग 30 से 40%) नष्ट हो जाता है। फलों व सब्ज़ियों का उत्पादन विशिष्ट मौसम में बहुत बड़ी मात्रा में होता है तथा ऑफ सीजन में उनकी मांग बहुत बढ़ जाती है। जिस समय ये फल व सब्जियाँ बहुत अधिक मात्रा में बाजार में पहुँचते हैं, कृषकों को उनकी लागत के बराबर मूल्य भी नहीं मिल पाता है। इस फलों व सब्जियों की उपलब्धता साल भर सुनिश्चित करने हेतु, राज्य में भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, नयी दिल्ली के संस्थानों के अलावा उत्तर प्रदेश के 77 सामुदायिक फल संरक्षण केन्द्रों पर अल्पावधि के फल संरक्षण कार्यक्रम आयोजित भी किए जाते हैं, जिनका उद्देश्य वैज्ञानिक पद्धति से खाद्य पदार्थों को संरक्षित व स्वादिष्ट बनाए रखना है।

भारत सरकार द्वारा कराये गये सर्वे तथा विभिन्न रिपोर्टो के आधार पर खाद्य प्रसंस्करण सेक्टर में मूल्य संवर्धन तथा लेवल ऑफ प्रोसेसिंग अन्य देशों की तुलना में अपेक्षाकृत कम है। देश में प्रसंस्करण का स्तर 10 प्रतिशत तथा उत्तर प्रदेश में प्रसंस्करण का स्तर 06 प्रतिशत ही

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [2,3]वैज्ञानिक, [4]प्रधान वैज्ञानिक

है। जबकि अन्य देशों में प्रसंस्करण स्तर कहीं अधिक है। देश एवं उत्तर प्रदेश में खाद्य प्रसंस्करण सेक्टर में पूँजी–निवेश प्रोत्साहन कराने की नितान्त आवश्यकता है। भारत सरकार द्वारा आगामी पाँच वर्षों में इसे 20 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। उत्तर प्रदेश में भी यही स्तर प्राप्त करना प्रस्तावित है।

उत्तर प्रदेश की विविधतापूर्ण जलवायु सभी प्रकार की बागवानी फसलों के उत्पादन के लिए उपयुक्त है। औद्यानिकी के क्षेत्र मे देश के कुल उत्पादन मे उत्तर प्रदेश का अग्रणी स्थान है। प्रदेश की लगभग 92 प्रतिशत छोटी जोत के किसानों के लिए बागवानी फसले इकाई क्षेत्र से अधिक आय, रोजगार एवं पोषण उपलब्ध कराने मे सक्षम है। बागवानी फसलों के बढ़ते महत्व के साथ इसके उत्पादक जागरूक हैं और उपलब्ध संसाधनों का इष्टतम उपयोग करते हुए बागवानी फसलों को अपनाकर आर्थिक स्थिति भी सुधार रहे हैं। बागवानी फसलों में सभी प्रकार के फल, सब्जियां, फूल, औषधीय और सुगंधित फसलें, जड़ और कंद मुलवाली फसलें, मसाले और मधुमक्खी पालन के साथ साथ मशरूम उत्पादन एवं इनके मूल्य संबर्धित उत्पाद एवं प्रसंस्करण शामिल है। बढ़ती मांग और कृषि क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के कारण बागवानी फसलें प्राथमिकता का क्षेत्र बनती जा रही हैं। राज्य में बागवानी फसलों के व्यावसायीकरण और कृषि के विविधीकरण के लिए राज्य सरकार द्वारा राज्य के भीतर विभिन्न कार्यक्रम लागू किए जा रहे हैं जैसे क्षेत्र का विस्तार, पुराने आम, अमरूद और आंवला बागों का कायाकल्प, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री का उत्पादन और कटाई के बाद का प्रबंधन आदि शामिल है। उत्तर प्रदेश में तो कई वजहों से इस क्षेत्र की संभावनाएं और बढ़ जाती हैं। सर्वाधिक आबादी के नाते यहां श्रम और बाजार की भी कोई समस्या नहीं है। कई तरह के कृषि जलवायु क्षेत्र और भरपूर पानी की उपलब्धता की वजह से किसानों को प्रसंस्करण इकाइयों की मांग के अनुसार फसल उगाना आसान है। इन्हीं सारी संभावनाओं के चलते एक ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था और पांच साल में पांच करोड़ रोजगार के लक्ष्य के मद्देनजर यूपी सरकार का जोर खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र को बढ़ावा देने का है।

उत्तर प्रदेश में फल प्रसंस्करण की वर्तमान परिदृश्य

राज्य के भीतर खाद्य प्रसंस्करण के सुनिश्चित विकास को बढ़ावा देने के लिए उत्तर प्रदेश खाद्य प्रसंस्करण उद्योग नीति 2012 को भी राज्य सरकार द्वारा ब्याज सब्सिडी, गुणवत्ता और प्रमाणन बाजार विकास, अनुसंधान और विकास के माध्यम से प्रख्यापित किया गया है और प्रावधान के साथ निर्यात को बढ़ावा दिया गया है। जाहिर है इन नीतियों की घोषणा और कार्यान्वयन से खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की स्थापना करके मूल्यवर्धन सुनिष्चित किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकों और उपभोक्ताओं को लाभ होता है और राज्य का समग्र विकास होता है। हालाँकि उत्तर प्रदेश फलों के प्रसंस्करण पर थोड़ी देर से शुरुआत की है लेकिन हम दूसरों के अनुभव से सीख सकते हैं जो शुरुआती शुरुआत कर चुके हैं। प्रसंस्कृत पदार्थो का उत्पादन एक व्यवसाय बनना चाहिए और यह केवल उपभोक्ता जो चाहता है उसका दोहन करके ही हो सकता है उदाहरण के लिए यूरोपीय लोग दृष्टि और रंग से ही खाते हैं। उत्तर प्रदेश आम का दूसरा,अमरूद का चौथा और मटर का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है इससे पता चलता है कि अगर सही दिशा और मार्गदर्शन दिया जाए तो राज्य प्रसंस्करण क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में अत्यधिक योगदान करने की क्षमता रखता है। राज्य को बुंदेलखंड एवं पूर्वी उत्तरप्रदेश को टैप करने की आवश्यकता है विशेष रूप से बंजर भूमि को। सरकार ने अगले पांच साल में फल, शाकभाजी एवं मसाले की खेती के क्षेत्रफल में विस्तार, उपज में वृद्धि और प्रसंस्करण के लिए सरकार ने लक्ष्य तय किए हैं। बागवानी फसलों का क्षेत्रफल 11.6 फीसदी से बढ़ाकर 16 प्रतिशत तथा खाद्य प्रसंस्करण का 6 से बढ़ाकर 20 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया है।

केंद्रीय खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार खेत से बाजार तक पहुंचने के दौरान हर साल करीब 92,651 करोड़ के अनाज, दूध, फल, मांस और मछलियां बर्बाद हो जाती हैं। इनमें से 40,811 करोड़ रुपये की सिर्फ फल और सब्जियां होती हैं। चूंकि तमाम चीजों के उत्पादन में उत्तर प्रदेष ही अग्रणी है। लिहाजा सर्वाधिक घाटा भी यहां के ही किसान सहते हैं। प्रसंस्करण की इकाइयां लगने से यह बर्बादी रुकेगी। इसका सीधा लाभ यहां के किसानों को मिलेगा। साथ ही इन इकाइयों के लिए कच्चे और तैयार माल के उत्पादन, ग्रेडिंग, पैकिंग,

लोडिंग, अनलोडिंग और इनको बाजार तक पहुंचाने के क्रम में स्थानीय स्तर पर लोगों को बड़ी संख्या में रोजगार भी मिलेगा।

उत्तर प्रदेश में फल प्रसंस्करण की संभावनाएं

राज्य सरकार आम, अमरूद व आंवला हेतु फल पट्टी बना रही है, फूड प्रोसेसिंग के क्षेत्र में अपना खुद का व्यवसाय शुरू करने के लिए कई तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी राज्य सरकार शुरू कर रही हैं। इसमें पहला कार्यक्रम फल एवं सब्जी प्रसंस्करण का है, इसमें तरह–तरह के फल और सब्जियों से कई तरह के उत्पाद बनाने को प्रशिक्षण दिया जाएगा। इसके साथ ही बेकरी व कन्फेक्शनरी उत्पाद, दुग्ध प्रसंस्करण, वसा एवं तेल प्रसंस्करण, लघु वनोत्पाद, मसाला प्रसंस्करण, अनाज प्रसंस्करण, मत्स्य, सीफूड प्रसंस्करण और कुक्कुट प्रंस्करण जैसे कार्यक्रम आदि हैं।

उदाहरण के तौर पर जामुन के फल सामान्य तापक्रम पर जल्दी खराब हो जाते हैं, लेकिन मूल्यवान बायोएक्टिव यौगिकों से भरपूर होने के कारण प्रसंस्करण के लिए भी यह अति महत्वपूर्ण हैं। कई गैर–किण्वित उत्पादों की अतिरिक्त ब्रांडीग, डिस्टिल्ड शराब और वाइन जैसे किण्वित प्रोडक्ट काफी संख्या में बनाए जा रहे हैं और लोकप्रिय भी हो रहे हैं। जामुन के फलों में किण्वन के लिए आवश्यक पर्याप्त शर्करा पाई जाती है। इसीलिए यह दुनिया के कई देषों में वाइन बनाने के लिए लिए एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है जो औषधीय गुण से भरपूर होते हैं। कुछ जामुन के शौकीन गूदे का आनंद तो लेते ही हैं और स्वास्थ्य सप्लीमेंट के रूप में उपभोग करने के लिए गुठली का पाउडर बनाकर रख लेते हैं।

सारणी 1. कुछ मुख्य फलों के संभावित प्रसंस्कृत उत्पाद

फलों के नाम	प्रसंस्कृत उत्पाद
आम	रासायनिक रूप से संरक्षित जैम, जेली, पल्प, आरटीएस, स्क्वैश, पन्ना, अचार, पापड़, वाइन, डिब्बाबंद सूखे और जमें हुए आम के गूदे और जैम, डिब्बाबंद स्लाइस, निर्जलित गूदा, जमे हुए टुकड़े और स्लाइस, पारंपरिक अचार, चटनी, अमृत, पेय पदार्थ और लेदर
अमरुद	सूखे और जमे हुए आम के गूदे और जैम, डिब्बाबंद स्लाइस, निर्जलित गूदा, जमे हुए टुकड़े और स्लाइस, पारंपरिक अचार, चटनी, अमृत, पेय पदार्थ और लेदर
अमरुद	जूस, नेक्टर, पल्प, जैम, जेली, सिरप में स्लाइस, डिब्बाबंद अमरुद प्यूरी, फ्रूट बार, सर्व करने के लिए तैयार पेय, निर्जलित उत्पाद, कैंडीज में फ्लेवरिंग एजेंट, केक, बिस्कुट और चॉकलेट बार साथ ही साथ इस्तेमाल किया ता रहा है अन्य फलों के रस या गूदे के लिए एक योजक के रूप में।
जामुन	जूस, आरटीएस, स्क्वैश, वाइन, जैम, जेली, पनीर, टॉफी
बेल	जूस, स्क्वैश, अमृत, टॉफी, स्लैब, पाउडर, रेडी टू सर्व, वाइन
आंवला	मुरब्बा, अचार, कैंडी, जूस, स्क्वैश, जैम, जेली, पाउडर आदि
लीची	डिब्बाबंद लीची, स्क्वैश, सिरप, आरटीएस, जैम, जेली, जूस और सूखे या निर्जलित उत्पाद
केला	वैक्यूम फ्राइड केले के चिप्स, ओस्मो वैक्यूमसूखे केले, फाइबर से भरपूर केले के छिलके का पास्ता, कच्चा केले का आटा, कच्चा केले का आटा
पपीता	जैम, जेली, कैंडी, अमृत, प्यूरी, कॉन्संट्रेट, स्लैब, टॉफी, टूटी–फ्रूटी, फ्रीज ड्राय चंक, ड्राय चंक, ड्राय रोल्स, ड्राय स्लाईस और अचार

उत्तर प्रदेश एक जिला एक उत्पाद योजना के तहत राज्य में कुछ जिले का अपना एक विशेष प्रसंस्कृत उत्पाद है जिसके लिए वो प्रसिद्ध है। प्रसंस्कृत उत्पादों के साथ कुछ जिलों की पूरी सूची इस प्रकार है।

सारणी 2. उत्तर प्रदेश एक जिला एक उत्पाद योजना अंतर्गत बिभिन्न फलों का प्रसंकरण हेतु नामित फल एवं जिले

जिला	उत्पाद
लखनऊ	फल प्रसंस्करण, आम
कन्नौज	फल प्रसंस्करण, केला
गौतमबुद्ध नगर	तैयार उत्पाद
प्रयागराज	फल प्रसंस्करण, अमरूद, आवला
प्रतापगढ़	फल प्रसंस्करण, करौंदा, आवला
कौशाम्भी	फल प्रसंस्करण, केले
सिद्धार्थनगर	खाद्य प्रसंस्करण

प्रसंस्कृत पदार्थों का वैश्विक बाजार

विश्व बाज़ारों में फल स्प्रेड जैसे जेम, जेली इत्यादि में स्वाद रंगों सुगंध की एक विस्तृत श्रृंखला उपलब्ध है। फल मिश्रित चॉकलेट व अन्य चबाने वाले पदार्थ, फलों के टुकड़े मिश्रित दही, दूध, पनीर तथा मक्खन भी मार्केट में बहुलता से मिल रहे हैं। इसके अतिरिक्त फलों के कंसंट्रेट, फलों के जूस, प्यूरी इत्यादि भी मार्केट में काफी लोकप्रिय हैं। सूखे फल श्रेणी भी सुविधाजनक, अत्यधिक पोर्टेबल और टिकाऊ होने के लाभों से युक्त है। फल और फलों के कम वसा युक्त उत्पाद, विटामिन/खनिजयुक्त फोर्टिफाइड उत्पाद, कम चीनी युक्त उत्पाद, कैलोरी मुक्त, कम कैलोरी युक्त उत्पाद उपभोक्ताओं द्वारा पसंद किये जा रहे हैं। केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा फलों के अभिनव उत्पाद तैयार किये गए हैं। जिनमें कच्चे आम का साइडर, आंवला साइडर, अमरुद साइडर, बेल साइडर, आम वाइन, बेल वाइन, महुआ वाइन, शहतूत वाइन, प्रोबायोटिक पेय व अचार, आंवला प्राश, शर्करा रहित जामुन पेय, जामुन माउथ फ्रेशनर, आम का सिरका, आंवले का सिरका, बेल का सिरका, अंगूर का सिरका, जामुन का सिरका, गन्ने का आंवला युक्त सिरका, बेल बार, कच्चे आम का बार, जामुन का बार आदि शामिल हैं। सारणी 3 में विकासशील देशों में फलों की तुड़ाई उपरांत क्षति को दर्शाया गया है।

सारणी 3. विकासशील देशों में फलों में अनुमानित तुड़ाई के उपरांत क्षति का ब्यौरा

फल	अनुमानित क्षति (प्रतिशत)
सेब	14
आम	17–37
केला	20–80
पपीता	70–100
एवोकेडो	43
खुबानी	28
नींबू वर्गीय फल	20–85
अंगूर	27

सारणी 4. भारत में फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्क रण के उपोत्पाद

फल/सब्जी	व्यर्थ सामग्री	व्यर्थ सामग्री का उत्पांदन (हजार टन)	अनुमानित व्यर्थ की मात्रा (प्रतिशत)
आम	छिलका एवं गुठली	6,988	45
केला	छिलका	2,378	35
नींबू वर्गीय फल	छिलका,रैग व बीज	1,212	50
अंगूर	छिलका व बीज	20	20
अमरूद	छिलका,क्रोड,बीज	656	10
सेब	छिलका,पोमेस,बीज	1,376	35
–	–	–	–
–	–	–	–

अतः विकासशील देशों में तुड़ाई उपरांत कुप्रबंधन से फल एवं सब्जियों के उत्पादन का काफी हिस्सा यों ही क्षतिग्रस्त हो जाता है। विभिन्न संस्थानों, संस्थाओं एवं वैज्ञानिकों द्वारा तैयार आंकड़ों के अनुसार यह बात सामने आई है कि फल एवं सब्जियों में तुड़ाई के उपरांत क्षति 20–40 प्रतिशत के बीच है। कहने का तात्पर्य है कि इतने कड़े परिश्रम से पैदा किए गए फल एवं सब्ज़ियाँ तुड़ाई उपरांत कुप्रबंधन के कारण व्यर्थ ही चले जाते हैं। परन्तु, अब इस दिशा में वैज्ञानिकों के प्रयास निरन्तर जारी हैं और आए दिन शोधकार्यों से तुड़ाई/कटाई के उपरांत प्रौद्योगिकी दिन–रात चौगुनी तरक्की कर रही है। अब ऐसी फल एवं सब्जियों जिन्हें ताजा न बेचा जा सके, उनसे कई मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जा रहे हैं जो देश व विदेशों में काफी लोकप्रिय भी हो रहे हैं। ये सच है कि फल एवं सब्जियों का प्रसंस्करण कर जैम, जैली, जूस, नेक्टर, सुरा, अचार, मुरब्बे एवं डिब्बाबंदी आदि उत्पाद बनाए जा सकते हैं, लेकिन जब फलों एवं सब्जियों से ऐसे उत्पाद बनाए जाते हैं तो उनसे भारी मात्रा में व्यर्थ अपशिष्ट सामग्री भी निकलती है जैसा कि सारणी 4 में दर्शाया गया है। इन व्यर्थ सामग्री से तरह–तरह के उपोत्पाद बनाए जा सकते हैं।

हरिवंश राय बच्चन

हरिवंश राय बच्चन हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक हैं। वे हिन्दी कविता के उत्तर छायावाद काल के प्रमुख कवियों में से एक थे। हरिवंशराय जी व्यक्तिवादी गीत कविता या हालावादी काव्य के अग्रणी कवि थे। इनकी प्रसिध्य रचना 'मधुशाला' इन्होंने उमर खैय्याम की रूबाइयों से प्रेरित होकर लिखी थी। उनकी कृति 'दो चट्टानें' को हिन्दी कविता के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस महान कवि ने गीतों के लिए आत्मकथा, निराशा और वेदना को अपने काव्य का विषय बनाया है। उनकी सबसे प्रसिद्ध काव्य कृतियों में से निशा निमंत्रण, मिलन यामिनी, धार के इधर–उधर, मधुशाला प्रमुख हैं।

आम के जान लेवा रोग और उनका प्रबंधन

पी. के. शुक्ल[1], निधि कुमारी[2] एवं हरिपाल सिंह[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

वर्तमान समय में उत्तर भारत में आम के अधिकांश (60–65 प्रतिशत) बाग 35 वर्ष से अधिक आयु प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार के पुराने बागों की उत्पादकता कम हो गयी है, साथ ही उनमे अनेक गंभीर जान–लेवा रोगों की समस्या भी उत्पन्न हो रही है। रोगों के प्रकोप से आम की वानस्पतिक वृद्धि के साथ–साथ फलों का विकास भी प्रभावित होता है। सामान्यतः प्राकृतिक सन्तुलन के साथ आम के वृक्ष फलते–फूलते रहते हैं एवं रोगकारी जीव भी आम पर अपना जीवन–यापन करते रहते हैं। किसी रोगकारी जीव की संख्या एवं उनकी आक्रमण क्षमता में सन्तुलन की सीमा से अधिक वृद्धि से समस्या का प्रारंभ होता है। आम के प्रमुख जान–लेवा रोगों तथा उनके प्रबन्धन पर गंभीर चिंतन आवश्यक है।

जान-लेवा रोग

इस श्रेणी में उकठा, क्षय, डाली सूखा, टहनी सूखा, जड़ सड़न और उल्टा सूखा रोग प्रमुख हैं। इनमें से एक भी रोग पूरे पेड़ को मार सकता है लेकिन स्थिति इससे भी अधिक बुरी है, क्योंकि अधिकांश बागों में एक से अधिक रोगों के कारक फफूँदी पाए जाते हैं। इन कारकों का संक्रमण बहुत ही मंद गति से बृद्धि करता है और लक्षण प्रगट होने के बाद प्रबंधन कठिन होता है।

उकठा रोग

उकठा रोग *सिरेटोसिस्टिस फिम्ब्रियाटा* नामक फफूँदी के द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग का प्रथम लक्षण पत्तियों के मुर्झाने के रूप में प्रकट होता है और कुछ समय के उपरांत पेड़ की सारी पत्तियाँ सूख जाती हैं (चित्र–1)। इस फफूँद से सक्रंमित पेड़ के तने में अन्दर फफूँद का संक्रमण पाया जाता है जिससे लकड़ी का रंग गहरा भूरा या काला हो जाता है (चित्र–2)। संक्रमित तने से गोंद का रिसाव होता है (चित्र–3)। इस रोग को उत्पन्न करने वाला फफूँद बागवानों द्वारा समय–समय पर की जा रही बागवानी क्रियाओं (कटाई–छटाई, निराई–गुड़ाई, जुताई, आदि) के माध्यम से पेड़ की जड़ और तने को पहुंचाई गयी चोटों के रास्ते प्रवेश पाते हैं। इस फफूँद का संक्रमण जड़ों के माध्यम से तने में बढ़ता है। जड़ या तने पर उपस्थित घाव इसके प्रवेश में सहायक होते हैं। इस रोग से मरते हुए पेड़ों में उपस्थित फफूंदी की गंध से स्कोलीटिड बीटिल नामक कीट आकर्षित होता है। यह कीट छाल में बारीक छेद बनाते हुए लकड़ी में अन्दर घुस जाता है तथा कीट द्वारा तने से बाहर निकाला गया महीन बुरादा (चित्र–3) इस रोग के फैलाव में सहायक होता है।

चित्र–1. उकठा रोग के लक्षण

चित्र–2. जड़, तने और शाखाओं में फफूँद का संक्रमण

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वैज्ञानिक, [3]शोधकर्मी

चित्र–3. तने से गोंद श्राव

चित्र–4. तने पर महीन बुरादा

क्षय और जड़ सड़न रोग

यह रोग *सिरेटोसिस्टिस फिम्ब्रियाटा* तथा *बर्कीलियोमायसिस बेसिकोला* नामक फफूँदियों के द्वारा उत्पन्न होता है। संक्रमण ग्रस्त जड़ों का रंग भूरा या काला हो जाता है और कुछ समय उपरांत सड़न उत्पन्न हो जाती है (चित्र–5)। जड़ों में संक्रमण ग्रस्त पेड़ों से हरी या पीली होकर पत्तियाँ झड़ती रहती हैं और धीरे–धीरे पेड़ पर पत्तियों की मात्रा कम होती जाती है (चित्र–6)। बाग में रख–रखाव एवं जड़ों में संक्रमण के स्तर के अनुरूप पत्तियों के गिरने का क्रम तेज या धीमा हो सकता है। इस प्रकार के पेड़ों पर कम या अधिक नयी वृद्धि एवं फलों का उत्पादन होता रहता है लेकिन उपचार न किये जाने की दशा में कुछ वर्षों में यह पूर्ण रूप से मृत हो जाता है।

चित्र–5. जड़ में सड़न

चित्र–6. क्षय रोग के लक्षण

डाली सूखा रोग

जब जड़ या मुख्य तने से न होकर, डाली में *सिरेटोसिस्टिस फिम्ब्रियाटा* का संक्रमण होता है, तो प्रभावित पूरी डाल सूख जाती है (चित्र–7)। इस दशा में सभी लक्षण उकठा जैसे ही होते हैं। यह लक्षण प्रारंभ मे एक–दो डालियों में ही होता है तथा इनके उकठने के बाद दूसरी डालियों में भी फैल सकता है। इसी से मिलता जुलता लक्षण उल्टा सूखा रोग कारक फफूँद, *लेसियोडिपलोडिया थियोब्रोमी* द्वारा भी उत्पन्न होता है। लेकिन इसके संक्रमण में पेड़ की अधिकांश ऊपर की टहनियाँ जून से अक्टूबर के मध्य ऊपर से 1–2 मीटर तक सूख जाती है और इन पर लगी पत्तियों का रंग स्लेटी होता है (चित्र–8)। चूँकि यह लक्षण सामान्यतः वर्षा ऋतु में उत्पन्न होता है अतः सूखी टहनियों की छाल में मशरूम फफूँद भी उग सकते हैं।

चित्र–7. डाली उकठा रोग के लक्षण

चित्र–8. डाली सूखा रोग के लक्षण

टहनी सूखा रोग

बोट्रिओडिपलोडिया थियोब्रोमी नामक फफूँदी के द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग का प्रथम लक्षण टहनियों

पर गोंद का श्राव तथा काले धब्बों के रूप में प्रगट होता है (चित्र–9)। प्रभावित टहनी पर पत्ते सूख जाते हैं और बाद में पूरी टहनी सूख जाती है। टहनियों की छाल के अंदरूनी भाग में और लकड़ी के वाह्य भाग का रंग भूरा या काला हो जाता है (चित्र–10)।

चित्र–9. टहनी सूखा रोग संक्रमण

चित्र–10. टहनी सूखा रोग के लक्षण

उल्टा सूखा रोग

उल्टा सूखा रोग, बोट्रिओडिपलोडिया थियोब्रोमी नामक फफूँदी के द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग का प्रथम लक्षण सबसे ऊपर की पतली टहनियों में संक्रमण के फलस्वरूप छाल में दरारें और गांठों का बनना होता है। तदोपरांत टहनियाँ ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगाती हैं (चित्र–11)। प्रभावित टहनियों पर पत्ते सूख जाते हैं और टहनियों में अन्दर की ऊतक में भूरापन दिखता है। अक्सर देखा जाता है कि एक ही बाग में लगे 2–4 पौधों में ही इस रोग का प्रकोप होता है। इसका प्रमुख कारण पेड़ का कमजोर दैहिक स्वास्थ्य और उसकी घटी हुई रोग प्रतिरोधक क्षमता होता है, जो कि कुपोषण और मृदा सम्बन्धी कारकों के कारण होता है।

चित्र–11. डाली सूखा रोग के लक्षण

जानलेवा रोगों के संक्रमण को प्रभावित करने वाले करक

इस श्रेणी में रोग उत्पन्न करने वाले करक फफूँद लगभग सभी बागों में उपस्थित रहते हैं लेकिन संक्रमण होना और लक्षणों का प्रगट होना निम्न लिखित कारकों पर निर्भर करता है।

1. **चोट**–अधिकांश रोगकारी फफूँद पेड़ के अंदर स्वतः प्रवेश करने में अक्षम होते हैं। यह बागवानों द्वारा समय समय पर की जा रही बागवानी क्रियाओं (कटाई–छटाई, निराई–गुड़ाई, जुताई, आदि) के माध्यम से पेड़ की जड़ और तने को पहुंचाई गयी चोटों के रास्ते प्रवेश पाते हैं।
2. **पौधों का स्वास्थ्य**–आम तौर पर स्वस्थ पौधों की भौतिक और रासायनिक स्थिति रोग कारकों के प्रति सहिष्णु होती है और उनको पनपने के अवसर नहीं देती है। इसके विपरीत कुपोषित और दैहिक रूप से कमजोर पौधों में रोगों के प्रति अधिक ग्राह्यता होती है।
3. **मृदा की स्थिति**–क्षारीय मृदा युक्त कम गहराई वाले प्रक्षेत्रों में आम के बाग अधिक रोग ग्रसित पाए जाते हैं। मृदा कण आकार का परोक्ष प्रभाव भी रोगों की बृद्धि पर होता है। मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता और उसमें उपस्थित जीवों की विवधता एवं संख्या भी महत्वपूर्ण होती है।
4. **जलवायु**–जलवायु की छोटी सी भिन्नता भी फसल के सामान्य स्वास्थ्य और पौधों की रोग सहिष्णुता को प्रभावित करती है इसी कारण से कुछ क्षेत्रों में आम के बाग अत्यंत स्वस्थ और कुछ क्षेत्रों में अस्वस्थ पाए जाते हैं।
5. **मौसम**–मौसम में हो रहे परिवर्तनों का रोगों के प्रकोप पर सीधा प्रभाव होता है आम के बाग़ में जल भराव या आभाव से उकठा और क्षय रोगों के प्रकोप में बृद्धि होती है सामान्य और उच्च तापमान पर जान–लेवा रोगों के कारक फफूंद अधिक सक्रिय रहते हैं।
6. **नया बाग लगाते समय गलतियां**–नया बाग स्थापित करने से पूर्व मृदा की उपयुक्तता की जाँच न करना,

क्षेत्र की जलवायु का ध्यान न रखना, समुचित आकार के गढ्ढे बनाकर उनमें उचित मृदा मिश्रण न भरना और स्वास्थ्य पौधों की व्यवस्था न कर पाना, रोगों को आमंत्रण देने जैसी गलतियां होती हैं।

रोगों का प्रबन्धन

1. जान–लेवा रोगों का प्रकोप बढ़ाने वाले कारकों का प्रभाव कम करने हेतु आवश्यक सावधानियां रखें और पौधों को समुचित मात्रा में खाद, उर्वरक और जल आपूर्ति सुनिश्चित रखें। जिससे मृदा की पोषण क्षमता, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा और उसमें उपस्थित लाभकारी सूक्ष्म जीवों की विविधता और मात्रा अधिक बनी रहे।
2. **उल्टा सूखा, टहनी सूखा और डाली सूखा रोगों के प्रबंधन** हेतु संक्रमित टहनियों की 10 सेमी. नीचे (स्वस्थ भाग) से कटाई–छंटाई के बाद कॉपर आक्सीक्लोराइड के 0.3 प्रतिशत का छिड़काव प्रभावशाली है। मोटी कटी डालियों के कटे भाग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 5.0 प्रतिशत का लेप लगाना प्रभावशाली होता है। काटते समय यह भी ध्यान रखें की कटे हुए भाग में कोई संक्रमण का लक्षण न हो अन्यथा और अधिक नीचे से कटाई करें। साथ ही एक पेड़ की छटाई के बाद कटाई यन्त्र को उपचारित करने के बाद ही दूसरे पेड़ पर प्रयोग करना चाहिए। आम के कलमी पौधों को तैयार करने हेतु कलम सदैव स्वस्थ्य पेड़ों से ही प्राप्त की जानी चाहिए। साथ ही कलम बनाते एवं लगाते समय, छोटे–छोटे अन्तराल पर चाकू एवं हाथों को उपचारित करते रहना चाहिए।
3. **उकठा, क्षय, और जड़ सड़न रोगों का प्रबंधन**

- गहरी जुताई के समय जड़ों को क्षति होती है जिससे जड़ों में संक्रमण की संभावना अधिक होती है। इससे बचने के लिए आम के बागों में कम जुताई की जानी चाहिए। बाग स्थापित करने के प्रारंभिक वर्षों में यदि अन्तः फसलें उगाई जाती हैं तो जुताई पेड़ों के जड़ विन्यास क्षेत्र से बाहर करनी चाहिए।
- बाग में कीटों पर नियन्त्रण रखना चाहिए क्योंकि यह रोगी पेड़ों पर उपस्थित फफूँद को स्वस्थ पेड़ों पर पहुँचा सकते हैं। विशेष रूप से स्कोलीटिड बीटिल की उपस्थिति होने पर क्लोरपायरीफॉस 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करके नियन्त्रण किया जाना चाहिए।
- संक्रमित पेड़ों की लकड़ी में कवक जाल एवं बीजाणु उपस्थित होते हैं। अतः उकठा रोग से मरे पेड़ों को काट कर बाग से दूर ले जाना चाहिए और इस लकड़ी को जलाने के लिए उपयोग करना चाहिए।
- संक्रमण प्रभावित पेड़ों के आस–पास की जड़ क्षेत्र की मृदा में हेक्जाकोनाजोल 1.0 मिली. प्रति ली. या थायोफेनेट मिथाइल या कार्बेन्डाजिम 1.0 ग्राम प्रति ली. का घोल बनाकर 25 लीटर प्रति वर्ग मीटर की दर पर सिंचाई करना चाहिए। साथ ही कार्बेन्डाजिम या प्रोपीकोनाजोल का (1.0 ग्राम/मि.ली. प्रति ली. पानी) छिड़काव करना चाहिए।
- सिंचाई हेतु पेड़ों की कतारों के मध्य नाली बना कर हर पेड़ की थाला बना कर अलग–अलग सिंचाई करना चाहिए।
- उर्वरक एवं कम्पोस्ट तथा पेक्लोब्यूट्राज़ोल के प्रयोग हेतु बनायीं जाने वाली नाली को पेड़ के तने से अधिकतम दूरी (2 मीटर से अधिक) पर और कम से कम गहरी (अधिकतम 10 सेमी.) रखना चाहिए

चित्र–12. जड़ क्षेत्र की मृदा का उपचार

नोट–फफूँदी नाशकों के पौधों पर अच्छे फैलाव और ठहराव के लिए तथा छिड़काव की क्षमता बढ़ाने के लिए फफूँदी नाशकों के घोल में 0.1 से 0.2 प्रतिशत स्टीकर (भिंगोने वाला साबुन) डाल कर छिड़काव करना चाहिए।

नीबू वर्गीय फलों में लगने वाले कीट और उनकी रोकथाम

हरि शंकर सिंह[1] एवं गुडप्पा बी[2]

[1]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
[2]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय कृषि कीट संसाधन ब्यूरो, बेंगलुरु

दुनिया में साइट्रस (नीबू, मौसंबी, नारंगी) के पेड़ों (पत्तियों, जड़, तना एवं फलों) पर कीड़े और पतंगों की 820 लगभग प्रजातियां हमला करते है, जिनमें से 20 प्रतिशत से अधिक भारत में पाए जाते हैं। ये कीट उत्पादन को काफी कम करते हैं, गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, बीमारियों को प्रसारित करते हैं और पौधों को खत्म होने का कारण बनते हैं। साइट्रस के प्रमुख कीटों में लीफ माइनर, छाल भच्छी कीट, स्केल, साइला, मीली बग, ब्लैक फ्लाई, व्हाइटफ्लाइज, एफिड्स, फ्रूट फ्लाई, फल चूसने वाले पतंगे और थ्रिप्स शामिल हैं।

साइट्रस लीफ माइनर

इसका लार्वा कोमल पत्तियों पर टेढ़ी मेढ़ी सुरंग बनाकर पत्ती की एपिडर्मल परतों में खाता है। प्रभावित पत्तियां पीली होकर विकृत हो जाती हैं और उखड़ कर धीरे–धीरे सूख कर मर जाती हैं। यह कीट साइट्रस पौधे के नर्सरी और बड़े होने की अवस्था में नुकसान पहुंचाता है। लीफ माइनर का हमला बरसात के मौसम में केंकर बीमारी को बढ़ावा देता है। इसके नुकसान का स्तर नई वानस्पतिक वृद्धि और एक वर्ष में फ्लश की संख्या पर निर्भर करती है।

पौधे के सक्रिय विकास अवधि के दौरान छंटाई से बचें क्योंकि यह आगे नए फ्लश को पैदा करता है। पेड़ के छत्र के अंदर के फ्लश को हटाएँ क्योंकि यही लीफ माइनर के हमले के पसंदीदा पत्तियां होती है। इसके प्रभावी प्रबंधन के लिए जाड़े के दौरान संक्रमित टहनियों को अंदर से छँटाई करें और केवल प्रमुख फ्लश को ही रखें। बीच बीच में थोड़े थोड़े निकलने वाले फ्लश को हटाया/नष्ट किया जाना चाहिए। नए फ्लश की शुरुआत के साथ, 10–12 दिनों के अंतराल पर नीम के बीज के अर्क (2%) या फेनवेलरेट (0.05%) का छिड़काव करें। एबामेक्टिन @0.32 मिली/लीटर या स्पिनोसैड @0.34 मिली या लोनोवालुरॉन @0.87 मिली/लीटर को नए फ्लश पर स्प्रे किया जा सकता है। सर्दी से शुरुआती वसंत तक कीटनाशकों के प्रयोग कम करके जैव–एजेंटों का संरक्षण करें (कोक्सीनेल्लिड्स, क्राइसोपिड्स परभक्षी और यूलोफिड पैरासिटोइड्स)।

साइट्रस सिल्ला

इस कीट के वयस्क भूरे रंग के होते हैं और आराम करते समय वे अपने शरीर को ऊपर की ओर उठाये रहते हैं। मादाएं नारंगी–पीली, चपटी और गोलाकार होती हैं। अंडे पौधे छोटे डंठल के ऊतकों में डाले जाते हैं। निम्फ और वयस्कों दोनों कलियों और पत्तियों से रस चूसते हैं। प्रभावित पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और टहनी सूख जाती है। ये कीड़े हरित रोग के वाहक के रूप में भी कार्य करते हैं। इसके अलावा, यह कीट शायद अपने लार के साथ कुछ विशाक्त पदार्थों को इंजेक्ट करती है जिससे शाखाएं सूखने लगती है। निंफ्स सफेद क्रिस्टलीय शहद स्रावित करते हैं जो कवक के विकास को आकर्षित करता है तथा प्रकाष संश्लेषण के लिए प्रतिकूल होता है। पहले साल के दौरान क्षति बहुत ज्यादा नहीं होती पर आगे चलकर उपज गिरती है और कुछ शीर्ष शाखाएं सूख जाती हैं। दूसरे वर्ष के दौरान नई शाखाएं नष्ट हो जाती है, अधिकांश शाखाएं बिना पत्तियों के हो जाती हैं और पेड़ सूखने लगता है; बहुत कम फल पैदा होता है और वह भी छोटा और सूखा होता है।

अंबिया (मार्च–अप्रैल) और मृग (जून–जुलाई) के दौरान सिल्ला का प्रबंधन जरूरी है क्योंकि नए फ्लश पर कीट गंभीर क्षति करता है। संपार्श्विक पौधे जैसे करी पत्ता पौधे को बागों के आसपास के क्षेत्र में नहीं रखना चाहिए क्योंकि यह पौधा सिल्ला का सबसे पसंदीदा पोषित है। प्रत्येक मौसम में क्राइसोपिड शिकारी (मल्लादा देसजार्डेन्सी) के दो विमोचन @30 लार्वा/पेड़ साइट्रस सिल्ला को कम

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक

करता है. तीनों मौसमों में संक्रमण का पता चलते ही नए फ्लश पर निम्नलिखित में से एक का छिड़काव किया जाना चाहिए। नीम का तेल – 3 मिली /लीटर पानी या इमिडाक्लोप्रिड – 0.5 मिली / लीटर पानी या डाइमेथोएट – 1.5 मिली @ लीटर पानी या क्विनालफॉस – 2.0 मिली @ लीटर पानी या फेनवालेरेट – 1.0 मिली /लीटर पानी या एबामेक्टिन @0.42 मिली/लीटर, या पेट्रोलियम स्प्रे तेल @ 5.9 मिली/ली या नोवालुरॉन @0.55 मिली/ली। आवश्यकता पड़ने पर दूसरा छिड़काव 10–15 दिनों के बाद करना चाहिए।

काली मक्खियाँ/सफेद मक्खियाँ

ये एशिया में नीबू वर्ग की फसलों पर व्यापक रूप से पायी जाती हैं। काली मक्खियों में शिशु काले रंग के होते हैं। नए वयस्क लाल रंग के होते हैं और 24 घंटों के भीतर इनका शरीर ढक जाता है और उन्हें स्लेटी नीला रंग देता है। ये कोमल पत्तियों के निचले हिस्से में वर्तुलाकार सरंचना में अंडे देती है। सफ़ेद मक्खी लाल आंखों वाली एक छोटा पीला सफ़ेद कीट है। इसके निम्फ और वयस्क दोनों कोमल पत्तियों से रस चूसते हैं और पौधे की शक्ति को कम करते हैं। सफेद फ्लाई वयस्क शाम को अधिक सक्रिय होते हैं और दिन के दौरान पत्तियों की निचली सतहों पर आराम करती हैं। अंडे बेहद छोटे होते हैं और नग्न आंखों से शायद ही दिखाई देते हैं। कीट को नियंत्रण में लाने से पहले बहुत अधिक नुकसान हो चुका होता है। उत्तर भारत में बार–बार सूखे की स्थिति, भारी मिट्टी में सघन रोपण और व्यापक स्पेक्ट्रम कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग के कारण इन मक्खियों का अधिक प्रकोप होता है।

अमरूद, चीकू और अनार जैसे कीट के संपार्श्विक पोषित बगीचे के पास न रखें। अत्यधिक सिंचाई और नाइट्रोजन उर्वरक, नजदीक रोपण, घनी कैनोपी संरचना, और पानी के अधिकता से बाग़ को बचाना चाहिए। स्थानीयकृत संक्रमण के मामले में प्रभावित प्ररोहों को काटकर नष्ट कर देना चाहिए। ऑफ–सीजन फ्लश को कम करने के लिए अत्यधिक सिंचाई और नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों के प्रयोग से बचना चाहिए। जब प्रौढ़ कीट अधिक हो तो ऐसफेट @1.25 ग्राम/लीटर या इमिडाक्लोप्रिड @0.5 मिली/लीटर या डाइमेथोएट @2.0 मिली/लीटर पानी या एबामेक्टिन @0.42 मिली/ली या नोवालुरॉन @0.79 मिली/लीटर का स्प्रे शिशु कीट के पैदाइष को काफी कम कर देता है।

स्केल कीट

स्केल कीट आमतौर पर पत्तियों और कोमल अंकुरों पर हमला करते हैं, लेकिन गंभीर संक्रमण के मामले में फल भी प्रभावित होते हैं। प्रभावित टहनियाँ और शाखाएँ सूख जाती हैं और फल गिर जाते हैं। रस चूसने से पत्तियों और फलों पर पीले निशान बन जाते हैं। शाखाएं कुरकुरे भूरे रंग की हो जाती हैं।

प्रभावी प्रबंधन के लिए बागों की साफ–सफाई जरूरी है। ग्रसित टहनियों को काट–छांट कर सर्दी के मौसम में नष्ट कर दें। बेहतर प्रकाश आने के लिए और प्रभावी छिड़काव के लिए पेड़ की छत्र को केंद्र से खोलें। 7 दिनों के अंतराल पर क्रमशः 1% पोंगामिया तेल या 4% नीम के बीज के अर्क का छिड़काव करें।

मिलीबग

प्लैनोकोकस सिट्री, प्लैनोकोकस पैसिफिकस और *आइसरिया पर्चेसी* महत्वपूर्ण मिलीबग हैं। मिलीबग के शरीर खंडित और चपटे होते हैं जो सफेद मिली वैक्स से ढके होते हैं। ये पत्तियों, कोमल टहनियों और फलों को प्रभावित करते हैं। गंभीर हमले के कारण, पौधे की वृद्धि रुक जाती है और फल गिर जाते हैं। प्रभावित पेड़ों पर काली फफूंद पैदा हो जाती है।

डाइमेथोएट 1.5 मिली या मैलाथियान @2 मिली को 1 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव मिली बग को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करता है। क्लोरपाइरीफॉस 0.05%, या फेनिट्रोथियोन 0.05% और 2 मिली डाइक्लोरवोस + 25 ग्राम फिश ऑयल रोसिन साबुन/लीटर पानी का छिड़काव करने से मिलीबग की संख्या में की कमी आती है। कीटनाशक प्राकृतिक शत्रुओं का सफाया कर समस्या को बढ़ा देते हैं। सबसे प्रभावी नियंत्रण शिकारी बीटल, क्रिप्टोलेमस मोंट्रोजिएरि को इस्तेमाल करके प्राप्त किया जा सकता है।

माहू (एफिड्स)

एफिड्स गंभीर प्रत्यक्ष नुकसान नहीं पहुंचाते हैं लेकिन *ट्रिस्टेजा* विषाणु के वाहक के रूप में कार्य करते हैं। एफिड्स से होने वाले नुकसान के लक्षण नई पत्तियों के मुड़ने और समय से पहले फल गिरने से प्रकट होते हैं। आम तौर पर, एफिड्स फूल आने के दौरान हमला करते हैं लेकिन कभी–कभी गंभीर प्रकोप तब होता है जब बारिश के मौसम के बाद शुष्क मौसम होता है। इनके कई प्राकृतिक शत्रु हैं जो माहू की आबादी को नियंत्रण में रखते हैं।

मोनोक्रोटोफोस या डाइमेथोएट (0.05%) का कीटनाशक स्प्रे माहू के खिलाफ प्रभावी होते हैं। एफिड्स के प्रभावी नियंत्रण के लिए महुआ तेल या नीम के तेल (1%) का एकल छिड़काव भी किया जा सकता है।

छाल भच्छी कीट

छाल छेदक की सुंडी जुड़ी शाखाओं में छेद करके रहती है और पेड़ की छाल को खाती है। चबाये हुए लकड़ी के बुरादे और लार्वा के मलमूत्र के मिश्रण से ये सुरंग बनाती है। इन कीटों के प्रकोप से कोषिका रस के स्थानान्तरण में रुकावट आती है, जो पौधे की वृद्धि और फलने पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।

सुरंग को हटाकर कीट को संतोषजनक रूप से नियंत्रित किया जाता है, इसके बाद 2–5 मिलीलीटर डाइक्लोरवोस 76ईसी (20 मिलीलीटर/10 लीटर पानी) में भिगोए हुए रूई के साथ छिद्रों को बंद कर दिया जाता है। प्रभावित तने पर कॉपरऑक्सीक्लोराइड का लेप लगाना चाहिए। इसके प्रबंधन का सबसे अच्छा समय सितंबर–अक्टूबर है जिसे जनवरी–फरवरी में दोहराया जाना चाहिए।

फल चूसक पतंगा

फल चूसने वाले पतंगे रात्रिचर होते हैं। दिन के समय वे गिरे हुए पत्तों और खरपतवारों में छिप जाते हैं और शाम के समय सक्रिय हो जाते हैं और जब फल पकने वाले होते हैं तो बड़ी संख्या में झुंड में आ जाते हैं। पतंगे रात भर अपना चोंच फल में घुसा कर रस चूसते हैं और भारी नुकसान पहुंचाते हैं। वे ज्यादातर पके हुए फलों को छेदते हैं और रस चूसते हैं। इस तरह के फल बीमारियों के द्वितीयक संक्रमण और मक्खियों के संक्रमण के संपर्क में आते हैं। प्रभावित फल आमतौर पर कुछ दिनों के भीतर गिर जाता है।

गिरे हुए फलों को जमीन में गाड़कर नष्ट कर दें। कीट विकास से बचने के लिए बाग की स्वच्छ खेती जरूरी है। बागों के आसपास से वैकल्पिक पोषित पौधों का उन्मूलन कीट आबादी को कम करता है। 10 लीटर पानी में 15 ग्राम मैलाथिऑन और 450 ग्राम शीरा मिलाकर प्रभावी चारा तैयार किया जा सकता है। इसमें थोड़ा सिरका मिलाया जा सकता है और उथले चौड़े मुंह वाले कंटेनरों में पेड़ों से चारा को लटका दिया जाता है। छोटे पैमाने पर फलों की बैगिंग प्रभावी होती है लेकिन बहुत श्रमसाध्य और महंगी है। सूर्यास्त के बाद बगीचों में धुआं पैदा करना चाहिए। गिरे हुए फलों को फेंक देना चाहिए क्योंकि वे पतंगों को आकर्षित करते हैं।

फल मक्खी

मादा वयस्क फल मक्खी अपनी ओवीपोसिटोर को सुई की तरह भेदकर पकने वाले फलों को छेंद करती है और अंदर अंडे देती है। अंडे फूटने पर मैगेट (बच्चे) फल के गूदे को खाते हैं। संक्रमित फल की सतह पर मादा मक्खी द्वारा अंडा डालने वाले पंचर के कारण कई गहरे हरे रंग के गड्ढे दिखते हैं। बाद में, पंचर के आसपास का क्षतिग्रस्त क्षेत्र बड़ा और पीला हो जाता है। पीड़ित फल को निचोड़ने पर अनेक रस की धाराएँ निकलती हैं, क्योंकि एक ही फल पर अनेक छिद्र होते हैं। छेंद के माध्यम से कवक और जीवाणु के संक्रमण के कारण फल का सड़ना होता है, जिसके परिणामस्वरूप वे समय से पहले फल गिर जाते हैं।

ग्रसित फलों को इकट्ठा करने और नष्ट करने से कीटों की संख्या में कमी आती है। तुड़ाई से दो महीने पहले फलमक्खी ट्रैप (मिथाइल यूजेनॉल) और 0.5% मैलाथियान युक्त फ्लाई बैट ट्रैप का उपयोग प्रभावी होता है।

साइट्रस माइट

ये काफी महीन और छोटे जीव होते हैं जो पत्तियों पर भोजन करते हैं और कई भूरे रंग के धब्बे पैदा करते

हैं। प्रभावित पत्तियां मुरझा जाती हैं। ये फलों को भी खराब कर देते हैं और फलों को बेचने या निर्यात के लिए अनुपयुक्त बना देते हैं।

पानी की कमी अक्सर इस समस्या को बढ़ा देता है। सुनिश्चित करें कि पेड़ विशेष रूप से चरम गर्मी और सर्दियों में अच्छी तरह से सिंचित हैं। डाइकोफोल (1.5 मिली/लीटर पानी) या वेटेबल सल्फर (3.0 ग्राम/लीटर पानी) या मोनोक्रोटोफॉस (1.5 मिली/लीटर पानी) के प्रयोग से माइट को नियंत्रित किया जा सकता है।

नोट–यद्यपि इस लेख में कीटनाशी और अन्य उपचार के लिए संस्तुत दवाओं को बताते समय पूर्ण सावधानी रखी गई है और केंद्रीय साइट्रस अनुसन्धान संस्थान नागपुर के संस्तुति को ध्यान मे रक्खा गया है फिर भी किसानो को सलाह दी जाती है कि उपचार के पहले वे अपने निकटस्थ शोध संस्थान या कृषि विज्ञान केन्द्र से परामर्श जरूर कर लें।

गौरा पंत 'शिवानी'

गौरा पंत 'शिवानी' हिन्दी की सुप्रसिद्ध उपन्यासकार थीं। हिंदी साहित्य जगत में शिवानी एक ऐसी शख्सियत रहीं, जिनकी हिंदी, संस्कृत, गुजराती, बंगाली, उर्दू तथा अंग्रेज़ी पर अच्छी पकड़ थी और जो अपनी कृतियों में उत्तर भारत के कुमायूँ क्षेत्र के आसपास की लोक संस्कृति की झलक दिखलाने और किरदारों के बेमिसाल चरित्र चित्रण करने के लिए जानी गई। उनकी अधिकतर कहानियां और उपन्यास नारी प्रधान रहे। इसमें उन्होंने नायिका के सौंदर्य और उसके चरित्र का वर्णन बड़े दिलचस्प अंदाज़ में किया।

फल पक्वन, समस्या और समाधान

कर्म वीर[1], अनिल कुमार वर्मा[2], आलोक कुमार गुप्ता[3], रवि एस.सी.[4] एवं नीलिमा गर्ग[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

परिचय

फलों का पकना वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा फल अपने वांछित गुण जैसे स्वाद, गुणवत्ता, रंग और अन्य बनावट को प्राप्त करते हैं। पकने का संबंध संघटन में परिवर्तन अर्थात स्टार्च के शर्करा में परिवर्तन से है। फल के पकने के व्यवहार के आधार पर इन्हें क्लाइमेक्टेरिक और नॉन–क्लाइमेक्टेरिक में वर्गीकृत किया जाता है। क्लाइमेक्टेरिक श्रेणी में उन फलों को परिभाषित किया जाता है जो तुड़ाई के बाद भी पकना जारी रखते हैं तथा पकने की प्रक्रिया के दौरान फल बढ़ी हुई श्वसन दर के साथ एथिलीन गैस का उत्सर्जन करते हैं। नॉन–क्लाइमेक्टेरिक फल तुड़ाई उपरान्त नहीं पकते हैं अर्थात् ये फल सामान्यतः पेड़ में ही पकते हैं। पके फल नरम और नाजुक होते हैं और वे आम तौर पर परिवहन के दौरान चोट लगने से ख़राब हो जाते हैं तथा बार–बार साल–संभार का सामना नहीं कर सकते हैं। ऐसे फल जो परिपक्व, शक्त और हरे रंग के हों उनकी तुड़ाई की जाती है भण्डारण के दौरान इन्हें उचित तापमान और आर्द्रता की नियंत्रित परिस्थितियों में पकाने की प्रक्रिया को प्रेरित करने के लिए एथिलीन गैस का प्रयोग किया जाता है, पूरी तरह से पके हुए फलों को लंबी दूरी तक नहीं भेजा जा सकते हैं जिन्हें अधिमानतः खपत क्षेत्र के आस–पास ही पकाना चाहिए। क्लाइमेक्टेरिक फलों के उदहारण आम, केला, पपीता, सपोटा, सेब और खुबानी हैं। फलों को पकाने के लिए फल उद्योग में एक समान पकने के लिए आसान और प्रभावी प्रौद्योगिकियां की कमी एक बड़ी समस्या है।

पकाने के लिए कैल्शियम कार्बाइड के प्रयोग से हानियां

कैल्शियम कार्बाइड से एसिटिलीन गैस निकलती है जिससे फल समान रूप से नहीं पकते हैं, एसिटिलीन गैस स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है तथा इससे कर्क रोग होने की संभावना रहती है। इस गैस का स्वास के साथ शरीर में प्रविस्ट होने पर तंत्रिका रोग, स्वास अवरोध, मिचली, अनिद्रा आदि जैसे लक्षण उत्पन्न होने का खतरा रहता है। गैस निकल जाने के पष्चात् शेष चूर्ण में आर्सेनिक जैसा भारी तत्त्व होता है जो फल के छिलके के साथ चिपक कर स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

आम के पकाने की विधियाँ

किसानों के लिए उपयोगी फल पकाने की कई प्रौद्योगिकियां उपलब्ध हैं। आम तौर पर विभिन्न फलों और प्रचलित जलवायु परिस्थितियों के लिए फल पकाने में 5–6 दिन लग जाते हैं।

आम के पकाने की सुरक्षित विधियाँ

अ. पारंपरिक विधि

फल को पकाने का सबसे आसान तकनीक है कि कुछ पके फल और परिपक्व फलों को एक साथ एक वायुरोधी डिब्बे में रखना। चूंकि पहले से पकने वाले फल एथिलीन छोड़ते हैं, इसलिए अपरिपक्व फल के पकने की गति तेज हो जाती है।

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा एक एथिलीन उत्सर्जित करने वाली सुरक्षित पुड़िया बनाई गई है इस पुड़िया को आम की पेटी में रखने से फलों के वाष्पीकरण से उत्पन्न वाष्प से मिलकर एथिलीन गैस उत्सर्जित होती है। सी.आई.एस.एच. की पुड़िया से पके आम एक समान रूप से गुणवत्तायुक्त एवं सुरक्षित होते हैं।

[1,3,4]वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [5]पूर्व निदेशिका

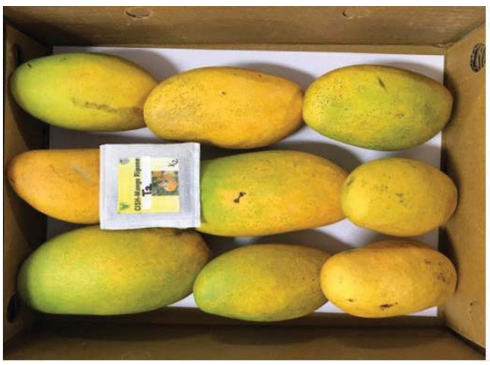

ब. व्यावसायिक विधि

फल को सुरक्षित तरीके से पकाने के लिए इन्हें 24 घंटे के लिए 20 से 25° सेंटीग्रेड तापमान तथा 90–95 प्रतिशत सापेक्षिक आद्रता वाले कक्ष में 10 से 100 मिलीग्राम प्रतिलीटर की सांद्रता पर एथिलीन गैस में रखा जाता है। अच्छे परिणाम के लिए हवा को नियमित रूप प्रत्येक 4 से 6 घंटे बाद बदलना चाहिए ताकि एकत्रित कार्बन डाई ऑक्साइड गैस कक्ष से बाहर निकल जाये, एथिलीन के उपचार के बाद फलों को कमरे के तापमान पर (18 से 20° सेंटीग्रेट) पर 80–90 प्रतिशत सापेक्षिक आद्रता पर रखा जाता है।

सुरक्षित विधियाँ द्वारा फल पकाये जाने के लाभ

इन विधियों द्वारा पकाये गए फल एक समान आकर्षक रंग के एवं खाने में सुरक्षित होते हैं, इनके पकने की अवधि कम होती है व तुड़ाई उपरांत बीमारियों का प्रकोप कम होता है। इन फलों के विपणन एवं प्रसंस्करण में आसानी होती है।

कम लागत का मुड़ने योग्य और चलायमान फल पक्कवन कक्ष

एथिलीन गैस के प्रयोग से फलों को पकाने के लिए कम लागत वाले कक्ष जिसका माप दस फुट लम्बा, पांच फुट चौड़ा, चार फुट ऊँचा (10×5×4 फुट) हो या आवश्यकतानुसार आसानी से बनवाये जा सकते हैं। एथिलीन के छोटे कैन का प्रयोग करके लगभग दो से ढाई टन फलों को पकाया जा सकता है। इसमें फलो को (18 से 20° सेंटीग्रेट) तापमान पर 80–90 प्रतिशत सापेक्षिक आद्रता पर अधिकतम 16 घंटे के लिए रखा जाता है। इसके बाद फलों को सुखा कर पेटी बंदी की जाती है, इस तरह उपचारित फल 4–6 दिनों में पक जाते हैं।

फल पकाने के लिए इष्टतम पकने की स्थिति

क्र.सं.	मापदंड	पकने की स्थिति
1.	तापमान	18 – 25 °C
2.	सापेक्षिक आर्द्रता	90 से 95 %
3.	एथिलीन सांद्रता	50 से 100 पी.पी.एम.
4.	उपचार की अवधि	फल का प्रकार और अवस्था परिपक्वता के आधार पर 24 से 72 घंटे
5	वायु संचार	एथिलीन का वितरण सुनिश्चित करने के लिए पकने का कमरा
6.	वायु संचार प्रणाली	पर्याप्त वायु विनिमय की आवश्यकता होती है जो की ऑक्सीजन के संचय को रोकें और ईथीलीन की प्रभावशीलता जो कम करें।

अधिक छायादार एवं अनुत्पादक आम के सघन बाग का जीणोद्धार

कंचन कुमार श्रीवास्तव[1], दिनेश कुमार[2], श्यामराज सिंह[3] एवं इसरार अहमद[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम सबसे महत्वपूर्ण फल है जिसकी लोकप्रियता के कारण इसे 'फलों का राजा' के रूप में जाना जाता है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2020 में कुल विश्व में आम का उत्पादन 54.80 मिलियन मिट्रिक टन से अधिक दर्ज किया गया (एफएओ, सांख्यिकी, 2020) हालांकि दुनिया भर में केवल कुल आम उत्पादन का 3 प्रतिशत भाग का ही कारोबार होता है (एफएओ, 2019–20)। भारत सबसे महत्वपूर्ण आम उत्पादक देश है जो कुल विश्व उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत उत्पादन करता है, अन्य महत्वपूर्ण उत्पादक देश चीन, मैक्सिकों, केन्या, थाईलैण्ड और बांग्लादेश है। भारत 2.28 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र से 8.7 टन/हेक्टेयर की औसत उत्पादकता के साथ 24.7 मिलियन टन (2019–20) उत्पादन करता है। भारत में आम की खेती आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, केरल, बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र और गुजरात में व्यावसायिक रूप से की जाती है, उत्तर प्रदेश राज्य आम उत्पादन में (17.14 टन/हे.) पहले स्थान पर है (हॉर्ट्रीकल्चर स्टैटिक्स, डिवीजन, 2019–20)। कुल उत्पादन का 23.73 प्रतिशत अकेले उत्तर प्रदेश में होता है। भारत ताजे आमों का प्रमुख निर्यातक भी है।

भारत में परंपरागत दूरी पर रोपण सघनता, अंतरसस्य क्रिया और छत्र प्रबंधन का न करना, अधिक छाया वाले बागों की छत्रकों का छायांकन प्रभाव, कीट और रोग का प्रबंधन अभाव एवं अन्य कारकों के कारण आम की राष्ट्रीय औसत उत्पादकता कम है। आम के अधिकांश बागों में दो पेड़ो के बीच पारंपरिक दूरी 10–12 मीटर होती है, जिनके कारण प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या कम हो जाती है तथा पेड़ विशाल एवं पहुँच के बाहर हो जाते है, जिसके कारण छत्रक प्रबंधन बहुत मुश्किल हो जाता है। ऐसे पेड़ आकार में बड़े तथा फलन केवल छत्रक के बाहरी भाग पर ही होता है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रति इकाई वृक्ष उत्पादकता कम होती है।

उपभोक्ताओं में क्रय शक्ति और स्वास्थ्य जागरूकता में वृद्धि के कारण फलों की मांग बढ़ गई है, इसलिए फल साल भर महंगे रहते है। भूमि एवं आदमी के अनुपात में कमी, कृषि कार्य लागत में वृद्धि और कमीशन एजेंट/अनुबंध आधारित विपणन प्रणाली के कारण बागवानी अब कम लाभकारी हो गई है। उच्च कृषि विशिष्ट लागत के कारण भी फलों की खेती से होने वाली कृषि आय को बनाए रखना मुश्किल होता जा रहा है। कृषि आय में वृद्धि के लिए सघन बागवानी प्रणाली अपनाने का समय आ गया है। हॉल के दिनों में भारत में कई सघन बाग स्थापित किए गये है जिनमें पारंपरिक प्रणाली की तुलना में 4–6 गुना अधिक उपज होती है। सघन बाग 10–12 वर्षो तक लाभदायक होते है उसके बाद पेड़ के छत्रक की बढ़वार एवं आंतरिक छाया के कारण अनुत्पादक हो जाते है। क्योंकि पेड़ का फैलाव अधिक हो जाता है, यदि पेड़ फैलाव अधिक हो जाय तो वैज्ञानिक रूप से छत्रक का प्रबंधन करना मुश्किल हो जाता है। निचली टहनियॉ मरने लगती है, साइड के छत्रक में प्रकाश का प्रवेश कम हो जाता है और छत्रक पर कम प्रकाश की उपलब्धता हो जाती है ऐसी स्थितियों में पेड़ कीट और बीमारियों के लिए सुरक्षित आवास बन जाते है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने अधिक छायायुक्त और अनुत्पादक सघन आम के बाग के लिए प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए प्रयोग शुरू किए गये और प्राप्त परिणाम काफी उत्साहजनक है।

आम की किस्म दशहरी का सघन बाग को 1993–94 में 2.5 × 2.5 मीटर (1600 पेड़/हेक्टेयर) और 2.5 × 5.0 मीटर (800 पेड़/हेक्टेयर) पर लगाया गया रोपण के 8–10 वर्ष बाद तक, 10–15 टन/हेक्टेयर उत्पादकता प्राप्त की गई, परन्तु बाद के वर्षों में निरंतर गिरावट दर्ज की गयी, 2.5 × 2.5 मीटर में सभी पौधे लंबे

[1,2,3]प्रधान वैज्ञानिक, [4]वरिष्ठ वैज्ञानिक

(5.7–7.8 मीटर ऊँचाई) हो गये तथा छत्रक का फैलाव (1.5–2.3 मीटर) कम हो गया एवं छत्रक की बाहरी सतह पर अत्यन्त कम फल पाये लगने लगे तथा उँची बढ़ती शाखाओं के तेज हवाओं में टूटने की संभावना भी रहती है। आम के सघन बाग को उत्पादक बनाने हेतु 2015–16 के दौरान पुरानी और अनुत्पादक दशहरी किस्म के सघन बाग को जीर्णोद्धार करने के लिए प्रयोग प्रारंभ किया गया।

विधि

आम की किस्म दशहरी को 2.5 × 2.5 मीटर (1600 पेड़/हेक्टेयर) एवं 2.5 × 5 मीटर (800 पेड़/हे.) की दूरी पर, 20–22 वर्ष पुराने पेड़ में किया गया। चयनित बाग के पेड़ को जमीन से 1.5 मीटर, 2.0 मीटर और 2.5 मीटर ऊँचाई पर काट दिया गया तथा सभी प्राथमिक शाखाओं को 60–80 सेमी. छोड़कर काटा गया। शाख को काटने के पहले स्थान को पेंट के साथ चिह्नित किया गया था। लंबी शाखाओं की कटिंग, मुख्य शाख से फटने से बचाने के लिए 3 बार में काटा गया, प्रूनिंग के बाद कटे हुए स्थान पर बोर्डो पेस्ट या चौबटिया पेस्ट को लगाया गया।

प्रबंधन एवं देखभाल

काटे गए पेड़ों का पुनरूद्धार और छत्रक पुर्नविन्यास अधिक से अधिक पेड़ की देखभाल के साथ–साथ उचित पोषण प्रबंधन, कीट और रोग प्रबंधन और छत्रक विकास और प्रबंधन निर्भर करता है। पर्याप्त वृद्धि के लिए, अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद की 20–30 किग्रा/पेड़, वर्मीकम्पोस्ट 4–5 किग्रा. और नीम खली 0.5–1.0 किग्रा प्रति पेड़, 2.14 किग्रा. यूरिया, 1/2 किग्रा. डाईअमोनियम फास्फेट, 1 किग्रा म्यूरेट पोटाश प्रति पेड़ दिया गया। फरवरी के दौरान प्रति पेड़ के अनुसार सभी उर्वरकों की खुराक को पेड़ के तने से 40–50 सेमी. दूर या छत्रक फैलाव के अनुसार दिया गया।

सिंचाई

सघन बागवानी में ड्रिप सिस्टम से सिंचाई करने से 50–60 प्रतिशत पानी एवं खाद की बचत की जा सकती है, इसके लिए प्रति पेड़ 4 ड्रिपर लगाकर 4–8 लीटर पानी प्रति घंटे की दर से पानी की मांग को पूरा किया जा सकता है। उच्च घनत्व वाले आम में गर्मी के दिनों में 2–3 दिन के अंतराल पर 15–20 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। पोषण हेतु पानी में घुलनशील खाद 18–18–18, 19–19–19 या 20–20–20 में एनपीके के वाणिज्यिक ग्रेड को पानी में घुलनशील उर्वरक जैसे फास्फोरस के लिए अमोनियम फॉस्फेट तथा ऑर्थोफॉस्फोरिक एसिड और पोटाश के सल्फेट ऑफ पोटॉश यथा म्यूरेट ऑफ पोटाश उपलब्ध हैं इसका प्रयोग फर्टिगेशन के द्वारा किया गया है।

छत्रक विकास और प्रबंधन

छत्रक (कैनोपी) री–ओरिएंटेशन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू अच्छी तरह से संतुलित छत्रक विकसित करना होता है ताकि पौधा गुणवत्तापूर्ण फल भार सहन करने में सक्षम हो सके। दिसंबर–जनवरी में गहरी कटाई–छंटाई के बाद मार्च–अप्रैल में प्राथमिक शाखाओं पर बड़ी संख्या में नये कल्ले निकल आते हैं, केवल उपयुक्त दूरी पर बाहर की ओर बढ़ रही 3–4 माध्यमिक कल्लों को छोड़कर शेष को हटा दिया जाता है। पेड़ के केन्द्र से निकलने वाले कल्लों को पूरी तरह हटा दिया जाना चाहिए। कल्ले बहुत तेजी से बढ़ते है, इसलिए तेज हवा से क्षतिग्रस्त होने का खतरा रहता है। सेमी–लूपर और लीफ वेबर्स को क्यूनालफॉस और एमिडक्लोरपिड 1–1.5 मिली/लीटर के स्प्रे से नियंत्रित किया जा सकता है। क्रॉच एंगल्स को चौड़ा करने के लिए नई शाख और पुरानी शाख के बीच कोण को फैलाना चाहिए। द्वितीयक टहनियों पर 3–4 तृतीयक शाखों को प्रोत्साहित करना चाहिए। जो फलने वाली सतह बनाती हैं, आम के पेड़ों की भारी छटाई के बाद पूर्ण छत्रक बनने में 2–3 साल लगते है।

आम के सघन बाग की 1.5 – 2.5 मीटर की उँचाई से कटाई

जीर्णोद्धार पेड़ में फलत

नवनिर्मित छत्रक

सघन बाग के नवनिर्मित छत्रक में फल का उत्पादन

नवनिर्मित छत्रक आम के सघन बाग का

काट–छांट या प्रूनिंग

प्रूनिंग का उत्पादकता पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है जो खाद्यय सामग्री के बेहतर वितरण और फल देने वाली टहनी और पत्ती क्षेत्र के नुकसान के बीच परस्पर क्रिया पर निर्भर करता है। सघन बागवानी प्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण चुनौतियां आवंटित स्थान के भीतर फैले हुए छत्रक को बनाये रखना है। किसी भी स्थिति में छत्रक का फैलाव 2 × 2 मीटर से अधिक नहीं होना चाहिए। साथ ही साथ छत्रक की ऊँचाई को भी नियंत्रित किया जाना चाहिए। छत्रक फैलाव और ऊँचाई को नियंत्रित करने के

जीर्णोद्धार के पेड़ में छत्रक का निर्माण

लिए फलों की तोड़ाई उपरांत के बाद जुलाई–अगस्त में वार्षिक काट–छांट आवश्यक है। जीर्णोद्वार वाले बाग में 5–10 प्रतिशत हेडबैक, 10–15 प्रतिशत थिनिंग आउट करना आवश्यक है। आम में कम हेडिंग बैंक उपयुक्त माना जाता है। अधिक हेडिंग बैक के परिणामस्वरूप आने वाले मौसम में कम फूल आते है क्योंकि जुलाई–अगस्त के दौरान आये नये कल्ले फूल की कलियों में परिवर्तित नही हो पाते है।

पौध सुरक्षा उपाय

भारी काटे गये आम के पेड़, तना बेधक संक्रमण के लिए अतिसंवेदनशील होते है, इसलिए नियमित देखभाल करना अनिवार्य है। प्रारंभिक 2–3 वर्षो के दौरान संक्रमण दर तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक होती है। तना बेधक के संक्रमण को शाखा के नीचे बिखरे लकड़ी के बुरादे जैसा अवशेष की उपस्थिति से पहचाना जा सकता है। यदि इस तरह का संक्रमण दिखाई दे तो इसे तुरंत नियंत्रित किया जाना चाहिए। कीट के संक्रमण को पेड़ के तने पर छोटे छेद से भी पहचाना जा सकता है, इसे नियंत्रित करने के लिए लंबे स्टील के तार डालें और मिट्टी का तेल या नुवान में रूई के फाहे से छेदों को बंद कर चिकनी मिट्टी का लेप लागाकर बंद कर देना चाहिए।

विभिन्न सघन बागों की अलग–अलग उँचाई से छंटाई करने से प्राप्त परिणामों से पता चला है कि जमीन से 1.5 मीटर उँचाई पर काटे गये पेड़ में अधिक किशोरावस्था (जुवनैलिटी) पायी गयी, जिसके परिणामस्वरूप पेड़ 3–4 साल तक फल नहीं या अत्यधिक कम देते है। इसमें वानस्पतिक विकास होता है और केवल चौथे वर्ष में फूल और फल शुरू हो जाते है। गहरी कटाई (1.5 मी) की उँचाई से काटे गये पेड़ में 98 प्रतिशत से अधिक पेड़ों में पुष्पन एवं फलत चौथे वर्ष में दर्ज किया गया और 250–450 ग्राम/फल के वजन साथ प्रति पेड़ 10–15 किलोग्राम फल का उत्पादन दर्ज किया गया। आम के जिन पेड़ों को 2–2.5 मीटर की उँचाई पर काटा गया था, उनमें जल्दी फूल आने और फलत दर्ज किया गया। दूसरे वर्ष के दौरान 60 प्रतिशत से अधिक पेड़ों में फूल आए और प्रति पेड़ 1.5–2.5 किलोग्राम फल 2.5 मीटर प्रूनिंग उँचाई में दर्ज किए गये और 2.0 मीटर प्रूनिंग उँचाई में प्रति पेड़ केवल 0.90 किलोग्राम फल दर्ज किये गये। चौथे वर्ष में 2.0–2.5 मीटर प्रूनिंग उँचाई पर काटे गए पेड़ों में प्रति पेड़ 7–7.5 किलोग्राम फल प्राप्त हुआ, 2–2.5 मीटर उँचाई की प्रूनिंग करने से फिर से अधिक उँचाई प्राप्त करने वाले पेड़ों में 1.5 मीटर उँचाई की तुलना में आगे फलन में गिरावट आई। 1.5 मीटर उँचाई पर प्रूनिंग करने से संतुलित छत्रक विकसित होता है और बाद के चरणों में वार्षिक छंटाई करने से छत्रक का नियंत्रण आसान हो जाता है। बिना प्रूनिंग वाले पेड़ों की तुलना में अधिक गहरी कटाई किए गए पेड़ों में प्रकाश संश्लेषक दक्षता अधिक पाई गयी।

प्रयोगों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दशहरी के सघन बाग में कम उँचाई की काट–छांट अच्छी छतरियां विकसित की गई जिन्हे बनाए रखना आसान था और फल भी पहुंच में थे तथा छत्रक प्रबंधन व अन्य कर्षण क्रिया आसान होती हैं। प्रारंभिक चरण के दौरान, अधिक उँचाई पर छंटाई वाले पेड़ों में शुरूआत में अच्छे फलन दर्ज किया गया, क्योंकि इन पौधों में निचली छंटाई (उँचाई 1.5 मीटर) की तुलना में माध्यमिक किशोरता का परिणाम कम होता है। सभी छटाई उपचारों में फलों की गुणवत्ता, फलों का आकार, फलों का वजन, 'ए' श्रेणी के फलों का प्रतिशत दर्ज किया गया, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सघन बाग के अनुत्पादक, पुराने और छायादार आम के बाग को 1.5 मीटर की उँचाई पर जीणोद्धार किया जा सकता है जिसमें 70–80 प्रतिशत से अधक फल 'ए' ग्रेड (औसत फल) थे तथा वजन 250–400 ग्राम प्रति फल) दर्ज किया गया।

आम के पुष्पन एवं फलन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

शरद कुमार द्विवेदी[1] एवं विशम्भर दयाल[2]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

फलों का राजा आम (*मैन्गीफेरा इंडिका* एल.) की बागवानी, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय वातावरण में की जाती है। आम का अधिकतम उत्पादन भारत में होता है। जलवायु संबंधी परिवर्तनों ने पहले ही आम के फूलने और फलने के पैटर्न में व्यापक बदलाव किये हैं। जलवायु परिवर्तन का फल उत्पादन पर हानिकारक प्रभाव डालती है। अध्ययन से पता चला है कि बदलती जलवायु परिस्थितियाँ आम के फलों के उत्पादन को प्रभावित करती हैं। आईपीसीसी, 2014 की रिपोर्ट के अनुसार 21वीं सदी के अंत तक वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता 397 पीपीएम से बढ़कर 485–1,000 पीपीएम हो जाएगी। जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी कारकों में उच्च कार्बन डाइऑक्साइड और उच्च तापमान, दो प्रमुख कारक हैं जो सीधे पौधे की वृद्धि और उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा, 21वीं सदी के अंत तक वैश्विक औसत सतह का तापमान, वर्तमान तापमान से लगभग 1.8–4.0 डिग्री सेल्सियस अधिक होगा। कई पौधों की प्रजातियों की वृद्धि और उत्पादकता उनके शारीरिक, मॉर्फोजेनेटिक और जैव रासायनिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन के माध्यम से बढ़े हुए कार्बन डाइऑक्साइड और तापमान से नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है। आम उत्पादन की पहली अवस्था फूल का बनना है। मिट्टी में नमी की अवस्था में बदलाव, अनियमित वर्षा, तापमान परिवर्तनशीलता ने आम में फूल आने के समय को बदल दिया है। आम का पुष्पक्रम दैहिक और पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होता है, और उनमें से तापमान परिवर्तनशीलता और नमी की उपलब्धता प्रमुख कारक है, जो आम के फलने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा आम के फलों की गुणवत्ता भी जलवायु परिवर्तनशीलता के कारण प्रभावित हुई है। तापमान फूल प्रेरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, रात के तापमान में कमी से बढ़ावा तथा दिन के उच्च तापमान से यह प्रक्रिया बाधित होती है। इसलिए, उत्पादकता में सुधार के लिए आम की खेती के पुष्प जीव विज्ञान पर उनके दैहिक, जैव रासायनिक, आणविक तंत्र और प्रभावी रणनीति तैयार करने के संदर्भ में जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रभाव को समझना आवश्यक है।

[1,2]वैज्ञानिक

आम के फूल के पैटर्न और फलों की सेटिंग पर जलवायु कारक का प्रभाव

आम का पुष्पक्रम मूल रूप से शीर्ष पे आता है। पुष्पगुच्छ में फूलों की संख्या किस्म के आधार पर 1000 से 6000 तक हो सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण कई किस्में तितर–वितर फूल दे रही हैं। कम पानी के तनाव के कारण पुष्प बनने की प्रक्रिया पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह फूलों की कलियों के विकास को उत्तेजित करता है और वनस्पति कलियों के विकास में देरी करता है। सूखे की अवधि के बाद कम तापमान को पुष्प प्रेरण के लिए फायदेमंद पाया गया है। आम की वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त तापमान 22° से 27° सेल्सियस है। बदलते परिदृश्य के तहत, दुनिया के कई हिस्सों में जल्दी और देर से फूल आना स्पष्ट है। आम में प्रचुर मात्रा में और अनियमित पुष्पन के कारण पेड़, भंडारित पोषक तत्वों के भंडार को समाप्त कर देते हैं और कई पोषक तत्वों की कमी का कारण बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप पेड़ की उत्पादकता और समग्र प्रदर्शन में गिरावट आती है। फलों की फसलों का फूलना विभिन्न कारकों जैसे कि एकत्रित कार्बोहाइड्रेट, हार्मोनल सामग्री और जलवायु कारकों (तापमान, वर्षा, सापेक्ष आर्द्रता, फोटोपीरियड और पानी का तनाव) से प्रभावित होता है।

पर्यावरणीय कारक

यह स्पष्ट है कि तापमान परिवर्तनशीलता ने आम में फूलों के पैटर्न को प्रभावित किया है। वातावरण का तापमान 15° सेल्सियस या इससे कम होने के कारण आम में फूल आने लगते जबकि 20° सेल्सियस से ऊपर का तापमान

वानस्पतिक टहनियों के उत्पादन को बढ़ावा देता है। 15°C दिन और 10°C रात का तापमान, उपोष्णकटिबंधीय स्थिति में पुष्पन के लिए अनुकूल होता है। इसी प्रकार अधिक ऊंचाई वाले उष्ण कटिबंध में ठंडे तापमान से भी पुष्पन प्रभावित हो सकता है। प्रजनन प्ररोहों की शुरुआत का समय किस्मों के बीच भिन्न होता है। फूल आने के दौरान बहुत अधिक और बहुत कम तापमान परागण के लिए हानिकारक होता है और पुष्पन की क्रिया विफल हो जाती है। आम का फूल उभयलिंगी होता है और एक ही पुष्पक्रम पर नर व मादा दोनो फूल स्थित होते हैं। इसके अलावा, फल का बनना और आम की उत्पादकता, उभयलिंगी फूलों के प्रतिशत से नियंत्रित होती है। उच्च तापमान के कारण उभयलिंगी फूलों के उत्पादन में वृद्वि होती है। पुष्प विकास के दौरान कम तापमान आम में उभयलिंगी फूलों के अनुपात के लिए महत्वपूर्ण है। फ्लश के वानस्पतिक तनों की आयु तथा गर्म जलवायु पुष्प प्रेरण को नियंत्रित करने वाला प्राथमिक कारक होता है। हालांकि तापमान और अन्य पर्यावरणीय कारकों और पेड़ों के दैहिक विज्ञान के आधार पर अवधि भिन्न हो सकती है। फरवरी के महीने में पत्तों में नाइट्रोजन की मात्रा की उपलब्धता आम की विभिन्न किस्मों में उभयलिंगी फूल प्रतिशत के साथ सकारात्मक सहसंबंध स्थापित करती है।

चित्र 1. आम में पुष्प एवं फल बनने की प्रक्रिया

फूल आने के लिए दैहिक परिवर्तन

आम की उत्पादकता के लिए फूल आना निर्णायक कारक है। आम में शुरुआत में अंकुर तना निकलने की प्रक्रिया शामिल होती है, जिसके बाद शीर्ष कली के पुष्प विभेद और पुष्पगुच्छ का उदय होता है। ये सभी विकासात्मक घटनाएं आम की अधिकांश किस्मों में कभी–कभी अक्टूबर–दिसंबर के दौरान उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय परिस्थितियों में होती हैं। आम के फूलने का मूल तंत्र, जिसमें तापमान पर आधारित फ्लोरीजेनिक उत्प्रेरक और एक वनस्पतिक उत्प्रेरक के बीच सम्बन्ध शामिल है, कम तापमान की स्थिति में फ्लोरीजेनिक उत्प्रेरक के पक्ष में, उच्च अनुपात के साथ पुष्प विकास में योगदान देता है। आम में वानस्पतिक वृद्धि और फ्लशिंग की वृद्धि निरंतर नहीं होती है। आम के पेड़ मूल रूप से तीन प्रकार के अंकुर पैदा करते हैं। (i) वानस्पतिक प्ररोह जिनमें केवल पत्तियाँ होती हैं, (ii) जनन प्ररोह जिनमें शीर्ष पुष्पगुच्छ होते हैं (iii) मिश्रित प्ररोह एक ही अंतरूग्रंथियों के भीतर पत्तियाँ और पुष्पक्रम दोनों उत्पन्न करते हैं। आम के पत्तों में फ्लोरीजेनिक उत्प्रेरक लगातार संश्लेषित होता है और इसका संश्लेषण तापमान द्वारा नियंत्रित होता है।

फ्लोरीजेनिक प्रमोटर/वेजीटेटिव प्रमोटर का उच्च अनुपात पुष्प प्रेरण को बढ़ावा देता है जबकि फ्लोरीजेनिक प्रमोटर/वेजीटेटिव प्रमोटर का कम अनुपात वनस्पति विकास के पक्ष में होता है और मध्यवर्ती अनुपात मिश्रित शूटिंग के पक्ष में। फ्लोरीजेनिक प्रमोटर को ठंडे तापमान के संपर्क में नियंत्रित किया जाता है। वेजीटेटिव प्रमोटर (वीपी) जिबरेलिन संश्लेषण मार्ग के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। गर्म परिस्थितियों में फूलों को प्रेरित करने के लिए वीपी के स्तर को फ्लोरीजेनिक प्रमोटर बढ़ाने के लिए स्टेम उम्र (4 महीने) के साथ तापमान पर्याप्त रूप से निम्न स्तर तक गिरना चाहिए। फूलों को प्रेरित करने वाले यौगिकों की आपूर्ति पत्तियों द्वारा की जाती है।, कुछ हार्मोन काल्पनिक फ्लोरीजन के समान होते है। फाइटोहोर्मोन को पौधे के भीतर उत्पादित आंतरिक संकेत अणु माना जाता है, और बेहद कम सांद्रता में होते हैं। ये विभिन्न सेलुलर शारीरिक प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं और उपापचय गतिविधि को अनुकूलित करते हैं। इथरेल के स्मजिंग और बाहरी अनुप्रयोग आम के फूल को उत्तेजित करते हैं, एथिलीन पुष्प प्रेरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रमुख ऊर्जा उत्पादक रसायनों के रूप में दर्शाए गए कार्बोहाइड्रेट भंडार भी कई फसल प्रजातियों में पुष्प प्रेरण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लीफ फ्लोएम लोडिंग सिस्टम की बढ़ी हुई क्षमता पुष्प प्रेरण में योगदान करती है। इस प्रकार, फूलों की कली के विकास और फूलों की शुरुआत के लिए कार्बोहाइड्रेट भंडार की पर्याप्त उपलब्धता या आपूर्ति महत्वपूर्ण होती है। पौधों में कार्बन–नाइट्रोजन का उच्च अनुपात पुष्पन के लिए उत्तेजक है जबकि कम कार्बन– नाइट्रोजन का अनुपात अनुपात वनस्पति विकास का पक्ष लेता है। आम में फूल की शुरुआत मुख्य रूप से उच्च कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात के रखरखाव पर निर्भर करती है। फूलों की वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण कार्बन–नाइट्रोजन का अनुपात बढ़े हुए कार्बोहाइड्रेट में निश्चित वृद्धि की ओर संकेत करता है। ऐसा पाया गया है कि पैक्लोबुट्राज़ोल के उपयोग से आम की कलियों में जिबरेलिन का उत्पादन कम होता है जो फूल निकलने के प्रेरण के साथ सहवर्ती है। कार्बन–नाइट्रोजन का अनुपात किस्मों में अंकुरों की वृद्धि के साथ भिन्न होता है, जो पर्यावरणीय परिस्थितियों और प्रचलित उपापचय संतुलन पर इसकी निर्भरता को प्रकट करता है। कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात के साथ पुष्प कली की शुरुआत का सकारात्मक जुड़ाव दर्शाता है। कार्बोहाइड्रेट की उपलब्धता और स्थानान्तरण में वृद्धि आम में फूलों की शुरुआत के लिए महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, उच्च कार्बोहाइड्रेट सामग्री वाले अंकुरों से फूलों की शुरुआत के पक्ष में होने की उम्मीद की जाती है, बशर्ते कि सकारात्मक स्थिति बनी रहे। इसके लिए फूल की अनुकूल गतिविधि को व्यक्त करने के लिए कार्बोहाइड्रेट का एक महत्वपूर्ण स्तर वांछित है । चूंकि प्रजनन वृद्धि के लिए उच्च ऊर्जा की आवश्यकता होती है इसलिए फूल आने पर उच्च कार्बोहाइड्रेट मांग की आवश्यकता स्पष्ट है। प्रकाश संश्लेषक पत्तियों से ऊतकों तक शर्करा के दिशात्मक संचलन के लिए उच्च ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन का आम के पुष्प बनने और फलने के तरीके पर व्यापक प्रभाव पड़ता है इसलिए फूलों के निकलने के समय, फूलों में लिंग अनुपात, फूल के अंदर दैहिक क्रिया और जैव रासायनिक प्रक्रिया पर जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रभाव को समझना अतिआवश्यक है ताकि एक समान फल उत्पादन एवं अच्छी उपज प्राप्त हो सके।

मौसमी फल और सब्जी का आहार-स्वस्थ जीवन का आधार

आभा सिंह[1], कर्मबीर[2] एवं रवि एस.सी.[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भोजन से प्राप्त पोषक तत्वों को कार्य के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–शारीरिक विकास, वृद्धि एवं जैविक कार्यों के लिये ऊर्जा प्रदान करने वाले पदार्थ, शरीर निर्माण करने वाले पोषक पदार्थ तथा स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले पदार्थ। कुपोषण वह अवस्था है जिसमें उपरोक्त तरह के पौष्टिक पदार्थ और भोजन, अव्यवस्थित रूप से ग्रहण करने के कारण शरीर को पूरा पोषण नहीं मिल पाता है। चूँकि हम स्वस्थ रहने के लिये भोजन के ज़रिये ऊर्जा और पोषक तत्त्व प्राप्त करते हैं, लेकिन यदि भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिजों सहित पर्याप्त पोषक तत्त्व नहीं मिलते हैं तो हम कुपोषण के शिकार हो सकते हैं। कुपोषण तब भी होता है जब किसी व्यक्ति के आहार में पोषक तत्त्वों की सही मात्रा उपलब्ध नहीं होती है।

हमारे समाज में खाद्य पदार्थों के मामले में संपन्न लोंगो में एक वर्ग से दूसरे वर्ग में भिन्नता कम देखने को मिलती है, परंतु तुलनात्मक रूप से छोटे कृषक परिवारों तथा बड़े कृषक परिवारों में यह भिन्नता अधिक दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिये रोटी तथा दाल विभिन्न वर्गों में प्रमुख खाद्य पदार्थों के रूप में प्रचलित हैं परंतु चावल सामान्यतया सीमांत कृषक, लघु कृषक तथा लघु मध्यम कृषकों में मुख्य खाद्य के रूप में प्रचलित हैं जबकि मध्यम तथा बड़े आकार वाले कृषक परिवारों में चावल मुख्य खाद्य पदार्थ के रूप में सम्मिलित नहीं रहता है। सब्जियाँ बड़े तथा मध्यम आकार वाले कृषक परिवारों में मुख्य खाद्य पदार्थों के रूप में प्रचलित हैं जबकि सीमांत और छोटे आकार वाले कृषक परिवारों में सब्जियाँ पूर्णतया अथवा आंशिक रूप से दाल की स्थानापन्न पायी जाती हैं और इनका उपयोग कम किया जाता है।

आजकल कम पोषक तत्वों से युक्त क्षेत्रीय खाद्य पदार्थों का परित्याग कर अधिक पोषक तत्वों से युक्त खाद्य पदार्थों को महत्त्व दिया जाने लगा है परंतु यह परिवर्तन अभी तक बहुत सीमित स्तर तक ही देखने में आता है। जिन परिवारों का आर्थिक स्तर ऊँचा है या जो परिवार शिक्षित हैं केवल उन्हीं परिवारों में भोजन की पौष्टिकता की ओर कुछ ध्यान दिया जा रहा है परंतु संतुलित और पौष्टिक भोजन में विभिन्न खाद्य पदार्थों का संयोजन किस प्रकार किया जाये, इस बारे में ग्रामीण क्षेत्र अभी तक अनजान है।

कुपोषण के कारण

- देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली कुल जनसंख्या का लगभग 25.7 प्रतिशत हिस्सा अभी भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह संख्या 13.7 प्रतिशत के करीब है। यद्यपि गरीबी अकेले कुपोषण को जन्म नहीं देती, किंतु यह आम लोगों के लिये पौष्टिक भोजन की उपलब्धता को प्रभावित करती है।
- अधिकांश भोजन और पोषण संबंधी संकट भोजन की कमी के कारण उत्पन्न नहीं होते हैं, बल्कि इसलिये उत्पन्न होते हैं क्योंकि लोग पर्याप्त भोजन प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं।
- पीने योग्य पानी की कमी, खराब स्वच्छता और खतरनाक स्वच्छता प्रथाओं के कारण आम लोग जल जनित बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं, जो कि कुपोषण के प्रत्यक्ष कारणों में से एक है।
- लोगों में पौष्टिक और गुणवत्तापूर्ण आहार के संबंध में जागरूकता की कमी स्पष्ट दिखाई देती है जिसके कारण तकरीबन पूरा परिवार कुपोषण का शिकार हो जाता है। देश में स्वास्थ्य सेवाओं की कमी भी कुपोषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
- विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन के कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि उत्पादन में हो रही गिरावट आने वाले वर्षों में कुपोषण में वृद्धि कर सकती है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2,3]वैज्ञानिक

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली की रिपोर्ट के मुताबिक ऊर्जा के स्रोत के तौर पर हमारी सिर्फ 45% निर्भरता अनाज पर होनी चाहिए। लेकिन शहरों और गांवों में अभी ऐसा नहीं हो रहा है। यह औसत बिगड़ा हुआ है। शहरों में लोगों की 51% निर्भरता अनाज पर है। वहीं गांवों में 65.2% निर्भरता अनाज पर है। भा.चि.अनु.प. का सुझाव है कि रोज हमारी आहार 2 हजार किलो कैलोरी की हो, थाली में 45% अनाज, 17% दाल, 5% सब्जी जरूरी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि दिन में एक बार 150 ग्राम फल भी जरूर खाना चाहिए। ऊर्जा के लिए सब्जियों पर हमारी निर्भरता 5 फीसदी होनी चाहिए लेकिन गांवों में इस बात का पालन सिर्फ 8.8 फीसदी और शहरों में 17 फीसदी लोग ही कर रहे हैं. नट्स और ऑयल सीड्स पर गावों के लोगों की निर्भरता 22% है, जबकि शहरी लोगों की निर्भरता 27% है।

कुपोषण दूर करने और प्रिवेंटिव हेल्थ मैनेजमेंट में फल और सब्जी की प्रमुख भूमिका है

संतुलित आहार वो है जो सेहतमंद और तंदुरुस्त रखने का काम करें और बीमारियों से दूर रखें। स्वस्थ भोजन करने से न सिर्फ शरीर स्वस्थ रहता है बल्कि दिमाग भी तेज होता है। स्वस्थ आहार का मतलब ऐसे खाद्य पदार्थों से है, जो विटामिन, कैल्शियम, प्रोटीन जैसे पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। स्वास्थ्य के लिए अच्छा खाना खाने से शरीर मजबूत होता है। स्वस्थ आहार हड्डियों को मजबूत रखता हैं, खासतौर पर पौष्टिक भोजन गर्भावस्था के दौरान एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता हैं। हरी–सब्जियां और फल मोटापा, कैंसर, डायबिटीज, हृदय रोग जैसी गंभीर शारीरिक समस्याओं से बचाव करते हैं, खासकर वो खाद्य पदार्थ जिसमें फाइबर की अधिक मात्रा होती है। पोटैशियम युक्त खाद्य पदार्थ के सेवन से ब्लड प्रेषर का खतरा कम हो सकता है।

स्वस्थ आहार को पांच श्रेणी में बांटा जा सकता है–हरी सब्जियां और फलियां, फल, मीट–मछली, पोल्ट्री उत्पाद, अनाज, दूध उत्पाद जैसे–पनीर, दही। प्रकृति में जो कुछ भी खाने की चीजें है, वह सब बीमारियों से लड़ने में हमारी मदद करती हैं इसीलिए हमे हमेशा मौसमी फल और सब्जियों को खाते रहना चाहिए। कुछ फल और सब्जियां ऐसी है जो हर मौसम में उपलब्ध रहती है जैसे –केला, प्याज और आलू यह हमे पूरे साल आसानी से मिल जाते हैं।

मौसमी फल और सब्जियों से स्वास्थ लाभ

अधिक खुश रहेंगे–स्वास्थ्य और भोजन के बीच अटूट रिश्ता है, लेकिन यह तभी तक रहता है, जब तक हम अपने द्वारा खाए जाने वाले आहार के प्रति सचेत रहते हैं। हरी सब्जियां और फल खाने वाले लोग, सब्जियां और फल नहीं खाने वालों की तुलना में कहीं अधिक खुश रहते हैं। फल और सब्जियों के नियमित सेवन से हमारे स्वास्थ्य और शरीर की आंतरिक प्रणाली तो मजबूत होती ही है, साथ में हमारी पाचन शक्ति भी बढ़ती है, जो पोषण प्रदान करने के अतिरिक्त हमे अनेक रोगों से बचाने में भी सहायक होती है। फल और सब्जियां खाने से एक ओर जहां कैंसर जैसी घातक बीमारियों से बचाव होता है, वहीं दिल से जुड़ी बीमारियों का खतरा भी कम होता है।

बीमरियों का जोखिम कम रहता है–फल और सब्जियों में वसा, नमक और शर्करा की मात्रा बहुत कम होती है। ये फाइबर (रेशे) के अच्छे स्रोत होते हैं। इनके नियमित सेवन से मोटापा, कोलेस्ट्रॉल और ब्लड प्रेशर को कम करने में मदद मिलती है। इसलिए अच्छे स्वास्थ्य के लिए खाने में ज्यादा से ज्यादा फलों और सब्जियों का इस्तेमाल बेहद जरूरी है। इनमें जैविक रूप से सक्रिय पादप रसायनिक पदार्थ अनेक बीमारियों से बचाने में मदद करते हैं। यदि खाने में नियमित रूप से फल और सब्जियों का इस्तेमाल किया जाए तो मधुमेह, आघात, हृदय रोग, कैंसर, उच्च रक्तचाव आदि बीमारियों का जोखिम कम हो जाता है। कैंसर, पुरानी बीमारियों जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, और हृदय धमनी रोगों को रोकने में भी सहायक होता है। मौसम के हिसाब से फल व सब्जियां जरूरते पूरी करती हैं। मौसमी फल और सब्जियां न केवल पौष्टिक होती हैं बल्कि उनमें मौसम के अनुरूप शरीर की विषेष जरूरतों को पूरा करने की विशेषता होती है। भारत जैसे देश में 50 फीसदी से ज्यादा महिलाएं खून की कमी से पीड़ित है। किशोरों का एक बड़ा भाग जिसमें 40 फीसदी लड़कियां और 18 फीसदी लड़के हैं, एनीमिया यानी खून की कमी से जूझ रहे हैं। ऐसे में यह काफी महत्वपूर्ण हो

जाता है कि अन्य उपायों के अलावा उनके आहार में हरी सब्जियां और फल पर्याप्त मात्रा में हो ताकि उन्हें भरपूर मात्रा में आयरन मिले और शरीर में खून की कमी दूर हो।

शारीरिक मजबूती आती है–फलों और सब्जियों को संरक्षी यानी रक्षा करने वाला खाद्य कहा जाता है। हमारे शरीर को जीवन की विभिन्न महत्वपूर्ण क्रियाओं को करने और खून बनाने के साथ ही हड्डियां और दांतों को मजबूत रखने के लिए विभिन्न विटामिनों और खनिजों की जरूरत होती है। फल और सब्जी में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट्स, बहुमूल्य विटामिंस, मिनरल्स और पोषक तत्व जैसे विटामिन ए, बी, सी, डी और ई, कैरोटेनाइड्स, एंजाइम, क्यू 10, पॉलीफेनोल्स, पोटेशियम, सेलेनियम और जिंक उन्हीं जरूरतों को पूरा करते हैं। शरीर के हर अंग के विकसित होने, मजबूत और स्वस्थ रहने के लिए अलग–अलग पोषक तत्वों की जरूरत होती है जो फल और सब्जियों से भरपूर मात्रा में मिलती है। जैसे स्वस्थ आंखें, त्वचा और शिशुओं के विकास के लिए विटामिन 'ए' बहुत जरूरी है। यह बीटा–कैरोटीन के रूप में संतरा, पीले रंग के फल और सब्जियों जैसे पपीता, आम, कद्दू, गाजर और हरे रंग की पत्तेदार सब्जियों में मौजूद होती है। वहीं विटामिन 'सी' यानी एस्कॉर्बिक एसिड हमारे शरीर को मजबूत करने वाला तत्व है। इसके लिए विटामिन 'सी' से भरपूर नींबू वंश के फल जैसे संतरा, मौसमी, नींबू के अलावा आंवला का सेवन जरूरी है।

मस्तिष्क विकास, सौन्दर्य और पाचन शक्ति बढ़ती है–इसी प्रकार फॉलिक एसिड हमारे शरीर में रक्त के पुनर्निर्माण के लिए बेहद जरूरी है। हरी पत्तेदार सब्जियां इस विटामिन का महत्वपूर्ण स्रोत है। इसकी कमी से शिशु के मस्तिष्क और मेरुदंड में गंभीर विकार आ सकते हैं। इसलिए हरी पत्तेदार सब्जियों को खाया जाए। राइबोफ्लेविन–एंजाइम प्रणाली का महत्वपूर्ण घटक विटामिन 'बी–2', सामान्य त्वचा, पाचन और दृष्टि को बनाए रखने में मदद करता है। हरी पत्तेदार सब्जियों में यह पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। वहीं बिना पर्याप्त आयरन के रक्त के रेड सेल्स द्वारा शरीर के उत्तकों तक पर्याप्त ऑक्सीजन पहुँचाना संभव नही हो पाता। हरी पत्तेदार सब्जियां आयरन का अच्छा और महत्वपूर्ण स्रोत हैं। खजूर, किशमिश जैसे सूखे मेवे में भी आयरन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कैल्शियम हमारी हड्डियों और दांतों के लिए बेहद जरूरी है। इससे हमारे शारीरिक ढांचे, हृदय गति, रक्त जमाव, मांसपेशी–संकुचन और नसों को संवेदनशील बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पत्तेदार हरी सब्जियों को खाने में इस्तेमाल कर हम प्रचुर मात्रा में कैल्शियम ले सकते हैं। आहार रेशा भी हमारे आहार का एक महत्वपूर्ण घटक है जो हमें फलों और सब्जियों से प्राप्त होता है। यह सामान्य आंत्र–गति में सहायक होता है।

ऋतुओं के हिसाब से फल और सब्जी का उपयोग

ऋतु	सब्जियां	फल
वसंत ऋतु (मार्च–अप्रैल)	पालक, मेथी, शिमलामिर्च, गाजर, परवल, कद्दू, लौकी, ब्रोकोली, भिंडी, ककड़ी, दूधी, करेला, चावली, सेम, मूली, शलगम, अदरक परवल, मूली, टिंडोरा, प्याज के पत्ते इत्यादि।	तरबूज, कच्चे आम, अंगूर, नारंगी, अनानास, केला, तरबूज, स्ट्रॉबेरी, कटहल अमरूद, पपीता, संतरा, चीकू, कटहल, अनार इत्यादि।
ग्रीष्म ऋतु (मई –जून)	पालक, ककड़ी, करेला, सेम, तोरई, गाजर, भिंडी, टमाटर, गवार, मकई, शिमला मिर्च, मिर्च, बैंगन, कद्दू, आलू, लौकी, स्क्वाश वेजिटेबल, हरी सेम, चौलाई, शकरकंद, खरबूजा।	आम, कच्चा पपीता, जामुन, लीची, कटहल, तरबूज, प्लम, खरबूज, चेरी, पीच, नाशपाती, तरबूज।

वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त)	फूलगोभी, पत्तागोभी, खीरा, बैंगन, लोबिया, करेला, लौकी, पालकी, तुरई, बीन्स, भिण्डी, प्याज, चौलाई, मूली, कद्दू, ब्रोकोली, पालक, शकरकंद, मकई, बैंगन, अदरक, लहसुन, चुकंदर।	आम, शरीफ ब्लूबेरी, सेब, खरबूज, जामुन, पीच, नाशपाती, तरबूज, प्लम, चेरीज़, आड़ू।
शरद ऋतु (सितम्बर–अक्टूबर)	पालक, भिंडी, कद्दू, ककड़ी, चौलाई, बथुआ, लौ. की, तोरई, फूलगोभी, मूली, पालक, सोया और सेम चावली, गाजर, गवार, मकई, शिमलामिर्च, शकरकंद बैंगन, टमाटर, ब्रोकोली, प्याज का पत्ता।	अमरूद, सेब, पपीता, अनार, अंगूर, शरीफा, आंवला, सिंघाड़ा, मुनक्का और कमलगट्टा, नाशपाती, कृष्णा फल।
हेंमत ऋतु (नवम्बर–दिसम्बर)	बैंगन, मशरूम, टमाटर, आलू, प्याज का पत्ता, कद्दू, डिल, आलू, मूली, चुकन्दर। हरी बीन्स, सहजन की फली, सूरन (जिमीकंद), आलू, ककोड़ा, (खेखसा), परवल, गिल्की, ग्वारफली	सन्तरा, सेब, ख़जूर, अमरूद, अंजीर, पपीता, अनार, स्ट्रॉबेरी, नारंगी, नींबू, अमरूद, शरीफा, अनानास अंजीर, पके केले , जामफल (बिही), तरबूज, अंगूर, नारियल, मौसम्मी, निम्बू, अखरोट, आलू बुखारा, काजू, खजूर, चारोली, बादाम, सिंघाड़े, पिस्ता ।
शीत ऋतु (जनवरी–फरवरी)	बैंगन, पालक, मटर, टमाटर, पत्तागोभी, फूलगोभी, गाजर, मूली, चुकंदर, ब्रोकोली, शिमलामिर्च, धनिया पत्ती, गोभी, मेथी, आलू, प्याज का पत्ता, ब्रोकोली, मशरूम।	स्ट्रॉबेरी, सन्तरा, अंगूर, अमरूद, पपीता, अनार, अनानास, कृष्णा फल, चिकू, स्ट्रॉबेरी, कीवी।

मौसमी फलों और सब्जियों को किचन गार्डन में उगाया जा सकता है

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के अनुसार, प्रति दिन के हिसाब से एक व्यक्ति को 300 ग्राम सब्जियों का सेवन करना चाहिए। इसमें हरी पत्तेदार सब्जी 115 ग्राम, कंद वर्गीय सब्जी 115 ग्राम और अन्य दूसरी सब्जी की मात्रा 70 ग्राम होनी चाहिए। एक पांच सदस्य वाले औसतन परिवार को पूरे सालभर की इन सब्जियों की ज़रूरत को पूरा करने के लिए 200 से 250 वर्ग मीटर की ज़मीन काफ़ी है। इसमें छोटी–छोटी क्यारियां बनाकर उसमे ज़रूरत के अनुसार पोषक तत्व वाली सब्जियों को उगाया जा सकता है। पोषण वाटिका में सब्जियों की खेती के लिए मौसम और जलवायु के अनुसार फसल–चक्र अपनाते हैं। पोषण वाटिका में सब्जियों के साथ–साथ फलदार वृक्ष जैसे पपीता, नींबू, अनार व अमरुद आदि के अलावा, औषधीय पौधे जैसे तुलसी, एलोवेरा, गिलोय को भी लगा सकते हैं।

फसल विविधीकरण से पर्यावरण एवं आय सुरक्षा

नरेश बाबू[1], तरुण अदक[2] एवं अरविन्द कुमार[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

भारत में 70 प्रतिशत से आधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। भारतीय कृषि में छोटे और सीमांत किसान जोत इसकी विशेषता है, बढ़ी हुई जनसँख्या और पशुधन की अधिकतम संख्या, भोजन और हरा चारा की आपूर्ति एक बड़ी चुनौती है। कृषि में हरित, पीली और स्वर्ण क्रांति ने हमें कृषि उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया है। कृषि उत्पादन और उत्पादकता के हमारे वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने में उपयोग की जाने वाली तकनीकियाँ हमारे प्राकृतिक संसाधनों का बड़ी मात्रा में उपयोग करती हैं। संसाधनों का हो रहे अंधाधुन्द प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता, मिट्टी का क्षरण, विषाक्तता, जल संसाधनों में कमी, भूमिगति जल प्रदूषण, खरपतवार प्रतिरोधता, कीटों की रोकथाम, कम गुणवत्ता वाले उत्पादन और जलवायु परिवर्तन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ऐसे में फसल विविधीकरण कृषि में टिकाऊ उत्पादन और जलवायु परिवर्तन पर रणनीति बनाने के लिए प्रमुख विकल्प हो सकता हैं। फसल विविधीकरण सूखे या असमान वर्षा वाली परिस्थितियों में फसल की विफलता के जोखिम को कम करने में सहायक हो सकता है और विदेशी मुद्रा कमाने में मदद करता है। फसल विविधिता किसानों को विकल्प प्रदान करती है, जिसका सीधा असर पोषण, किसानों की आय और उनके सामाजिक और आर्थिक विकास पर पड़ता है। यह उर्वरक, पानी व प्राकृतिक संसाधन विवेकपूर्ण और संरक्षित तरीके से उपयोग करते हुए पैदावार बढ़ाने के अवसर प्रदान करती है।

फसल विविधीकरण गरीबी उन्मूलन और किसानों के जीवन स्तर में सुधार के लिए एक हथियार के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। फसल विविधीकरण देश को सामाजिक–आर्थिक उत्थान, रोजगार सृजन और पर्यावरण सरंक्षण के उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करेगा।

फसल विविधीकरण विभिन्न स्थितियों में दो तरह से सम्भव है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [3]तकनीकी अधिकारी

क्षैतिज विविधीकरण : वर्तमान फसल पद्धति में अधिक फसलों का समावेश करना इसके लिए तकनीकों एवं कुशल प्रबंधन की आवश्यकता है।

ऊर्ध्व विविधीकरण : यह फसल के औधोगिकीकरण की मात्रा एवं स्थिति को बताती है जैसे फलों एवं सब्जियों से मूल्य संबर्धित उत्पाद बनाना, डिब्बा बंदी करना, पैकिंग करना इत्यादि।

फसल विविधीकरण के लाभ

1. कुल उत्पादन में वृद्धि
2. अपेक्षाकृत अधिक आय
3. संसाधनों का उपयुक्त उपयोग
4. भूमि उपयोग छमता में वृद्धि
5. रोजगार के अवसर में वृद्धि
6. टिकाऊ कृषि विकास
7. पर्यावरण में सुधार

वर्षा की मात्रा एवं वितरण में परिवर्तन, भूमिगति जल के अकुशल प्रबंधन, बढ़ती मजदूरी की दरों को देखते हुए प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग कर

फसल विविधीकरण से प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग

कृषि–जलवायुगत क्षेत्रों के अनुसार टिकाऊ उत्पादन एवं लाभकारी कृषि की आवश्यकता है। इसके लिए कम मूल्य की अपेक्षा अधिक मूल्य वाली फसलों जैसे सब्जियां, फल, फूल की खेती करना चाहिए। अधिक पानी चाहने वाली फसलों की अपेक्षा कम पानी चाहने वाली/सूखा प्रतिरोधी फसलें एवं प्रजातियों को उगाना चाहिए। किसानों को अधिक आमदनी हेतु एक फसल से बहुफसली खेती का चयन करना चाहिए। एक फसल से एकीकृत कृषि प्रणाली जैसे मधुमक्खी पालन भी करना चाहिए। मधुमक्खी पालन से फसलों में परागण होगा जिससे उत्पादन भी बढ़ेगा और मधु से अतिरिक्त आय भी होगी।

फसल विविधीकरण तकनीकें

फसल सघनता : खाद्य एवं आय सुरक्षा के लिये आधुनिक तकनीकों, विशेषकर उन्नत बीज/पौधे, खाद एवं उर्वरक, सिंचाई प्रबंधन, यंत्रीकरण, तुड़ाई उपरांत प्रबंधन, प्रसंस्करण, भण्डारण, विपणन इत्यादि द्वारा फसल सघनता संभव है।

संरक्षित खेती : नियंत्रित वातावरण में फसल उत्पादन विविधीकरण का एक प्रमुख स्रोत है जिसमें वायु, तापक्रम, वायुमंडलीय गैसों की मात्रा, पोषक तत्त्व, उच्च गुणवत्ता युक्त फल एवं सब्जियां सभी कुछ नियंत्रित होता है। इस खेती में पानी की मात्रा भी कम लगती है। सब्जियों में टमाटर, शिमला मिर्च, खीरा; फूलों में जरबेरा, गुलाब तथा फलों में स्ट्राबेरी, पपीता की संरक्षित खेती की जा रही है। किसान आय एवं गुणवत्ता उक्त उत्पादन के लिए कम से कम कुल जोत के 10% हिस्से में संरक्षित खेती कर सकते हैं। उड़ीसा में किये गए प्रयोग के अनुसार टमाटर एवं शिमला मिर्च की खेती मार्च तक की जा सकती है जब कि बाहर खुले वातावरण में फरवरी महीने में अधिक तापक्रम बढनें से खेती करना मुश्किल होता है। इस प्रकार संरक्षित खेती के माध्यम से टमाटर एवं शिमला मिर्च का उत्पादन करीब एक महीने अधिक ले सकते हैं।

बागों में अन्तराशस्य फसलें

आम व अमरुद के पेड़ों के बड़े होने तक उनके बीच काफी भूमि बिना उपयोग के रहती है। इसके उचित उपयोग हेतु पेड़ों के 8–10 वर्ष उम्र तक अन्य फसलें उगाई जा सकती हैं। आरंभ में 3–4 वर्षों में जब पेड़ छोटे रहते हैं उनके बीच खाली जगह में मूंग, लोबिया, फ्रेंचबिन, भिंडी; फूलों में गेंदा तथा रजनीगंधा की फसल प्राप्त की जा सकती है। पेड़ों के बड़े होने पर जहां छाया के कारण धूप कम आती है वहाँ हल्दी, अदरक, जिमीकंद तथा अनन्नास की फसलें सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। अन्तराशस्य फसलों से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है, साथ ही भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ती है।

जैविक खेती

संपूर्ण विश्व में बढ़ती हुई जनसंख्या एक गंभीर समस्या है, बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ भोजन की आपूर्ति के लिए मानव द्वारा खाद्य उत्पादन की होड़ में अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए तरह–तरह की रासायनिक खादों, कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है जो कि पारिस्थितिकी तंत्र में–प्रकृति के जैविक और अजैविक पदार्थों के बीच आदान–प्रदान के चक्र को प्रभावित करता है, जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति खराब हो जाती है, साथ ही वातावरण प्रदूषित होता है तथा मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट आती है। वैज्ञानिकों के द्वारा किये गए प्रयोग के अनुसार टमाटर, लोबिया, भिंडी एवं कद्दू की जैविक खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। जैविक खेती में पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए जैविक उर्वरकों जैसे गोबर की खाद, केंचुए की खाद, नीम की खली का प्रयोग किया जाता है। जैविक खेती में भी फसलों का उत्पादन सामान्य खेती के बराबर ही होता है। इस विधि से पैदा की गई फसलों की गुणवत्ता अच्छी होती है। जैविक खेती करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार से फसलों एवं किस्मों का चुनाव करें जिनको पोषक तत्वों की आवश्यकता कम से कम हो एवं कीट एवं बीमारी का प्रकोप भी कम हो।

औषधीय और सुगंधित फसलों की खेती

औषधीय पौधे हमारी सेहत के लिए बहुत ही फायदेमंद होते हैं। यह ऐसे पौधे होते है जो हमारे पर्यावरण में ही मौजूद होते हैं, जिनमें औषधीय गुण पाए जाते हैं। इनका इस्तेमाल वर्षों से किया जा रहा है। लेकिन वर्तमान में इस परंपरा में थोड़ा बदलाव आया है। आइये जानते

है, कुछ औषधीय पौधों के बारे में जो हमारे स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद हैं। इनकी खेती कम लागत एवं बंजर भूमि में आसानी से की जा सकती है। बाजार में भी इन औषधीय और सुगंधित फसलों की बहुत मांग है। किसान भाई अपनी भूमि की स्थिति के अनुरूप औषधीय फसलें लगाकर बेकार, बंजर, कृषि के लिए अनुपयुक्त एवं समस्याग्रत भूमि से भी अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। एलोवेरा, तुलसी, अश्वगंधा, सर्पगंधा, गिलोय, सतावर, ब्राह्मी, स्टीविया, गुडमार इत्यादि फसलों की खेती कर सकते हैं। इन फसलों के मूल्य संबर्धित उत्पाद बनाकर बाजार में अच्छा लाभ कमा सकते हैं।

केंद्र एवं राज्य सरकार औषधीय एवं सुगंधित पौधे की खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को इन फसलों की खेती के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर रही है।

कम उपयोग में आने वाले फलों की खेती

आम, अमरुद के आलावा बेल, आंवला, नीबू, चीकू, करोंदा, शरीफा, इमली, जामुन, बेर, लसोड़ा इत्यादि फलों की खेती भी करनी चाहिए। ये फल समस्याग्रस्त एवं कम उपजाऊ भूमि में भी आसानी से उग जाते हैं और अधिक तापमान एवं सूखा को भी सहन कर लेते हैं। इनमें कीट एवं बीमारियों का प्रकोप भी कम होता है। अतः इनको नियंत्रित करने में होने वाला खर्च कम होता है। ये फल पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं इन फलों का दैनिक जीवन में प्रयोग करने से विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाव होता है। इनकी घरेलू बाजार में मांग भी बढ़ी है अतः किसान इन फलों की खेती कर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

चित्र : संरक्षित खेती से किसानों को लाभ

फलों की सघन बागवानी

हमारे देश में बढ़ती जनसंख्या एवं प्रतिव्यक्ति फलों की कम उपलब्धता को देखते हुए सघन बागवानी एक असरदार तकनीक है क्योंकि इसमें क्षेत्रफल न बढक़र पौधों की संख्या में बढ़ोतरी होती है। इस विधि में छोटे एवं बौनी किस्म के पौधों का चयन किया जाता है तथा उनको रूपान्तरित छत्रक प्रबंधन द्वारा प्रशिक्षित किया जाता है जिससे ज्यादा से ज्यादा सूर्य की रोशनी पौधों के अंदरूनी भागों तक आसानी से पहुँच सके। इसी कारण से इसमें गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त होता है और साथ ही इसमें इकाई क्षेत्रफल में पारम्परिक विधि की अपेक्षा अधिक संख्या में पौधे लगाये जाते हैं। इसमें प्रति इकाई समय में उपलब्ध जगह का अधिकतम उपयोग किया जाता है जिससे अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। सघन बागवानी द्वारा आम, अमरूद, केला, पपीता, लीची, अनन्नास, नींबू वर्गीय फलों को उगाया जा रहा है। इससे फलोत्पादन में पाँच से दस गुना तक वृद्धि होती है जिससे देश में प्रतिव्यक्ति फलों की उपलब्धता के बढने से कुपोषण को दूर करने एवं किसानों को आत्मनिर्भर बनाने में मदद मिलती है।

चित्र : फूलों की खेती से आय में वृद्धि

मिश्रित फसल

कुछ क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाएँ जैसे बाढ़, सूखा, तूफान आदि से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन स्थानों में उपज घट जाती है। ऐसे क्षेत्रों में दो या दो से अधिक फसलों को मिलाकर उगाया जाता है जिससे

कुल आर्थिक लाभ आधिक हो जैसे केले की फसल के साथ सब्जियों की खेती की जा सकती है। सहजन के साथ अनन्नास एवं जिमी कंद की खेती करना लाभप्रद होता है। भारत के तटीय क्षेत्रों में नारियल के साथ काली मिर्च, हल्दी, जिमी कंद, अनन्नास एवं अन्य सब्जियों की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। इस तकनीक से 4–5 गुना तक आमदनी बढ़ जाती है। इस दशा में अगर एक फसल किसी कारण से नष्ट हो जाती है तो दूसरी फसल से आय प्राप्त होती है।

अंतर फसलों के संयोजन से कीट प्रबंधन

एक फसल उगानें से उसमें विशेष प्रकार के कीड़ों का प्रकोप होता है और फसल आंशिक अथवा पूर्ण रूप से ख़राब हो जाती है। कुछ फसलें एक साथ उगानें से कीड़ों के नियंत्रण में सहायक होती हैं। जैसे पत्ता गोभी +गाजर एवं पत्ता गोभी+ टमाटर/सरसों से डायमंडबेक मोथ, टमाटर + गेंदा, पत्ता गोभी+ फ्रेंच बीन से रूट फ्लाई, बैगन+धनिया से तना एवं फल बेधक तथा करेला + मक्का उगानें से फल मक्खी का नियंत्रण होता है। एक से आधिक फसलों के एक साथ उगाने से किसान के पैसे की बचत भी होती है और दूसरी फसल से अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है।

तुड़ाई उपरांत प्रबंधन

संभवतः आज दुनिया का मुख्य मुद्दा लगभग 8 अरब आबादी को पोष्टिक भोजन देना है फल और सब्जियां महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का एक अच्छा स्रोत होने के कारण मानव पोषण का एक महत्वपूर्ण घटक है। बागवानी क्षेत्र में किए गए ठोस प्रयासों के परिणाम स्वरुप फलों और सब्जियों के उत्पादन में ज़बरदस्त वृद्धि हुई है। हमारे देश में फलों और सब्जियों का उत्पादन 102.76 एवं 196. 27 मिलियन टन होता है जो विश्व उत्पादन का लगभग 15% (फल) और 11% (सब्जी) के साथ दुनिया में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है। लेकिन भारत में फसल उत्पादन के बाद के अनुचित प्रबंधन के कारण लगभग 20–30% उत्पादन ख़राब हो जाता है। हमारे देश में हर साल यूनाइटेड किंगडम की वार्षिक खपत के बराबर फल और सब्जियां बर्बाद हो जाती हैं। फसल के बाद के नुकसान को कम करने से उत्पादन, व्यापार और वितरण की लागत कम हो जाती है, उपभोक्ता के लिए कीमत कम हो जाती है और किसान की आय बढ़ जाती है।

उद्यानिक फसलों का उत्पादन और उत्पादकता को वांछित लक्ष्य तक प्राप्त करने में उपयोग की जाने वाली तकनीकियाँ हमारे प्राकृतिक संसाधनों का बड़ी मात्रा में उपयोग करती हैं। जिससे मिट्टी की उर्वरता, विषाक्तता, जल संसाधनों में कमी, भूमिगति जल प्रदूषण, कीटों की रोकथाम, कम गुणवत्ता वाले उत्पादन और जल्वायु परिवर्तन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अब इसमें सुधार की आवश्यकता हैं फसल विविधीकरण की उपर्युक्त तकनीकें अपनाकर इस नकारात्मक प्रभाव को कम कर सकते हैं। फसल विविधीकरण से जैव विविधिता का संरक्षण होता है जो कि प्रकृति के संतुलन के लिए जरूरी है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि फसल विविधीकरण किसी स्थान की जलवायु की दशा, तकनीक प्रसार, किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विपणन व्यवस्था इत्यादि कारकों पर निर्भर करती है। परन्तु यह निश्चित है कि फसल विविधीकरण एवं सघनीकरण अपनाकर किसान की खाद्य–सुरक्षा, पोषण–सुरक्षा एवं आय–सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है।

बागवानी उत्पादन और व्यापार की दिशा में डिजिटल क्रांति की भूमिका

हरीश चंद्र वर्मा[1] एवं तरुण अदक[2]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

21वीं सदी में, डिजिटल क्रांति बागवानी क्षेत्र को बदलने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। डिजिटल क्रांति बागवानी उत्पादों के उत्पादन और घरेलू और विदेशी व्यापार को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। ब्लॉकचेन एक नवीनतम डिजिटल प्रणाली है जो अपने पारदर्शी और स्वचालित मल्टी–लेजर सिस्टम के माध्यम से खाद्य धोखाधड़ी और जालसाजों से निपटने में मदद कर सकती है। डिजिटल इंडिया को फल क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय प्राथिमकता दी गई है। डिजिटल ट्रांसफॉमशन मिशन के तहत मोबाइल ऐप, वेब आधारित फोरकास्टिंग सिस्टम और डिसिशन सपोर्ट सिस्टम आदि को बेहद महत्वपूर्ण बताया गया है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी हमारे जीवन के सभी क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका खेती को आर्थिक और सामाजिक रूप से टिकाऊ और आसान बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण है। उसका उद्देश्य स्थानीय सूचना और सेवाओं का हस्तान्तरण करना भी है। उत्पादन के आर्थिक लाभ हैं क्योंकि यह आसानी से देश के भीतर कारोबार करता है। विदेशी बाजारों में गुणवत्तापूर्ण फलों, सब्जियों, मसालों, फूलों और औषधीय फसलों की पूर्ति करने की अपार संभावनाएं हैं। यह पाया गया कि आम के निर्यात से ही करोड़ों रुपये से अधिक की कमाई हुई। सूचना तकनीकी आधारित आपसी व्यापार और लाभ के इस युग में, दुनिया भर के लोग परस्पर दूसरे देशों की गुणवत्तापूर्ण उपज का आनंद लेते हैं। हालांकि, गुणवत्तापूर्ण सामग्री के उत्पादन के लिए, उत्पादन तकनीकों को अनुकूलित किया गया और लाखों किसानों तक पहुंचने के लिए डिजिटल समाधान शामिल किए गए। डिजिटल उत्पादों के उपयोग के माध्यम से उत्पादकों को अपने दरवाजे पर वैज्ञानिक प्रोटोकॉल का फायदा मिलता है। व्हाट्सएप, पीडीएफ, वेब आधारित सलाह, ऐप, फोटो आदि के माध्यम से स्थानीय भाषा में प्रौद्योगिकियों को आसानी से उत्पादकों तक पहुँचाया जा रहा है। ऑडियो और वीडियो सिस्टम भी आसान स्वीकृति और उपयोग के लिए ग्रामीण जनता के बीच प्रवेश करने में सक्षम कि जा रही हैं।

इस संदर्भ में, 21वीं सदी में, भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) बागों में पोषक तत्वों के वितरण का आकलन करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती है। पोषक तत्व वितरण के पैटर्न को मापना आसान है जिसके आधार पर उत्पादकों, हितधारकों; नीति नियोजक डिजिटल पोषक मानचित्रों का उपयोग कर सकते हैं। उपज और गुणवत्ता के नुकसान से बचने के लिए, सूचना प्रौद्योगिकी आधारित पोषक प्रबंधन रणनीतियों को विकसित करने के लिए मिट्टी और पौधों के विश्लेषण के माध्यम से फसल की पोषक आवश्यकताओं की सावधानीपूर्वक निगरानी करने की आवश्यकता है। कंप्यूटर आधारित सलाह से पेड़ों पर जिंक का प्रयोग या तो मिट्टी या पत्ते पर छिड़काव करने से गुणवत्ता, उपज में काफी सुधार हुआ है और इसके कमी के लक्षणों में कमी आई है।

अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए डिजिटल समाधान का महत्व जिसमें पोषक तत्वों की खुराक की समय पर जानकारी उत्पादकों को डिजिटल रूप से उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इस प्रकार, बागवानी उत्पादन में शामिल उत्पादकों और किसानों के लिए डिजिटल उत्पाद वरदान साबित हो सकते हैं। नियमित अंतराल पर अमरूद में 1 प्रतिशत जिंक सल्फेट के पत्ते पर छिड़काव करने से फलों की उच्च उपज और गुणवत्ता का उत्पादन होता है। इस प्रकार, मृदा सूचना प्रणाली का मूल्यांकन करने और लाभ के लिए किसानों तक प्रसारित करने की आवश्यकता है। छोटे और सीमांत किसानों के बीच गुणवत्तापूर्ण फल और सब्जियों का समर्थन करने के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका को भी प्रसारित किया जाना चाहिए।

[1,2]वरिष्ठ वैज्ञानिक

ब्लॉकचेन तकनीकी के अनुप्रयोग

ब्लॉकचेन एक नवीनतम डिजिटल क्रांति है जो डेटा–साझाकरण, विकेंद्रीकरण और छेड़छाड़ प्रतिरोध के लाभों के माध्यम से राजस्व बढ़ाने के लिए ताजे फलों की आपूर्ति श्रृंखला को चला सकती है।

खाद्य उद्योग के लिए ब्लॉकचेन का उपयोग

ब्लॉकचैन प्रौद्योगिकी से खाद्य उद्योग में कई व्यवसायियों को लाभ मिलने की उम्मीद है।

- सबसे पहले, आपूर्ति श्रृंखलाएं अपने प्रबंधन और संचालन को पुनर्जीवित कर सकती हैं, क्योंकि उनके पास सदस्य प्रोफाइल के बारे में विस्तृत जानकारी होगी, जो भोजन की सुरक्षा पर उच्च स्तर की निश्चितता प्रदान करती है।
- उपभोक्ता के लिए इसका प्रमाण क्यूआर कोड और उत्पाद लेबलिंग को लागू करना है। यह दूषित भोजन को आपूर्ति श्रृंखला में प्रवेश करने से रोक सकता है, यदि यह अलमारियों में प्रवेश कर गया है, तो उसे खोजने में मदद करें और उसे हटा दें।

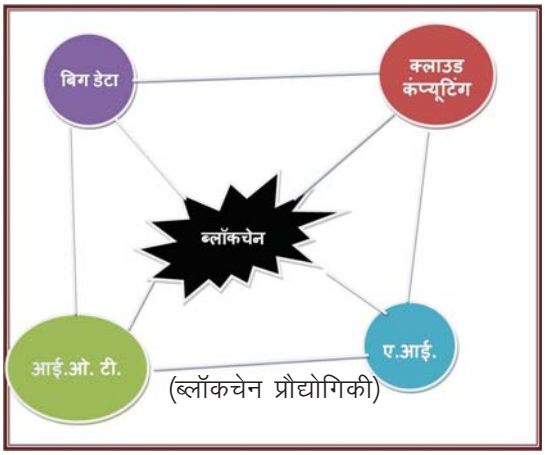

चित्र–1. ब्लॉकचैन तकनीक के घटक

- कृषि क्षेत्र में, ब्लॉकचैन इन्वेंट्री ट्रैकिंग और शिपिंग प्रक्रियाओं में मदद कर सकता है, जो संबंधित लागतों को कम करने में मदद करता है जो अन्यथा तीसरे पक्ष के सत्यापनकर्ता के पास जाता है। प्राइसवाटरहाउसकूपर्स के अनुमान के अनुसार, वैश्विक स्तर पर खाद्य धोखाधड़ी हर साल +52 बिलियन की होती है।
- ब्लॉकचेन तकनीक अपने पारदर्शी और स्वचालित मल्टी–लेजर सिस्टम के माध्यम से खाद्य धोखाधड़ी और जालसाजों से निपटने में मदद कर सकती है।
- ब्रांड पारदर्शिता के संबंध में, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में प्रमुख घटक सूचना एकत्र करना है। उत्पाद की जानकारी जानने के लिए उपभोक्ता अपने स्मार्ट फोन से लेबलिंग जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। दूसरी ओर, सुपरमार्केट बड़ी मात्रा में डेटा तक पहुंच सकते हैं जो आपूर्ति श्रृंखला के माध्यम से यात्रा करते हैं।
- ब्लॉकचैन उत्पादक और प्रोसेसर को एक दूसरे के साथ निजी और सुरक्षित रूप से जानकारी साझा करने की अनुमति देता है, जबकि आपूर्ति श्रृंखला भी इस जानकारी को मान्य करती है। हालाँकि, यह तभी काम करेगा जब स्रोत पर डेटा सटीक होगा।
- ब्लॉकचेन के सबसे बड़े लाभों में से एक इसकी सार्वजनिक प्रकृति है। एक खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में, किसी भी समय भोजन की एक वस्तु के सभी लेन–देन को देखा और मान्य किया जा सकता है।
- ब्लॉकचैन लेन–देन का स्थायी रिकॉर्ड प्रदान करता है, जिसे बाद में उन ब्लॉकों में समूहीकृत किया जाता है जिन्हें बदला या छेड़छाड़ नहीं किया जा सकता है। प्रतिभागियों के बीच आम सहमति से लेनदेन को सत्यापित और अनुमोदित किया जाता है, जिससे धोखाधड़ी अधिक कठिन हो जाती है।
- यह एक खुला मंच प्रदान करता है, और लेनदेन को अधिकृत करने के लिए किसी तीसरे पक्ष की आवश्यकता नहीं है – बल्कि, नियमों का एक सेट है जिसका सभी प्रतिभागियों को पालन करना चाहिए।

चूंकि ब्लॉकचेन तकनीक एक वितरित (केंद्रीकृत के बजाय) प्लेटफॉर्म पर काम करती है, इसलिए प्रत्येक प्रतिभागी के पास ठीक उसी रिकॉर्ड तक पहुंच होती है। जानकारी एक ही समय में सभी के लिए अपडेट की जाती है। यह पूरी आपूर्ति श्रृंखला को किसी भी धोखाधड़ी के खतरों या खाद्य सुरक्षा आपदाओं के प्रति अधिक प्रतिक्रियाशील होने का अधिकार देता है।

बागवानी फसलों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता

स्वास्ती शुभदर्शिनी दास[1], विशम्भर दयाल[2], एच.सी. वर्मा[3], इसरार अहमद[4], मुथ्थूकुमार एम.[5] एवं देवेन्द्र पाण्डेय[6]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

परिचय

बागवानी उद्यमिता को लाभदायक, दीर्घायु तथा सुलभ से करने के लिए सूचना सबसे महत्वपूर्ण तकनीकियो में से एक बन गई है। सूचना, न केवल बागवानी में, बल्कि जीवन के सभी आयामों में सही निर्णय लेने और सर्वोत्तम अवसरों का लाभ उठाने में सहायक होती है। आज के युग में, जरूरत की सारी जानकारी सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा एक सेकंड में प्राप्त की जा सकती है। बस यह जानना जरूरी है कि सही जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रौद्योगिकी का प्रयोग सही निर्णय लेने में कैसे सहायक होगा। यदि आप सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग नहीं करते हैं, तो प्रतिस्पर्धा भरी दुनिया में पीछे रह जायेंगे। जानकारी जल्दी, सही समय पर, कम पैसो में और पूर्ण रूप में पहुँचनी चाहिए। हमारे देश में किसानों को बीज बोने से लेकर अपनी फसल बेचने तक तरह–तरह की सूचनाओं की जरूरत होती है। अपने रोजगार के बारे में जानकारी के अलावा, वे उन नीतियों या कार्यक्रमों के रूप में भी अवसरों की तलाश करते हैं जो उनकी मदद कर सकते है। जब किसान खेती में अपनी जरूरत के सामान खरीदते हैं, तो वे उपभोक्ताओं के रूप में भी माने जाते हैं। खराब खरीद से बचने के लिए उपभोक्ताओं को भी उत्पादों के बारे में पर्याप्त जानकारी होनी आवश्यक है। समय पर किसानों का आवश्यक जानकारी प्राप्त करना भी अपने आप में एक कठिन काम है, जो सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से संभव है। एक दशक से भी पहले, लोगों ने महसूस किया कि बागवानी विकास के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी कितनी महत्वपूर्ण है। तब से, विभिन्न समूहों द्वारा कई पहलें की गई हैं, लेकिन अभी भी इस प्रणाली को अधिक रचनात्मक और प्रभावी ढंग से उपयोग में नहीं लाया जा सका हैं, विशेष रूप से किसानों के लाभ के लिए, जैसे–जैसे डिजिटल इंडिया कार्यक्रम आगे बढ़ेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग भी बढेगा।

[1,2]वैज्ञानिक, [3,4,5]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [6]पूर्व निदेशक

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग के लिए संभावित क्षेत्र

बागवानी और ग्रामीण विकास के लिए बदलती नीतियाँ एवं बदलते समाज के साथ, नए, सशक्त और, अलग–अलग कार्यकर्त्ता , क्षेत्र और बाकी दुनिया के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी एक–दूसरे को जोड़ने का एक माध्यम है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी समाज के विभिन्न पहलुओ पर चर्चा करने में सहायक है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक, व्यक्तिगत, सामाजिक, और प्रशासनिक स्तर के सभी अनुप्रयोगों की सीमओं और क्षमताओ में शामिल हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में बागवानी के नवाचारो को प्रोत्साहित करते है, जहाँ सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी एक बड़ा बदलाव ला सकती है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, खेती से अधिक आमदनी प्राप्त करने में, बाजार के लिए बेहतर खाद्य उत्पाद लाने में और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करके पर्यावरण को स्वस्थ रखने में सहायक हो सकता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत कृषि–विशिष्ट समर्थन सेवाओं को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है–ऑन–फार्म समर्थन सेवाएं, प्रबंधन और निर्णय लेने के लिए समर्थन सेवाएं और कार्यस्थल पर समर्थन सेवाएं, जो कि किसानों को उपयुक्त ज्ञान और जानकारी देने के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

ऑन-फ़ार्म समर्थन सेवाएँ

यह बेतार संचार के माध्यम से ऑन–फार्म व्यतिगत सेवाओं के प्रावधान को दर्शाता है। मोबाइल या वायरलेस नेटवर्किंग तकनीकों का उपयोग करके, किसान उन सेवाओं तक पहुँच सकते हैं जो उनकी खेती में मददगार साबित हो सकता हैं। इन सेवओं का उपयोग करके किसान सीधे

विशेषज्ञों से जुड़कर अपनी खेती से सम्बंधित सलाह ले सकते हैं। किसान विशेषज्ञों से सवाल भी पूछ सकते हैं, वास्तविक समय में डिजिटल डेटा भेज सकते हैं और तुरंत निदानात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त कर सकते हैं। कुछ विकसित देशों में नैनो सेंसर को जमीन में गाड़ कर, मिट्टी, जल, और फसलो में होने वाले परिवर्तन की जानकारी किसान प्राप्त करते है।

प्रबंधन और निर्णय लेने में सहायक सेवाएँ

यह किसानों को प्रबंधन और निर्णय लेने के तरीके के बारे में अधिक जानने में मदद करता है। कृषि संसाधनों का बेहतर उपयोग करने के लिए कंप्यूटर और उपग्रह प्रौद्योगिकियों का उपयोग किया जाता है। इन सेवओं के माध्यम से पौधों के विकास को प्रभावित करने वाले कारक जैसे समय, स्थान एवं मिट्टी की नियमित जानकारियों को ध्यान में रखते हुए, भविष्य की खेती के लिए, प्राकृतिक संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जा सकता है, उसका अनुमान लगाया जाना संभव है।

कार्यस्थल पर समर्थन सेवाएं

कार्यस्थल पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी द्वारा निम्नलिखित सहायता सेवाएं प्रदान की जाती हैं।

1. कृषि विशेषज्ञों द्वारा कार्यस्थल पर प्रशिक्षण सेवाएँ या तो वास्तविक समय में या रिकॉर्ड किए गए वीडियो में उपलब्ध की जाती हैं।
2 ई–मार्केटिंग किसानों को सीधे व्यापारियों या उपभोक्ताओं तक पहुंचने की अनुमति देता है ताकि वे अपने उत्पादों की बिक्री कर सकें, लक्षित ग्राहक एवं विक्रेता की पहचान कर सकें, वरीयता पर ग्राहकों की जानकारी एकत्र कर सकें और उत्पाद पर न्यूनतम प्रयास और लागत पर ऑनलाइन जानकारी प्रदान कर सकें।
3. ई–लाइब्रेरी बागवानी में रुचि रखने वाले लोगो को विशेष ज्ञान प्राप्त करने में मदद करती है जो जैविक खेती, नए विपणन दृष्टिकोण, बागवानी नीतिगत ढांचे जैसे उभरते बागवानी मुद्दों में स्थानीय ज्ञान को बढ़ा सकती है।
4. ई–समुदायों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों, अन्य पेशेवर समूहों, समुदाय के अन्य सदस्यों एवं भौगोलिक सीमाओं के साथ सूचनाओं का आदान–प्रदान कर सकते हैं जो उनके ज्ञान और अनुभव को बढ़ाने में योगदान करते हैं।

मोबाइल ऐप के माध्यम से सलाहकार सेवा

मोबाइल ऐप का लक्ष्य किसानों को खेती में नवीनतम तकनीकों के बारे में अद्यतन रखना है। इसके प्रयोग से किसान घर बैठे ही अपनी फसल की उपयोगी जानकारी निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं। इस दिशा में केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ के वैज्ञानिकों ने प्रसंकृत फलो के उपाद बनाने की विधि पर सलाह देने के लिए 9 मोबाइल ऐप विकसित किए हैं जिन्हें नीचे चित्र–1 में दिखाया गया है।

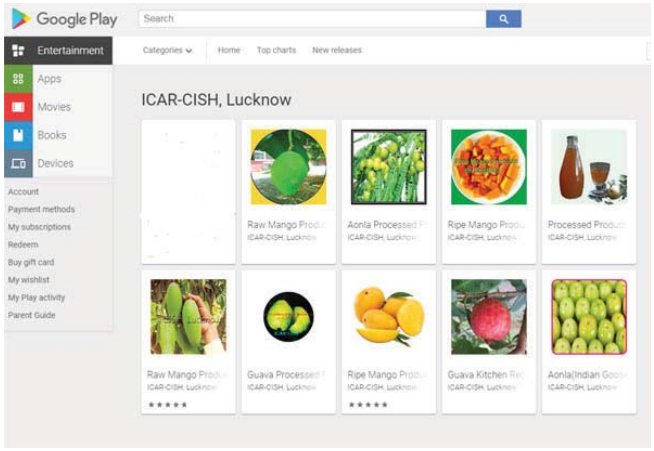

चित्र–1. संस्थान द्वारा विकसित मोबाइल ऐप की गूगल प्ले पर एक झलक

इन ऐप्स को गूगल प्ले पर "ICAR-CISH, LUCKNOW" कीवर्ड का इस्तेमाल करके आसानी से खोजा जा सकता है और इन्हें मोबाइल पर इंस्टॉल किया जा सकता है। ये ऐप हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं में अलग–अलग आम, अमरूद, बेल और आंवला पर प्रसंस्कृत उत्पाद बनाने की सलाह देते हैं। इन ऐप का उपयोग करके किसान हिंदी भाषा में कुटीर स्तर पर भी गुणवत्तापूर्ण फल प्रसंस्कृत उत्पाद बनाने की सलाह प्राप्त कर सकते हैं।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी तथा खाद्य सुरक्षा

उत्पादन, प्रसंस्करण और वितरण की पूरी श्रृंखला में अधिक से अधिक खाद्य के लिए उपभोक्ताओं की बढ़ती मांगें, भोजन की गुणवत्ता एवं सुरक्षा पर उनकी बढ़ती चिंता को परिलक्षित करता है। कृषि उत्पादों के निर्यात के लिए सामान्य व्यावसायिक क्षमता को पता लगाने की आवश्यकता है। डाटा प्रबंधन जैसे उपग्रह इमेजिंग, मैपिंग से सटीक ट्रैकिंग एवं भू –ट्रैकिंग के माध्यम से खाद्य का पता (ट्रेसबिलिटी) लगाने की समस्या से निजात पाया जा सकता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी तथा कृषि व्यवसाय

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से उत्पादों की प्रबंधन और संगठन प्रक्रिया की री–इंजीनियरिंग, ग्राहकों के साथ सीधे ऑनलाइन बातचीत, नए बाजार के अवसरों की खोज और इस प्रकार नई अर्थव्यवस्था की क्षमता को बढ़ाने एवं व्यवसाय के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में एक मंच प्रदान कर रहे हैं। इसमें बागवानी और अन्य क्षेत्रों के व्यवसाय शामिल हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में निम्नलिखित सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग दावा करते हैं–

1. ई–कॉमर्स : सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ग्रामीण व्यवसायों को अपने ग्राहकों के साथ लेन–देन के लिए एक ऑनलाइन मार्केटप्लेस बनाने का मौका देते हैं।
2. ई–मार्केटिंग : सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए, ग्रामीण उद्यमी उपभोक्ताओं से सीधे जुड़कर अपना माल बेचते हैं। ई–मार्केटिंग दोतरफा संपर्क को बढ़ावा देती है और ग्राहकों की जरूरतों को जानने और प्रतिक्रिया देने के अवसरों को प्रदान करता है।
3. ई–प्रशिक्षण : यह सेवा उपयोगकर्ताओं को व्यवसाय प्रबंधन तकनीकों पर ऑनलाइन पाठ्यक्रमों तक पहुंच प्रदान करती है जो उन्हें अपने ज्ञान और क्षमताओं को आगे बढ़ाने में मदद करती है।
4. ई–मार्केटप्लेस : सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करके, ग्रामीण निवासी स्थानीय व्यवसायों और उत्पादों के आधार पर मार्केटिंग और लेनदेन के लिए प्लेटफॉर्म के रूप में ई–मार्केटप्लेस बना सकते हैं। इस तरह का एक ऑनलाइन बाज़ार स्थानीय फर्मों को आभासी स्थान आवंटित कर सकता है, जिससे वे अपने माल को समूह के माध्यम से बढ़ावा दे सकते हैं और कई बिचौलियों से बचते हुए बहुत से उपभोक्ताओ तक पहुँच बना सकते हैं जो अक्सर वास्तविक कीमत को विकृत करते हैं।

बागवानी में भविष्य के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी विकास के लिए नीतिगत सिफारिश

1. ग्रामीण क्षेत्रों की नई जरूरतों को पूरा करने के लक्ष्य के साथ ज्ञान और सूचना साझा करने के लिए उपयोगकर्ता– केंद्रित रणनीतियों का निर्माण की आवश्यकता है।
2. स्थान–आधारित ऐप का निर्माण किया जा सकता है जो उन जगहों पर काम कर सकता है जहां हाई–स्पीड कनेक्शन नहीं है या जो हमेशा चालू नहीं रहता है।
3. मोबाइल, वायरलेस इंफ्रास्ट्रक्चर एवं टीवी सेट–टॉप बॉक्स के साथ काम करने वाले ऐप बागवानी के विकास में मदद कर सकते हैं।
4. विभिन्न मोड और चैनलों के साथ एक डिजिटल संचार प्रणाली के विकास करने की आवश्यकता है जिसके माध्यम से सभी मीडिया, सभी जगहों पे, अलग–अलग संचार प्राथमिकताएं एवं तरीको के अनुकूल हो सके।
5. सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अनुप्रयोगों के उपयोग करने की चुनौतियाँ जैसे बहुभाषी, मल्टीमॉडल, अनुकूलनीय इंटरफेस, प्राकृतिक भाषा संपर्क, विज़ुअलाइज़ेशन तकनीक के लिए इंटरफेस बनाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी प्रयोग के विभिन्न फायदे है। ये कृषि से सम्बंधित जानकारी जैसे उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार, वेतन में वृद्धि, उत्पादकता में वृद्धि, लाभ में वृद्धि, मौसम, मिट्टी के प्रकार, फसल के डिजाइन को एकत्र साझा में मदद करता है। स्मार्ट खेती में सूचना

एवं संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से सक्षम उपकरणों जैसे सेल फोन, रेडियो, टीवी और इंटरनेट प्रदाता का उपयोग करके, किसानों को कम लागत, कम जोखिम के साथ मौजूदा बाजार कीमतों, बाजार की मांग के बारे में सटीक और समय पर जानकारी देने के लिए अत्यधिक उपयुक्त है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करने वालो के कौशल में सुधार करके ग्रामीण क्षेत्रों में उचित आजीवन सीखने एवं प्रशिक्षण के साथ–साथ संरचनाएं जो समान जरूरतों वाले समुदायों के लिए ज्ञान साझा करने और एक दूसरे से सीखने में सक्षम बनाती हैं।

❀❀❀❀

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल मूलतः आलोचक और विचारक थे। 1904 ई. से उनके निबंध 'सरस्वती' और 'आनन्द कादम्बिनी' आदि प्रमुख पत्रिकाओं में छपते रहे। निबंधों के माध्यम से शुक्ल जी ने लोक की विविध परिस्थितियों के आचार–व्यवहार तथा अनेकानेक संघर्षों के बीच पड़े हुए मन की व्याख्या की है। 'कामायनी' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य है जिसमें आनन्दवाद की नई संकल्पना समरसता का संदेश निहित है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं –झरना, आँसू, लहर, कामायनी, प्रेम पथिक (काव्य) स्कंदगुप्त चंद्रगुप्त, पुवस्वामिनी जन्मेजय का नागयज्ञ राज्यश्री, अजातशत्रु, विशाख, एक घूँट।

उपोष्ण फलों की जैव विविधता संरक्षण में किसानों की सहभागिता

स्वास्ती शुभदर्शिनी दास[1], विशम्भर दयाल[2], अमर कांत कुशवाहा[3], मनीष मिश्रा[4], आशीष यादव[5], अंशुमान सिंह[6] एवं देवेन्द्र पाण्डेय[7]

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

परिचय

वैश्विक खाद्य सुरक्षा यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आहार संबंधी जरूरतों को पूरा कर सके और एक सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन जीने के लिए पर्याप्त सुरक्षित और पौष्टिक भोजन की उपलब्धता हो। गिनी चुनी लोकप्रिय फल–फसलों पर अत्यधिक निर्भरता के परिणामस्वरूप बहुमूल्य पादप अनुवांशिक संसाधनों का नुकसान होता है जिसके कारणवश वैश्विक खाद्य और पोषण सुरक्षा खतरे में है। पिछली शताब्दी में 75% से अधिक पादप अनुवांशिक संसाधन नष्ट हो चुके हैं, और 2050 तक वर्तमान में उपलब्ध विविधता का एक तिहाई भाग समाप्त होने की आशंका है। अतः इन मूल्यवान अनुवांशिक संसाधनों को क्षरण से बचाने की तत्काल आवश्यकता है। भारतवर्ष की विविध जलवायु परिस्थितियाँ फलों की व्यावसायिक एवं संकर किस्मों की खेती और इनके प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए एक वरदान है। व्यावसायिक किस्मों और संकरों के अलावा, फलों की फसलों की कुछ पारंपरिक किस्में हैं जिन्हें किसानों ने पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित किया है। ऐसे किसान अपने खेतों पर फलों की विविधता को संरक्षित करते हैं और इसके उपयोग और खेती का पारंपरिक ज्ञान भी रखते हैं। ये किसान इन विभिन्न फलों की प्रजातियों और किस्मों के ''संरक्षक'' हैं। ये किसान ऐसे किस्मों का चयन करते हैं जो स्थानीय परिस्थितियों और प्राथमिकताओं के लिए सबसे उपयुक्त हों, और साथ ही साथ वे अपने पारिवारिक और स्थानीय लोगों को उनके उपयोग एवं संरक्षण के लिए जागरूक करते हैं। पारंपरिक किस्मों की अभिरक्षा वाले इन किसानों को आमतौर पर ''संरक्षक किसान'' कहा जाता है। आज, कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान संगठन इन संरक्षक किसानों की पहचान करने का प्रयास कर रहे हैं ताकि उन्हें इन पारंपरिक फसलों की खेती जारी रखने और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में योगदान देने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

[1,2,3]वैज्ञानिक, [4,5]प्रधान वैज्ञानिक, [6]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [7]पूर्व निदेशक

संरक्षक किसान

संरक्षक किसान (पुरुष अथवा महिला) वे किसान हैं जो लंबे समय तक अपने खेतों और अपने समुदायों में कृषि जैव विविधता और संबंधित ज्ञान को सक्रिय रूप से बनाए रखते हैं, तथा बढ़ावा देते हैं और ऐसा करने से लोगों में उनकी एक विशिष्ट पहचान होती है।

संरक्षक किसानों की पहचान

संरक्षक किसान अनुवांशिक विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आनुवंशिक संसाधन संरक्षकों पर विचार करते समय उनकी भूमिकाओं को अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। हालाँकि, कुछ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों की उनके प्रयासों के लिए सराहना की जानी चाहिए जिनके प्रयास से इन पारंपरिक किसानों को अब उचित पहचान के साथ प्रकाश में लाया जा रहा है। संरक्षक कृषकों की पहचान करना एक कठिन कार्य है तथा अभिरक्षक कृषकों के चयन में पक्षपात की सम्भावना को इंकार नहीं किया जा सकता है। पक्षपात से बचने के लिए संरक्षक किसानों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए द्वितीयक स्रोतों का सहारा लिया जाता है जैसे की सरकारी अभिलेखों, पुस्तकों, पत्रिकाओं, समाचार पत्रों और वेबसाइटों आदि। समुदाय के साथ केंद्रित समूह चर्चा के माध्यम से किसी भी संशय को समाप्त कर दिया जाता है। केंद्रित समूह चर्चाओं के माध्यम से पहचाने जाने वाले संभावित संरक्षक किसानों में निम्नलिखित विशेषताए होनी चाहिए।

(i) उन्हें विशिष्ट रूप से विविध कृषि–पारिस्थितिक तंत्रों में स्थित होना चाहिए (ii) वे समृद्ध प्रजातियों और विविधता को बनाए रखते हों (iii) वे एक संरक्षण विचारधारा

से प्रेरित हों और (iv) वे पर्यावरण–कृषि ज्ञान और विशिष्ट विषेषताओं वाली किस्मों से समृद्ध हों, (v) विशिष्ट रूप से अपने ज्ञान और सामग्रियों को एक दूसरे के साथ साझा करने के इच्छुक होने चाहिए।

फलों की फसलों को खेत पर संरक्षण की आवश्यकता

अतीत में, लोग अपने बागों में बीजू पौधों की खेती करना पसंद करते थे, जिससे भारत में अधिकांश फलों की किस्मों का विकास हुआ। हालाँकि, कुछ बड़े खेतिहर किसान, जो बीजू पौध उत्पादन के लिए अधिक भूमि का उपयोग कर सकते हैं, को छोड़कर हर क्षेत्र में बीजू पौधों की जगह व्यावसायिक किस्मों के कलमी पौधों ने ले ली है। नई किस्मों का उत्पादन प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के माध्यम से, अद्वितीय लक्षणों की अभिव्यक्ति या विपरीत लक्षणों वाले दो नर–मादा के संकरण के परिणामस्वरूप होता है। कई पारंपरिक या पुरानी किस्मों को व्यावसायिक किस्मों और संकरों द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप सभी अन्य जननद्रव्यों की हानि हो रही है, और कृषि में मूल्यवान जैव विविधता के लिए खतरा पैदा हो रहा है। इसलिए, इन मूल्यवान संसाधनों को विलुप्त होने से बचाने की तत्काल आवश्यकता है।

फलों की फसलों में कृषि संरक्षण का संवर्धन

मेले, त्यौहार और प्रदर्शनियां ऐसे सामान्य स्थान हैं जहां किसान देश भर के शहरों में अपनी अनूठी किस्मों का प्रदर्शन और प्रचार कर सकते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान लखनऊ और भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान बेंगलुरु जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, संस्थानों ने आम, कटहल आदि फलों के लिए विविधता मेले आयोजित किए हैं। इन आयोजनों में देश भर से प्रतिभागी शामिल होते हैं। ये शानदार आयोजन, किसानों, फलों के शौकीनों और अन्य आम दर्शकों के लिए उत्कृष्ट होते हैं। इन आयोजनों में न केवल फलों को प्रदर्शित किया जाता है, बल्कि फलों से बने मूल्य वर्धित उत्पादों को भी प्रदर्शित किया जाता है। ये विविधता प्रदर्शनी उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण हैं जो दुर्लभ फलों की किस्मों का संरक्षण करते हैं और इस प्रकार के आयोजन की प्रतीक्षा करते हैं क्योंकि यह उन्हें अपने बागों में उपलब्ध विरासत को प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करते है। कई किसान मेले में बेचने के लिए विविधतापूर्ण फल लाते हैं, और शहरी लोग इन उत्कृष्ट फलों को खुशी–खुशी अधिक कीमत पर खरीद लेते है। फल प्रेमी इस समारोह में दुर्लभ फल किस्म के पौधों का आदान–प्रदान करते हैं। फल व्यापारी भी इस कार्यक्रम में शामिल होते हैं क्योंकि वे प्रगतिशील किसानों के साथ अनुबंधों को नवीनीकृत करते हैं जिनके पास घरेलू और निर्यात बाजारों में उच्च मूल्य प्राप्त करने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले फलों का उत्पादन और आपूर्ति करने की क्षमता होती है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान लखनऊ ने सैकड़ों आम की किस्मों को प्रदर्शित करते हुए कई आम विविधता प्रदर्षनी आयोजित की हैं। इस तरह के आयोजन उन लोगों को प्रोत्साहित करने के लिए आयोजित किए जाते हैं जो बागों में आम की किस्मों को बेहतर बनाने के लिए लगातार काम कर रहे हैं। यह संस्थान ''एक किसान के साथ एक किस्म'' के सिद्धांत का पालन करके लोगों को षिक्षित करने का प्रयास कर रहा है कि किसान कैसे अपने स्वयं के बागों में किस्मों का संरक्षण करे, जिससे आम की हजारों किस्मों का संरक्षण हो सकेगा। समुदाय के लिए दुर्लभ किस्मों का संरक्षण किसान स्वयं के खेत पर कर सकते हैं।

चित्र 1. केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान द्वारा आयोजित आम मेला में अनुसूचित जाति के किसानों द्वारा आम की विविध जैव विविधता की प्रदर्शनी का आयोजन

चुनौतियां एवं अवसर

स्थानीय समुदाय संरक्षक किसानों को पारंपरिक फल

विविधता के संरक्षणकर्ता, नवप्रवर्तक और प्रवर्तक के रूप में महत्व देते हैं, लेकिन राष्ट्रीय और वैश्विक नीति स्तरों पर उनके अधिकारों और योगदानों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। कुछ कृषक परिवारों में संरक्षकता अगली पीढ़ी को सौंप दी जाएगी, लेकिन नौकरियों और उच्च शिक्षा के लिए शहरी क्षेत्रों में बढ़ते ग्रामीण प्रवासन के साथ, युवा पीढ़ी अपने पूर्वजों द्वारा अपनाई गई कृषि पद्धतियों को जारी रखने में संकोच कर रही है। संरक्षकता बनाए रखने के लिए, एक समूह स्थापित किया जाना चाहिए जिसमें एक संरक्षक किसान के ''कार्यकाल'' को अन्य भागीदारी वाले किसानों द्वारा संचालित किया जा सके या साझा किया जा सके, जब वे अपने प्रयासों को जारी रखने में असमर्थ हों। संरक्षक किसान, संरक्षण, नवाचार और विकास में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, उन्हें अक्सर कम महत्त्व दिया जाता है, उनका मूल्यांकन सही से नहीं किया जाता है और उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता है। ऐसा इस प्रकार के किसानों की कमी के साथ–साथ अनुसंधान और विकास समूह तक उनकी पहुंच की कमी के कारण है। एक ऐसे तंत्र का निर्माण करना है जो संरक्षक किसानों को क्षेत्रीय किसानों के एक बड़े समूह के साथ–साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आनुवांशिक संसाधन प्रणालियों से जोड़ता है एक बहुत बड़ी चुनौती है। किसानों की अद्वितीय/दुर्लभ/विषिष्ट किस्मों को औपचारिक रूप से पंजीकृत किया जा सकता है और इस प्रकार किसान–प्रबंधित आनुवंशिक संसाधनों से सर्वोत्तम फलों के पेड़ों की पहचान और चयन किया जा सकता है। इनका व्यावसायिक उत्पादन बढा कर के सुलभता से वितरण प्रणाली में लाया जा सकता है। नीतिगत बाधाएं भी संरक्षक किसानों द्वारा विकसित किस्मों की व्यापक स्वीकृति को बाधित करती हैं। किसानों को उचित लाभ तक पहुंच प्राप्त करने के लिए एक साझाकरण तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है, जिसका एक प्रमुख अंग पूर्व सूचित सहमति है, जो की संभावित समाधान के लिए आवश्यक है।

फलों की फसलों को ऑन–फार्म संरक्षण के लिए निष्कर्ष और भविष्य की संभावनाएं

संरक्षक किसान फलों के पेड़ों की विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्थानीय फसल विविधता के स्वस्थाने संरक्षण और स्थानीय फलों के पेड़ विविधता के संरक्षक, नवप्रवर्तक और संवर्धक के रूप में उनकी भूमिका के आंकलन के लिए संरक्षक किसानों के महत्व का उचित मूल्यांकन आवश्यक है। संरक्षक किसान नेटवर्क को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण रणनीतियों में एकीकृत करना है और उन्हें कृषि जैव विविधता संरक्षण संस्थानों से सीधे लिंक करना है (उदाहरण के लिए, विविधता को दस्तावेज करने के लिए जीनबैंक और अनुसंधान कार्यक्रमों में संरक्षक किसानों को शामिल करना)। विभिन्न क्षेत्रों में संरक्षक किसानों की क्षमता बढ़ाने के लिए समुदाय–आधारित दृष्टिकोण का उपयोग करें–

(i) पारंपरिक ज्ञान (जैसे सामुदायिक फल सूची, सामुदायिक जैव विविधता रजिस्टर आदि) के प्रलेखन, उपयोग और संरक्षण के माध्यम से खाद्य और कृषि के लिए पादप आनुवांशिक संसाधनों के पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण।

(ii) सहेजे गए बीज रोपण सामग्री को बचाने, उपयोग करने, विनिमय करने और स्वयं खेती करने का अधिकार।

(iii) सामुदायिक जैव विविधता प्रबंधन, सामुदायिक जैव विविधता प्रबंधन निधि की स्थापना, आदि के मामलों पर राष्ट्रीय स्तर पर निर्णय लेने में भाग लेने का अधिकार।

(iv) स्थानीय रूप से संचालित जैव विविधता प्रबंधन फंडों का समर्थन करें जो स्थानीय स्तर पर दुर्लभ और अनूठी सामग्री के गुणन और विनिमय को सीधे बनाए रख सकते हैं।

सूक्ष्म सिंचाई : किसानों के लिए एक वरदान

कर्म वीर[1], आलोक कुमार गुप्ता[2], रवि एस.सी.[3], आभा सिंह[4] एवं विशम्भर दयाल[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

सारांश

कृषि क्षेत्र में उन्नत तकनिकी के साथ उन्नत सिंचाई की विधि का उपयोग उत्पादन और धारणीय कृषि के लिए आवश्यक है भारत की आधी से ज्यादा आबादी कृषि पर निर्भर है इसीलिए जल संरक्षण और उत्तम कृषि उत्पादन में सूक्ष्म सिंचाई के विस्तार और उपयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत लेख में सूक्ष्म सिंचाई की विधि का वर्णन निहित है जो कि किसानों और हित धारकों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध होगा।

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पर लगभग 67 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि में शामिल है। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का लगभग 97 प्रतिशत हिस्सा खारा है जिसका उपयोग फसल उत्पादन के लिए संभव नहीं है। फसल उत्पादन के लिए अधिक जल के बजाय हमें उचित मात्रा में जल देने के बारे में सोचना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में सिंचाई की उन विधियों को अपनाना जरुरी है जिनमें कम जल के साथ साथ उचित मात्रा में पौधों को जल दिया जा सके जिससे फसल की पैदावार बढ़ सके। बढ़ती आबादी के लिए अधिक फसल का उत्पादन जल के अभाव में संभव नहीं है। पेड़–पौधों को अधिक मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। जिसमे प्राकृतिक रुप से पानी की जरुरत पूर्ण नहीं हो पाती इसलिए पौधों के वृद्धि एवं विकास के लिए सिंचाई के रुप से पानी देना जरुरी होता है।

जलवायु परिवर्तन के कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो गई है जिससे हर समय खेत की सतह से जल का नुकसान वाष्पीकरण के रूप में हो रहा है। बढ़ती हुई आबादी की खाद्य पूर्ति के लिए हम हर दिन जमीन से अधिक जल का दोहन कर रहे हैं। जिसके परिणामस्वरूप दिन प्रतिदिन जल के स्तर में गिरावट हो रही है। भूगर्भ जल का काफी मात्रा में सिंचाई के लिए उपयोग किया जाता है। लेकिन सिंचाई की विभिन्न विधियों में पानी के उपयोग की दक्षता 50 प्रतिशत से कम होने के कारण आधा पानी बेकार चला जाता है। इस पानी को उन्नत सिंचाई तकनीकी का अपनाकर बचाया जा सकता है।

परम्परागत सिंचाई विधि से जल का समुचित उपयोग पौधों में नहीं हो पाती है फलस्वरूप जल का अधिक नुकसान हो जाता है अतः इस समस्या को दूर करने के लिए सूक्ष्म सिंचाई विधि जैसे फव्वारा, टपक व पिचर (घड़ा) द्वारा सिंचाई का समुचित उपयोग करना जरुरी है। बाग में सिंचाई के लिए इन संसाधनों को अपनाकर हम जल के संरक्षण से सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

सूक्ष्म सिंचाई क्या है?

सूक्ष्म सिंचाई में प्रचलित ड्रिप या टपक सिंचाई का आविष्कार सर्व प्रथम इजराइल में हुआ था। ड्रिप सिंचाई, सूक्ष्म सिंचाई की एक ऐसी विधि है जिसमें पानी की छोटी बूंदों को सीधे प्लास्टिक की पतली ट्यूब द्वारा पौधे की जड़ों में टपकाया जाता है। जिससे पौधों द्वारा पानी के उपयोग करने की दक्षता काफी बढ़ जाती है और वे पानी का उपयोग किफायती तरीके से करते है।

फव्वारा विधि, जिसको स्प्रिंकलर सिंचाई भी कहते है का भी प्रचलन आज की आधुनिक खेती में बहुतायत से हो रहा है इस पद्धति में जल की काफी बचत होने के साथ–साथ उत्पादन की भी बढ़त होती है। घड़ा सिंचाई एक ऐसी विधि है जो पौधों में सिंचाई के लिए गोलाकार मिट्टी के कंटेनरों/बोतलों द्वारा पानी को पौधों की जड़ों तक पहुंचाती है। इस प्रकार के घड़े में बारीक छिद्र

[1,2,3,5]वैज्ञानिक, [4]प्रधान वैज्ञानिक

करके मिट्टी के नीचे दबा दिया जाता है जो पौधों का आवश्यकतानुसार जल पहुंचाता है।

सूक्ष्म सिंचाई की विधियां

सूक्ष्म सिंचाई की महत्वपूर्ण विधियां निम्नलिखित है–

टपक सिंचाई

भारत में पिछले दशकों के दौरान टपक सिंचाई के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में बहुत वृद्धि हुई है। भारत सरकार के कृषि मंत्रालय ने अनुमान लगाया है कि देश में कुल 27 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में टपक सिंचाई का उपयोग किया जा रहा है। कम दबाव और नियंत्रण के साथ सीधे फसलों की जड़ में उनकी आवश्यकतानुसार जल देना ही टपक सिंचाई है। टपक सिंचाई में जल की थोड़ी–थोड़ी मात्रा को कम समय अन्तराल पर प्लास्टिक की नलियों द्वारा सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचाया जाता है। परम्परागत सतही सिंचाई द्वारा जल का उचित उपयोग नहीं हो पाता, क्योंकि अधिकतर जल, जो कि पौधों को मिलना चाहिए वह जमीन में रिस कर या उत्सर्जन द्वारा व्यर्थ चला जाता है। अतः उपलब्ध जल का सही और पूर्ण उपयोग करने के लिए एक ऐसी सिंचाई पद्धति अनिवार्य है जिसके द्वारा जल का रिसाव कम से कम हो और अधिक से अधिक पानी पौधे को उपलब्ध हो पाये।

टपक सिंचाई के माध्यम से पौधों को उर्वरक आपूर्ति करने की प्रक्रिया फर्टिगेशन कहलाती है, जो कि पोषक तत्वों की लीचिंग व वाष्पीकरण नुकसान पर अंकुश लगाकर सही समय पर उपयुक्त फसल पोषण प्रदान करती है।

फव्वारा सिंचाई

सिंचाई की इस पद्धति में नली में जल दबाव के साथ पम्प द्वारा भेजा जाता है जिससे फसल पर फुहारा द्वारा छिड़काव होता है। मुख्य नली बगल की नलियों से जुड़ी होती है। बगल की नलियों में जल उठाने वाली नली जुड़ी होती है। जल उठाने वाली नली जिसे राइजर पाइप कहते है, इसकी लम्बाई फसल की लम्बाई, पर निर्भर करती है। क्योंकि फसल की ऊंचाई जितनी रहती है राइजर पाइप हमेशा उससे ऊंचा रखना पड़ता है। इसे सामान्यतः फसल की अधिकतम लम्बाई के बराबर होना चाहिए। पानी छिड़कने वाले हेड घूमने वाले होते है जिन्हें पानी उठाने वाले पाइप से लगा दिया जाता है। पानी छिड़कने वाले यंत्र भूमि के पूरे क्षेत्रफल पर अर्थात फसल के ऊपर पानी छिड़कते है। दबाव के कारण पानी काफी दूर तक छिड़क जाता है। जिससे एक आदर्श व समान सिंचाई होती है।

घड़ा सिंचाई

यह टपक सिंचाई के समान है, लेकिन स्थापित करने के तरीका अलग है और ये किसानो को महंगा नहीं

पड़ता है। घड़े ग्रामीण क्षेत्रों में पानी के भंडारण के लिए उपयोग किए जाते हैं, जिनकी क्षमता 5 से 20 लीटर तक होती है। इस तरह की सिंचाई बागबानी पौधों के रोपण के लिए आदर्श है। चुने गए पौधे के पास गड्ढे को खोदें और घड़े को अंदर रख कर घड़े की बाहरी दीवार को मिट्टी के अच्छे से दबाएं। घड़े को मिट्टी की सतह के 2–3 सेंटी मीटर ऊपर रखें। घड़े को पानी से भरने के बाद अच्छी तरह से ढक दे जिससे उसमें मच्छर का प्रजनन न हो सके। जब पानी का तीन चौथाई भाग बचा हो तब पानी को फिर से भर देना चाहिए। पिचर सिंचाई के साथ घुलनशील उर्वरकों को भी पानी के साथ मिश्रित किया जा सकता है और घड़े के माध्यम से उर्वरक दिया जा सकता है। यदि सिंचाई के लिए उपयोग किए जाने वाले पानी में उच्च लवणता है, तो हर 3 साल में घड़े का स्थान बदलना चाहिए। यह सिंचाई फलों और सब्जियों के उगाने हेतु काफी उपयोगी मानी गई है।

सूक्ष्म सिंचाई से लाभ

जल उपयोग दक्षता : सूक्ष्म सिंचाई की जल उपयोग की दक्षता (जल उपयोग दक्षता) 80–95 प्रतिशत तक है, जबकि पारंपरिक सिंचाई प्रणाली में पानी के उपयोग की दक्षता लगभग 35–40 प्रतिशत तक ही होती है। पानी की कमी वाले क्षेत्रों के लिए यह सिंचाई प्रणाली बेहद फायदेमंद है।

पोषक तत्व उपयोग दक्षता : इस विधि में उतने ही पानी और उर्वरक की आपूर्ति की जाती है जितनी फसल के लिए आवश्यक होती है। जिससे अनावश्यक नुकसान से पोषक तत्वों को बचाया जा सकता है।

उत्पादकता : सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली से फसल के विकास के लिए मिट्टी में नमी स्रोत की प्रचुर मात्रा मौजूद रहती है। इस प्रकार पौधों को आवश्यक मात्रा में जल मिलता है। परिणामस्वरूप, फसलों के उत्पादन और उत्पादकता दोनों में वृद्धि होती है। फलों, सब्जियों और अन्य फसलों के उत्पादन में ड्रिप सिंचाई द्वारा 20% से 50% की वृद्धि दर्ज की गयी है।

रासायनिक खाद : फर्टिगेशन के जरिये खाद एवं पानी दोनों पौधों को पहुँचाया जा सकता है जिससे समय और लगत दोनों की बचत होती है। फव्वारा विधि द्वारा कृत्रिम वर्षा कर पौधों की वृद्धि और विकास में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। इस प्रणाली द्वारा 35–50 प्रतिशत तक रासायनिक खाद को बचाया जा सकता है।

खरपतवार : टपक सिंचाई द्वारा पानी सीधे फसल की जड़ों में जाता है। फलस्वरूप आस–पास की जमीन सूखी रहने से अनावश्यक खरपतवार नहीं उगते हैं और जमीन की उर्वरता भी बनी रहती है।

उपसंहार

जल संरक्षण और उत्पादकता बढ़ाने के लिए सूक्ष्म सिंचाई का महत्वपूर्ण योगदान है इन समस्त बिधियों को अपनाने से कम लागत से अधिक उत्पादन अर्जित किया जा सकता है। परम्परागत सतही सिंचाई द्वारा जल का उचित उपयोग नहीं हो पाता, क्योंकि अधिकतर पानी, जोकि पौधों को मिलना चाहिए वह जमीन में रिस कर या उत्सिर्जित होकर व्यर्थ चला जाता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली से फसलों के उत्पादन में 20 से 50 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है।

केले की खेती

विशम्भर दयाल[1], शरद कुमार द्विवेदी[2], आशीष यादव[3], स्वास्ती शुभदर्शिनी दास[4] एवं वीरेन्द्र कुमार गौतम[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

प्रस्तावना

केला एक महत्वपूर्ण कटिबन्धीय फल है। जो बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अग्रणी फल है। यह प्राचीन काल से उगाए जाने वाले भारतीय फलों में सबसे पुराने और मुख्य फलों में से एक है। भारत में केले का सेवन लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय है न केवल संपन्न लोग बल्कि गरीब वर्ग के लोग भी इसका सेवन करना पसन्द करते हैं। इसके कारण इसकी माँग एवं उपलब्धता सम्पूर्ण वर्ष बनी रहती है इसके फलों में बहुत सारे औषधीय गुण होते हैं जिनका उपयोग विभिन्न स्वास्थ्य विकारों के इलाज के लिए किया जाता है, विशेष रूप से अम्लता, अल्सर, जोड़ों के दर्द, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगों के लिए। केले में विभिन्न प्रकार के विटामिन्स एवं खनिज लवण भी प्रचुर मात्रा में पायें जाते हैं। जिनमें विटामिन 'बी–6' मुख्य रूप से पाई जाती है। इसका सेवन करने से मेटाबॉलिज्म की प्रक्रिया सुचारू होती है और यह गर्भावस्था और शैशवावस्था के दौरान मस्तिष्क के विकास के साथ–साथ प्रतिरक्षा प्रणाली में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका उपयोग पके (टेबल) या कच्चे फल (सब्जी) के रूप में किया जाता है। फलों से विभिन्न प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे केले के चिप्स, टॉफी, प्यूरी, पाउडर, आटा, सिरका, जैम, जेली और वाइन तैयार किए जा सकते हैं। केले के रेशे से आकर्षक नैपकिन, टेबल मैट और कैरी बैग बनाए जा सकते हैं। केले के पत्ते का उपयोग धार्मिक कार्यो में एवं शुभ अवसरों पर भोजन परोसने के लिए थाली के रूप में किया जाता है, पत्ती के म्यान को लपेटने के लिए सामग्री के रूप में और सूखे पत्तों को ईंधन के रूप में उपयोग किया जाता है, जबकि कोमल तना, पत्तियां, भूमिगत प्रकंद मवेशियों के चारे के रूप में उपयोग किए जाते हैं। केला ऊर्जा का समृद्ध स्रोत है (350 से 550 किलो जूल/100 ग्राम) और खनिजों और विटामिनों का एक अच्छा स्रोत है। इसमें 73% नमी, 25-30% कार्बोहाइड्रेट, 1.4% प्रोटीन, 0.3% वसा, 0.5% खनिज पदार्थ, विटामिन–'सी' तथा अन्य विटामिन्स भी होते हैं।

[1,2,4]वैज्ञानिक, [3]प्रधान वैज्ञानिक [4]शोधकर्मी

मूल स्थान एवं वितरण

माना जाता है कि केले की उत्पत्ति दक्षिण–पूर्व एशिया के गर्म उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में हुई है, जो भारत से पापुआ, न्यूगिनी, मलेशिया और इंडोनेशिया तक फैली हुई है। भारत में दुनिया की स्वदेशी केले की दूसरी सबसे बड़ी विविधता पाई जाती है। दुनिया भर में रिपोर्ट किए गए 600 में से 300 सौ जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म) भारत में पायें जाते है। खाद्य केला दो जंगली प्रजनकों के बीच प्राकृतिक संकरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है। मूसा पाराडीसियाका और मूसा बाल्बिसियाना, केला कई अफ्रीकी देशों में 30°N और 50°S अक्षांशों के बीच उगाया जा रहा है। केले का उत्पादन

कई देशों में वृहद स्तर पर किया जाता हैं जिसमें भारत का प्रथम स्थान हैं केले का उत्पादन करने वाले अन्य देश–केन्या, युगांडा, सूडान, फिजी, होंडुरास, हवाई, कैनरी द्वीप, फिलीपींस, ताइवान, ऑस्ट्रेलिया, बांग्लादेश, दक्षिण अफ्रीका तथा पाकिस्तान आदि हैं। भारत में यह दूसरी प्रमुख फल फसल है जिसकी खेती तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, असम, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात और केरल राज्यों में मुख्य रूप से की जाती है।

मिट्टी

केले की खेती मुख्यतः सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती हैं। इसकी खेती के लिए पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ एवं अच्छी जल निकास वाली दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। इसकी खेती हल्की क्षारीय मिट्टी में भी की जा सकती है। इसकी खेती के लिए मृदा पीएच मान 6.5–7.5 होना चाहिए हालांकि केले के लिए अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है, परन्तु जल भराव की स्थिति पौधे के लिए हानिकारक होती हैं।

जलवायु

केला मुख्य रूप से एक आर्द्र उष्णकटिबंधीय फल की फसल है, जो 10° सेल्सियस से 40° सेल्सियस और औसतन 23° सेल्सियस के तापमान वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह से उत्पादित किया जा सकता है। अत्यधिक तेज हवाए, कम तापमान (10° सेल्सियस से कम) या अत्यधिक उच्च तापमान पौधे की वृद्धि के लिए हानिकारक होती हैं।

प्रजातियां एवं किस्में

केले की महत्वपूर्ण किस्मों की विशेषताएं

1. नेय पूवन (एबी) : पौधे मध्यम आकार के पतले, पीले रंग के तना के साथ लाल रंग के पेटीओल मार्जिन वाले होते हैं। छोटे फल, गूदे सख्त, मीठे और अत्यधिक सुगंधित होते हैं। औसत गुच्छे का वजन लगभग 12 किलो होता है। यह लीफ स्पॉट और *फ्यूजेरियम* के उकठा रोग के प्रति सहिष्णु है, लेकिन ब्रैक्ट मोजेक वायरस के लिए अतिसंवेदनशील है। इसकी खेती व्यावसायिक रूप से केरल और कर्नाटक में की जाती है।

2. कुन्नान (एबी) : पौधे मध्यम आकार के और अच्छे स्वाद के साथ दृढ़ गूदे वाले पतले फल होते हैं। मुख्य रूप से केले के आटे में परिवर्तित होने के बाद शिशु आहार के रूप में उपयोग किया जाता है। यह लीफ स्पॉट और *फ्यूजेरियम* के उकठा रोग के प्रति सहिष्णु है।

3. ड्वार्फ कैवेंडिश (एएए) : यह भारत की सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक किस्म है जिसका पौधा बौना, फल बड़े, घुमावदार, त्वचा मोटी, हरी, गूदा कोमल और मीठा होता है। पकने के बाद भी फल हरे रंग का रहता है, लेकिन सर्दी के मौसम में पकने वाले फलों का रंग पीला हो जाता है। औसत गुच्छों का वजन लगभग 20 किग्रा होता है और यह उच्च घनत्व वाले रोपण के लिए उपयुक्त मानी जाती है तथा लीफ स्पॉट रोग के प्रति अतिसंवेदनशील है।

4. रस्थली (एएबी) : यह पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, केरल और बिहार की सबसे लोकप्रिय व्यावसायिक एवं पसंदीदा टेबल कल्टीवेटर में से एक है। पौधा लंबा होता है और भूरे रंग के धब्बों के साथ पीले हरे तने द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। औसत गुच्छा वजन लगभग 12 किलो है। फल मध्यम, पतले छिलके वाले, पीले रंग के गूदा के सख्त, सुखद सुगंध वाले मीठे होते हैं। इसमें लंबी अवधि, *फ्यूजेरियम* के उकठा रोग के लिए गंभीर संवेदनशीलता, गुच्छों से फलों को आसानी से गिरने का नुकसान है।

5. पूवन (एएबी) : पौधा लंबा और तेजी से बढ़ता है, पौधे के विशिष्ट लक्षणों में से एक मध्य शिरा के बाहर गुलाबी रंग है, फल मध्यम से छोटे, पीले रंग की त्वचा में उप–अम्लीय स्वाद के साथ फर्म गूदा होता है। औसत गुच्छा वजन लगभग 15 किलो होता है। यह पनामा विल्ट के लिए प्रतिरोधी है और केले के ब्रैक्ट मोजेक और स्ट्रीक वायरस के लिए अतिसंवेदनशील एवं बंची टॉप के लिए काफी प्रतिरोधी है।

प्रवर्धन

केले को पारंपरिक रूप से, वानस्पतिक रूप से सकर वाले या प्रकंद या ऊतक संवर्धन पौधों के माध्यम से प्रवर्धित किया जाता है। फलों की अनिषेककलन (पार्थेनोकार्पिक) प्रकृति के कारण यौन प्रजनन संभव नहीं है।

केला दो तरह के सकर पैदा करता है

1. वाटर सकर 2. तलवार सकर

1. वाटर सकर

वाटर सकर वह है जिसमें चौड़ी पत्तियों की विशेषता होती है जो पतले तना के साथ स्वस्थ केले के झुरमुट का उत्पादन नहीं करती है। राइजोम/कॉर्म अच्छी तरह से विकसित नहीं होता है। इसकी उपज में अधिक समय (18 महीने से अधिक) लगता है। उपज भी कम होती है। इस प्रकार के सामान्य रूप से मिट्टी की सतह के पास छद्मतना से दूर उथली कलियों से विकसित होते हैं।

तलवार सकर वाला

तलवार सकर वाला एक अच्छी तरह से विकसित प्रकंद के साथ एक तलवार की तरह पत्तियों के साथ अच्छी तरह से विकसित छद्म तना है। इसकी उपज में 12–13 महीने लगते हैं और बड़े गुच्छे देते हैं। तलवार सकर वाले मूल पौधे के साथ निकटता से जुड़े होते हैं, इसलिए अपने स्वयं के मजबूत मोटे प्रकंद विकसित करते हैं।

रोपण के लिए सकर चयन के लिए महत्वपूर्ण मापदंड :

- बाग/मदर ब्लॉक रोग मुक्त होना चाहिए।
- सकर का वजन 1.0–1.5 किलोग्राम होना चाहिए।
- मदर प्लांट भारी उपज वाला होना चाहिए।
- रोपण के लिए हमेशा तलवार सकर का चयन करें।
- राइजोम वीविल्स से मुक्त सकर का चयन करें।
- सकर की उम्र 3–4 महीने होनी चाहिए
- जब सकर उपलब्ध न हों तो पूरे या विभाजित प्रकंद का भी उपयोग किया जा सकता है।
- प्रकंद के टुकड़ों का उपयोग रोपण सामग्री के रूप में भी किया जा सकता है।
- ऊतक संवर्धित पौधों का उपयोग व्यावसायिक स्तर पर रोपण सामग्री के रूप में भी किया जाना चाहिए।

2. सकर की तैयारी

यह प्रकंद की सतह पर पुरानी पत्तियों, जड़ों, चिपकी हुई मिट्टी और अन्य कणों को हटाने की प्रक्रिया है और प्रकंद से 15 सेमी छोड़ने वाले सकर के शीर्ष भाग को हटा देना चाहिए। मिट्टी के रोगजनकों और प्रकंद वीविल्स से बचने के लिए सकर को गाय के गोबर के घोल में डुबो देना चाहिए और फोरेट ग्रेन्यूल्स @10–15 ग्राम प्रति राइजोम छिड़कना चाहिए। साथ ही प्रकंदों को तिरछा काट कर फफूंदनाशी के घोल में डुबो देना चाहिए।

खेत की तैयारी कैसे करते हैं

भूमि की गहरी जुताई करके समतल किया जाता है। 45–60 वर्ग सेमी आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं। गड्ढे को ऊपर की मिट्टी से भरकर, 10 किलो गोबर की खाद, 250 ग्राम नीम की खली और 50 ग्राम लिंडेन 1–3% के साथ मिलाया जाता है।

रोपण

कड़ाके की सर्दी और भारी बारिश को छोड़कर केले को पूरे साल लगाया जा सकता है। सामान्य तौर पर, जुलाई–अगस्त रोपण का सबसे उपयुक्त मौसम है।

1. गड्ढे विधि

आमतौर पर गड्ढा (पिट) विधि और फरो विधियों द्वारा किया जाता है। 60 वर्ग सेमी आकर के गड्ढे 1.8 × 1.8 मीटर या 2 × 2 मीटर (लंबी किस्मों) में वर्गाकार प्रणाली को अपनाते हुए खोदा जाना चाहिए। इन गड्ढों को 20–30 किग्रा की ऊपरी मिट्टी से भर दिया जाता है। गोबर की खाद रोपण से कम से कम 15–30 दिन पहले गड्ढो में मिटटी के साथ मिलाकर भर देना चाहिए। रोपण के दौरान नेमाटोड और प्रकंद सड़न की समस्याओं को रोकने के लिए प्रत्येक गड्ढे में 250 ग्राम नीम की खली और 50 ग्राम ट्राइकोडर्मा का प्रयोग करना चाहिए। सकर (पौध) को गड्ढे के केंद्र में रोपना चाहिए और रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करना अति आवश्यक होता है।

2. फरो विधि

यह रोपण का सबसे आम तरीका है। 15–20 सेंमी. गहरे फरो (नालियों) को नियमित दूरी पर खोदा जाता है और फरो में प्रकंद लगाए जाते हैं।

ऊतक संवर्धित पौधे

ऊतक संवर्धित पौधों का उपयोग करके केले को व्यावसायिक रूप से भी उगाया जाता है। इन पौधों को पूरी वृद्धि अवधि के दौरान सकर की तुलना में बहुत अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है और उपज सकर की तुलना में लगभग 10–20 प्रतिशत अधिक होती है। हाल के वर्षों में उच्च घनत्व रोपण (एचडीपी) की अवधारणा का प्रयोग किया जा रहा है, अधिक उपज और उत्पादन की कम लागत प्राप्त करने के लिए निर्दिष्ट दूरी पर अधिक संख्या में पौधों को समायोजित करके प्रति गड्ढे में दो सकर लगाए जाते हैं। रोबस्टा और ड्वार्फ कैवेंडिश 1.5 × 1.5 मीटर की दूरी पर 4444 पौधों/हेक्टेयर को समायोजित करता है, जिसकी सिफारिश भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलौर द्वारा की गई, जिससे उच्चतम उपज दर्ज की गई।

सिंचाई

केले के बागान में मिट्टी को पूरी तरह से सूखने नहीं देना चाहिए। केले को सालाना 1800–2500 मिमी से अधिक मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। रोपण से लेकर कटाई तक 4–5 दिनों के अंतराल पर लगभग 40–45 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

पोषण प्रबंधन

केला एक बहुत अधिक पोषक तत्व चाहने वाली फसल है, फसल की उथली जड़ प्रणाली के कारण, यह प्रयोग किये गये पोषक तत्वों के लिए अच्छी तरह से प्रतिक्रिया करता है। केले की उच्च उर्वरक आवश्यकता मुख्य रूप से उनकी तेजी से वृद्धि और उच्च फल उपज के कारण होती है। फूलों की शुरुआत से पहले उर्वरकों को 3 भागों में देना चाहिए अर्थात रोपण के बाद दूसरे, चौथे और छठे महीने देना चाहिए। उर्वरकों को पौधे से 30–40 सेमी के दायरे में बेसिन बनाकर मिट्टी में मिलाना चाहिए और फिर पौधे की सिंचाई करनी चाहिए।

अन्तः सस्य फसले

केले की फसल के साथ अन्तः सस्य फसले भी उगाई जा सकती है जैसे मटर, आलू, लहसुन, बोकला, सरसों इत्यादि

खरपतवार नियंत्रण

केले में खरपतवार, फसल विकास के प्रारंभिक चरण में एक समस्या है, नमी के संरक्षण, पोषक तत्वों के उचित उपयोग के साथ–साथ कीटों और रोगों के प्रभावी नियंत्रण के लिए केले में खरपतवार मुक्त वातावरण आवश्यक है। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन कार्यक्रम में कवर फसलों को उगाना, शाकनाशी का उपयोग, अंतर फसल और जहां भी आवश्यक हो, हाथ से निराई करके नियंत्रित किया जा सकता है। केले की उपज और गुणवत्ता को प्रभावित किए बिना 4 किग्रा/हेक्टेयर की दर से डायउरोन का पूर्व उद्भव आवेदन या ग्लाइफोसेट 2 किग्रा/हेक्टेयर के बाद ग्रामोक्सोन 1.8 किग्रा/हेक्टेयर का उपयोग खरपतवार वृद्धि को नियंत्रित करने में सहायक है।

महत्वपूर्ण सस्य क्रियाये

सकर को काटना

मुख्य तने के बगल में निकलने वाली पत्तियों को जमीनी स्तर से काटने के बाद मिट्टी के तेल/2–4, डी 0.5 प्रतिशत की दर से प्रयोग करके, साइड सकर के वृद्धि को आगे के विकास को रोकने के लिए कट अंत को नुकसान पहुंचाकर रोका जा सकता है। चूंकि केला कई सकर पैदा करता है, अगर अनुमति दी जाती है, तो वे मदर प्लांट के साथ नमी एवं पोषण के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, एक या दो स्वस्थ तलवार सकर को पेडी (रटून) फसल के लिए उगाने के लिए छोड़ा जा सकता है।

मिटटी चढ़ना : बरसात के मौसम में मुख्य तने के चारों ओर मिट्टी को चढ़ाया जाता है।

प्रोपिंग (सहारा देना)

गुच्छी अवस्था में पौधे को सहारा देना पड़ता है। बौनी किस्म में इसकी अति आवश्यकता नहीं होती है, लेकिन सभी लंबी किस्मों के लिए, बांस के खंभे या किसी अन्य समर्थन का उपयोग करके इसकी आवश्यकता होती है।

अस्वीकरण

फलों के अंतिम सेट के बाद नर कलियों को हटाना। यह गुच्छों के वजन/फलों के वजन और फलों की गुणवत्ता को भी बढ़ाता है।

थ्रैशिंग (पत्ती हटाना)

सूखे, पुराने और रोगग्रस्त पत्तों को हटाने की यह एक प्रक्रिया है तथा बेहतर प्रकाश, तापमान और हवा की सुविधा प्रदान करती है। हालांकि, अगर गुच्छा शुरू होने से पहले पत्तियों को काट दिया जाता है, तो फूल आने में देरी होती है और फसल का समय बढ़ जाता है। अधिकतम पैदावार के लिए कम से कम 12 पत्तियों को रखने की आवश्यकता होती है

गुच्छा कवरिंग

फल की परिपक्वता अवस्था के दौरान, ठंड, धूप की झुलसा, थ्रिप्स और अन्य स्क्रैपिंग कीड़ों के हमले से बचाने के लिए छिद्रित पॉलिथीन कवर या सूखे पत्तों के साथ गुच्छों को रखना, बैग को कीटनाशकों के साथ लेपित किया जा सकता है।

फल परिपक्वता और फसल

अनुकूल परिस्थितियों में केला 9–12 महीनों में फूलना, फल देना शुरू हो जाता है। केले का फल किस्मों, जलवायु आदि के आधार पर लगभग 4–5 महीनों में परिपक्व हो जाते हैं। केले की कटाई 3/4वे परिपक्वता चरण में दूर के बाजारों के लिए या चिप्स बनाने के उद्देश्य से की जाती है, जबकि स्थानीय के लिए बाजारों को पूर्ण परिपक्वता पर काटा जाता है।

केले की परिपक्वता के संकेत

- ऊपर की पत्तियों का सूखना।
- फलों का रंग हरे से हल्के हरे रंग में बदलना।
- फलों के फूलों के सिरे पर हल्के हाथ से छूने से झड़ जाते हैं।
- फल कोण भर जाते हैं और गायब हो जाते हैं।
- एक या दो फल बेसल सिरे (पीले रंग) पर पकते हैं।
- फल में स्टार्च की मात्रा (22–25%)।

मैटोकिंग (तना काटना)

गुच्छों की कटाई के बाद मुख्य तने को काटने की प्रक्रिया है। कटाई के बाद लगभग 0.6 मीटर ऊँचे स्टंप

को छोड़कर मुख्य तना काट दिया जाना चाहिए, बचे हुए स्टंप को अपनी संग्रहीत खाद्य सामग्री के साथ, पुतिया सकर को सूखने और सूखने तक पोषण देना जारी रखता है।

उत्पादन

- केले की उपज किस्म और उत्पादन पद्धतियों के अनुसार बदलती रहती है।
- किस्में आमतौर पर 15–20 टन/हे. उपज देती हैं।
- कैवेंडिश समूह की किस्मों से लगभग 40 टन/हेक्टेयर उपज होती है,
- पहाड़ी केले/खाना पकाने की किस्मों से लगभग 11–15 टन/हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

तुड़ाई उपरांत प्रबंधन

केले को 3 सप्ताह के लिए 85–90% की सापेक्ष आर्द्रता के साथ लगभग 13°C पर संग्रहित किया जा सकता है और एक सप्ताह में 16.5–21.0°C पर पक जाता है। फलों को प्रशीतित स्थिति में संग्रहीत/स्थानांतरित नहीं किया जाना चाहिए। फलों को कार्बन डाइऑक्साइड की उच्च सांद्रता और ऑक्सीजन की कम सांद्रता में रखकर भंडारण जीवन को बढ़ाया जा सकता है। पोटेशियम परमैंगनेट (लाल दवा) जैसे एथिलीन शोषक युक्त सीलबंद पॉलीथीन बैग में भी भंडारण। केले को आमतौर पर पेड़ पर नहीं पकने दिया जाता है। गर्मियों में 18–24 घंटे और सर्दियों में 48 घंटे के लिए एक बंद कक्ष में पुआल के पत्तों और गाय के गोबर के साथ धूम्र करके और बाद में एक समान पकने के लिए हवादार कमरे में स्थानांतरित कर दिया जाता है। 24 घंटे के लिए एक संलग्न कक्ष में 100 पीपीएम एथिलीन गैस का बहिर्जात अनुप्रयोग एक समान रंग और पकने का उत्पादन करेगा।

प्रकंद और सकर का उत्पादन

केले का असली तना तकनीकी रूप से कंदयुक्त प्रकंद होता है। परिपक्व प्रकंद लगभग 300 मिमी व्यास का होता है और इसमें बहुत ही छोटे इंटर्नोड्स होते हैं जो बाहरी रूप से बारीकी से पैक किए गए पत्तों के निशान से ढके होते हैं। पौधे की स्थिरता के लिए प्रकंद मिट्टी की सतह से पूरी तरह नीचे रहना चाहिए। अच्छी रोपण सामग्री की भारी मांग के मद्देनजर वर्तमान में बड़ी मात्रा में केला सकर का उत्पादन ध्यान आकर्षित कर रहा है। इसके अलावा, सफल संकरों में सकर का तेजी से गुणन कम अवधि में उनके त्वरित प्रवर्धन को सक्षम करेगा।

महत्वपूर्ण कीट और रोग :

कीट

1. तना बेधक–अधिकांश व्यावसायिक किस्मों पर बेधक द्वारा हमला किया जाता है। पौधे के रस का बाहर निकलना प्रारंभिक लक्षण है और लार्वा द्वारा बोर किए गए छिद्रों से काला द्रव्यमान निकलता है।
2. केला एफिड–विषाणु रोग के वेक्टर बंची टॉप के वाहक है।
3. फल और पत्ती के दागदार भृंग–भृंग नई पत्तियों और युवा फलों की त्वचा पर फीड करते हैं, बारिश के मौसम में इसकी घटना सबसे अधिक होती है।

बीमारी

1. **पनामा विल्ट :** पत्ती के ब्लेड का पीलापन, पत्तियां मुरझा जाती हैं और पेटीओल टूट कर लटक जाता है यह रोग फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरियम कवक के कारण होता है। केले का यह सबसे गंभीर और महत्वपूर्ण रोग है। रसथाली अति संवेदनशील किस्म है। जल भराव वाली मिट्टी में प्रकोप अत्यधिक होता है। कैवेंडिश प्रतिरोधी किस्में हैं। संक्रमित पौधों को

हटाकर 2 किलो/गड्ढे की दर से चूना लगाकर 6 महीने तक परती छोड़ देना चाहिए।

- ड्वार्फ कैवेंडिश, पूवन और नेंद्रन जैसी प्रतिरोधी किस्में उगाना।
- आद्र भूमि की खेती में धान के साथ फसल चक्रण।

2. **लीफ स्पॉट/सिगाटोका :** कवक रोग है, प्रारंभ में पत्तियों पर हल्के पीले रंग के धब्बे पाए जाते है तथा गंभीर अवस्था में भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं और बाद में मर जाते हैं, भूरे रंग के छल्ले से घिरे हल्के भूरे रंग में बदल जाते हैं। केला सिगाटोका के प्रति अतिसंवेदनशील हैं।

प्रबंधन

कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या कार्बेन्डाजिम 500 ग्राम/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

3. **बनाना बंची टॉप वायरस :** संक्रमित पौधे छोटे और संकरे पत्तों को एक साथ मुख्य तना के शीर्ष पर दिखाते हैं जिससे गुच्छा, बनता है इसलिए इस रोग को 'बंची टॉप' के नाम से जाना जाता है। पत्तियों के किनारे लहरदार हो जाते हैं केले की बौनी किस्में अतिसंवेदनशील होती हैं। पत्तियाँ ऊपर की ओर रोसेट की तरह एक साथ गुच्छित हो जाती हैं। पौधे अविकसित होते हैं और व्यावसायिक मूल्य के गुच्छे का उत्पादन नहीं करते हैं।

प्रबंधन :

- पूरे प्रकंद सहित सभी प्रभावित पौधों को हटा दें, विषाणु मुक्त पौधों का रोपण करें।
- केला एफिड का नियंत्रण–0.3% रोगर या फास्फोमिडोन का छिड़काव करें।
- मोनोक्रोटोफॉस–0.05% का छिड़काव करें।

❁❁❁❁

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार स्तंभों में से एक हैं। वह ऐसे साहित्यकारों में गिने जाते हैं, जिनका प्रकृति चित्रण समकालीन कवियों में सबसे बेहतरीन था। पंतजी ने महात्मा गाँधी और कार्ल मार्क्स से प्रभावित होकर उन पर रचनाएँ लिख डालीं। पद्मभूषण, ज्ञानपीठ पुरस्कार और साहित्य अकादमी पुरस्कारों से नवाजे जा चुके सुमित्रा नन्दन पंत की रचनाओं में समाज के यथार्थ के साथ–साथ प्रकृति और मनुष्य की सत्ता के बीच टकराव भी होता था।

आंवला (एम्ब्लिका ओफ्फिसिनालिस जी.) के पोषण एवं औषधीय गुण

सुमित कुमार सोनी[1], लक्ष्मी[2], यशी बाजपेई[3], अंजू बाजपेई[4] एवं देवेन्द्र पाण्डेय[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

मानव आहार में फलों का महत्व सर्वविदित है। पोषण विशेषज्ञ सामान्य मानव शरीर के लिए प्रति व्यक्ति प्रति दिन 60–85 ग्राम फल और 360 ग्राम सब्जी की सिफारिश करते हैं। फल न केवल स्वाद में मीठे होते हैं, बल्कि विटामिन और खनिजों के भी अच्छे स्रोत होते हैं, जिसके बिना मानव शरीर न उचित स्वास्थ्य बनाए रख सकता है और न ही रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर सकता है। फल रेशे से भरपूर होते हैं जो कि हमारे पाचन तंत्र के सुचारू संचालन के लिए आवश्यक हैं।

एम्ब्लिका ओफ्फिसिनालिस जी., जिसे आमतौर पर आंवला के नाम से जाना जाता है, यूफोरबियासी कुल से संबंधित होता है। आंवला भारत के उष्ण और उपोष्ण भागों में उगाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण फल है। यह पौष्टिक और औषधीय गुणों से भरपूर फल है। जिनमें कई कमी वाले रोगों से लड़ने की अद्वितीय क्षमता होती है। आंवला मुख्य रूप से विटामिन–सी की उच्च सांद्रता के लिए जाना जाता है। इसके 100 ग्राम ताजे फल में 470–680 मिलीग्राम विटामिन–सी होता है। आंवला महत्वपूर्ण एंटीऑक्सीडेंट और पॉलीफेनोल्स का भंडार है। इसमें प्रोटीन और अमीनो अम्ल जैसे एस्पार्टिक अम्ल, ग्लूटामिक अम्ल, प्रोलाइन, लाइसिन, ऐलेनिन और सिस्टीन की उच्च सांद्रता होती है। चूँकि आंवला का फल स्वाद में मीठा, कड़वा, कसैला और तीखा होता हैं इस कारण लोग आंवला के प्रसंस्कृत उत्पाद जैसे कि जैम, जेली, स्क्वैश, जूस, कैंडी, सुपारी, पाउडर, बिस्किट, चटनी, च्यवनप्राश, इंस्टेंट जूस और सूप मिक्स, लड्डू, माउथ फ्रेशनर, अमृत, तेल, अचार, संरक्षित, सॉस, कटा हुआ, स्वीट आंवला फ्लेक्स, सिरप, टॉफी, त्रिफला आदि का उपयोग करना ज्यादा पसंद करते है।

इस लोकप्रिय लेख का मुख्य उद्देश्य लोगो को आंवला फल के पोषण और औषधीय गुणों के बारे में जागरूक करना एवं अभिनव किसानों को आंवला की खेती के तहत अधिक क्षेत्र के साथ आने के लिए प्रोत्साहित करना है जोकि आंवला प्रसंस्करण संयंत्रों की स्थापना एवं इसके मूल्यवर्धित उत्पादों के लिए उद्यमियों को प्रोत्साहित करेगा।

[1]तकनीकी सहायक, [2,3]शोध कर्मी, [4]प्रधान वैज्ञानिक [5]पूर्व निदेशक

आंवला का आयुर्वेदिक विवरण

आयुर्वेदिक साहित्य के अनुसार आंवला फल में निम्नलिखित गुण होते हैं–

- दोष (हास्य पर प्रभाव)–तीनों दोषों को शांत करता है–वात, कफ, पित्त, और पित्त के लिए विशेष रूप से प्रभावी है
- गुना (गुण)–हल्का, सूखा
- रस (स्वाद)–खट्टे और कसैले सबसे प्रमुख हैं, लेकिन फल स्वाद में मीठा, कड़वा, कसैला और तीखा होता हैं
- विपाक (पाचन के माध्यम से विकसित स्वाद)–मीठा

आंवला के चिकित्सीय लाभ

चूँकि आंवला विटामिन–सी एवं पॉलीफेनोल्स का भंडार है। इसलिए यह एक महत्वपूर्ण एंटीऑक्सीडेंट स्रोत के रूप में विख्यात हैं। आंवला में जीवाणुरोधी एवं विषाणुरोधी गुण भी होते हैं। आंवला के चिकित्सीय गुण एवं लाभ निम्नलिखित हैं।

मधुमेह

मधुमेह के उपचार में आंवला की पत्तियों और बीजों के काढ़े का उपयोग किया जाता है। आंवला के फलों में मौजूद क्रोमियम खनिज मधुमेह विरोधी प्रभाव के लिए जिम्मेदार होता है। आंवला के चूर्ण के उपयोग से यकृत में मौजूद एंजाइम एलानिन ट्रांसएमिनेस की क्रिया को सामान्य करके रक्त शर्करा के स्तर को सामान्य किया जा सकता है। मधुमेह रोगी ज्यादा प्रभावी परिणाम के लिए

आंवला के चूर्ण को जामुन और करेले के पाउडर के साथ बराबर मात्रा में उपयोग कर सकते हैं।

कब्ज

आंवला का त्रिफला चूर्ण *(एम्ब्लिका ओफ्फिसिनालिस जी., टर्मिनलिया बेलिरिका एवं टी चेबुला* का मिश्रण) कब्ज में राहत के लिए उपयोग किया जाता है।

दस्त

आंवले के पत्तों को शहद में मिलाकर लेप करने से अतिसार में लाभ होता है। पुराने दस्त के लिए, मेथी के बीज के साथ पत्तियों का आसव दिया जाता है।

फोड़े और धब्बे

फल का पेरिकार्प अक्सर अन्य अवयवों के साथ काढ़े में प्रयोग किया जाता है और दमन को बढ़ावा देने के लिए गाय के घी के साथ फोड़े पर बाहरी रूप से भी लगाया जाता है।

सूजाक

आंवले के छाल का रस शहद और हल्दी के साथ मिलाकर लगाने से सूजाक में लाभ होता है।

मतली और सिरदर्द

आंवला चूर्ण, लाल चंदन *(पेरोकार्पस सेंटालिनम)* और शहद मिलाकर माथे पर लगाने से जी मिचलाना और उल्टी ठीक हो जाती है।

दांतों की समस्या

आंवले के पत्तियों के रस को दांत दर्द से राहत के रूप में प्रयोग किया जाता है।

बुखार

बुखार में आंवले के बीज, चित्रक जड़ (*प्लम्बेगो ज़ेलेनिका* या लेडवॉर्ट), चेबुलिक हरड़ एवं पीपल (*पाइपर लोंगम*) का काढ़ा दिया जाता है। बुखार में आंवले के बीज, चित्रक की जड़, चेबुलिक हरड़, पीपल और सैंधव (सेंधा नमक) के बराबर अनुपात से बना एक मिश्रित पाउडर भी उपयोग किया जा सकता है।

बालों की बढ़वार

वर्षों पहले से आंवला को विभिन्न शैंपू और बालों के तेल का प्रमुख घटक माना जाता रहा है। आंवला बालों के रोम को उत्तेजित करता है और बालों की जड़ को पूर्ण पोषण प्रदान करता है। रोजाना 2–3 आंवला फलों के साथ हरी सब्जियों का सेवन करने से बालों का सफेद होना कम होता है। फलों को टुकड़ों में काटा जाता है, सुखाया जाता है, अधिमानतः छाया में और फिर नारियल के तेल में उबाला जाता है, जिसके परिणामस्वरूप बने तेल को बालों को सफेद होने से रोकने के लिए प्रयोग में किया जाता है।

श्वांस-प्रणाली की समस्यायें

आंवले का ताजा रस शहद में मिलाकर हिचकी और सांस की तकलीफ के दौरान दिया जाता है। आंवले के 10 ग्राम पत्ते, *टर्मिनलिया चेबुला* के 5 फल, *पाइपर नाइग्रम* के 9 बीज, एक लहसुन और एक लौंग को अच्छी तरह से कुचलकर 25 मिलीलीटर शुद्ध देशी घी में मिलाया जाता है। ओलिगोपनिया (उथली या कम सांस) से राहत पाने के लिए इस पेस्ट का सात दिनों के लिए प्रतिदिन एक बार प्रयोग किया जाता है।

नाक से खून आना

आंवले के बीज को घी में तला जाता है और कांजी (उबले चावल से तरल) में पीस लिया जाता है। नाक से खून बहने से रोकने के लिए इस पेस्ट को माथे पर लगाया जाता है।

मूत्र संबंधी समस्या

सूखे आंवले के 20 ग्राम गूदे को 160 ग्राम पानी में मिलाकर 40 ग्राम तक पेस्ट बना लें। इसमें 20 ग्राम गुड़ मिलाया जाता है। इसके नियमित सेवन से पेशाब की समस्या दूर हो जाती है।

मुँह के छाले

आंवले के जड़ की छाल को शहद के साथ मिलाकर मुंह की छालों की सूजन पर लगाने से लाभ मिलता है। पत्तियों के काढ़े का उपयोग रासायनिक मुक्त जीवाणुनाशक माउथवॉश के रूप में किया जाता है।

खट्टी डकार

यह ज्ञात है कि आंवले की ताजी हरी पत्तियों को कुचलकर और भोजन से पहले दही में मिलाकर खाने से पाचन सही रहता है। फल वातकारक और पेटवर्धक होता है।

नेत्र रोग

आंवले के फलों पर बने चीरों से एकत्र किए गए एक्सयूडेट को आंख की सूजन पर बाहरी रूप से लगाया जाता है। सूखे मेवे को एक साफ नए मिट्टी के बर्तन में डुबो कर काढ़ा तैयार किया जाता है जिसका उपयोग नेत्र रोग में कोलिरियम (चश्मे के रूप में इस्तेमाल किया जाने वाला चिकित्सा लोशन) के रूप में किया जाता है। इसे ठंडा या गर्म लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष

इन दिनों वैकल्पिक चिकित्सा शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया है जो औषधीय प्रयोजनों के लिए पौधों का उपयोग करने के विचार पर केंद्रित है। आंवला सदियों से अपने पोषण और औषधीय गुणों के लिए जाना जाता रहा है, यह स्वदेशी औषधीय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस लोकप्रिय लेख में, हमने आंवला के पारंपरिक और वैज्ञानिक रूप से सिद्ध उपयोगों को समाहित करने का प्रयास किया है। आंवला फल न केवल उपभोक्ताओं को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है बल्कि इसकी व्यापक स्वीकृति मूल्य वर्धित उत्पादों के रूप में वाणिज्यिक प्रसंस्करण उद्योग स्थापित करने के लिए द्वार खोलती है। यह उच्च खराब होने के कारण कमोडिटी के नुकसान के जोखिम को कम करेगा जो बदले में हमारे किसानों को आंवला की खेती के तहत अधिक क्षेत्र लाने के लिए प्रोत्साहित करेगा। इसलिए, आणविक स्तर पर आंवला के औषधीय पहलुओं का वैज्ञानिक रूप से पता लगाने का समय आ गया है ताकि औषधीय गुणों से युक्त फल का उपयोग रोग मुक्त और स्वस्थ जीवन जीने के लिए किया जा सके।

❁❁❁❁

प्रेमचंद

हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार प्रेमचंद ने साहित्य–लेखन द्वारा देशसेवा करने का संकल्प किया। उनका वास्तविक नाम धनपत राय था। पहले वे नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखते थे। बाद में हिंदी में प्रेमचंद के नाम से लिखने लगे। मुंशी प्रेमचंद ने 350 कहानियाँ और 11 उपन्यास लिखे। उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' नाम से आठ भागों में संकलित हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं–सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्मभूमि और गोदान। 'कर्बला' और 'प्रेम की वेदी' नामक उनके दो नाटक भी हैं। उनके द्वारा लिखित निबंध 'कुछ विचार' और 'विविध प्रसंग' नामक संकलनों में संकलित हैं।

बेल के पोषण एवं औषधीय गुण

सुमित कुमार सोनी[1], लक्ष्मी[2], यशी बाजपेई[3], अंजू बाजपेई[4] एवं देवेन्द्र पाण्डेय[5]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

1. प्रस्तावना

उपोष्ण फल *एगल मार्मेलोस* को आमतौर पर भारत में बेल के रूप में जाना जाता है। यह उत्तरी भारत का मूल फल है और रूटासी कुल से संबंध रखता है। उत्तरी भारत के अलावा इसे भारत के अन्य हिस्सों के साथ–साथ थाईलैंड, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका और बर्मा में व्यापक रूप से उगाया जाता है। अलग–अलग भाषाओं में बेल को अलग–अलग नाम दिया गया है, जैसे कि संस्कृत में शिवाफला, उड़िया में बेलो, असमिया एवं मराठी में बेल, तमिल में विल्वा मरुम, थाई में मातूम, स्पेनिश में बेला इत्यादि। इसे शिव वृक्ष के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि यह एक पवित्र वृक्ष है जिसके पत्ते एवं फल का उपयोग हिंदुओं द्वारा भगवान शिव से प्रार्थना करने के लिए किया जाता है। भारत में प्राचीन काल से ही विभिन्न प्रकार के पौधों को चिकित्सीय अनुप्रयोग के लिए किया जाता रहा हैं और बेल उनमें से एक है। बेल पर विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि यह विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों (अमीनो अम्ल, वसीय अम्ल, कार्बनिक अम्ल, खनिज, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, रेशा इत्यादि) एवं पादप–रसायनों (फेनोलिक अम्ल, फ्लेवोनोइड्स, एल्कलॉइड, टैनिन, कौमारिन इत्यादि) से भरपूर होता हैं। जिसके कारण इस पेड़ के प्रत्येक भाग जैसे जड़, छाल, पत्ती, फूल एवं फल का उपयोग चिकित्सीय एवं अन्य क्षेत्रों में किया जाता है।

बेल के इन लाभकारी गुणों का उपयोग पूरे वर्ष नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह एक मौसमी फल है और ज्यादातर मई और जून के दौरान उपलब्ध होता है इसलिए शेष वर्ष के दौरान उपलब्ध नहीं हो सकता है। इसलिए ये समस्याएं फल से अलग–अलग उत्पाद बनाने की प्रेरणा देती हैं। इसके जूस से अलग–अलग पेय पदार्थ बनाए जा सकते हैं। निर्जलित बेल उत्पादों में जैम, स्लैब, बेल पाउडर शामिल हैं। इससे वाइन और चाय भी बनाई जा सकती है। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से बेल से विभिन्न उत्पाद बनाना अत्यंत लाभदायक है।

इस लोकप्रिय लेख का उद्देश्य बेल के वानस्पतिक विवरण, पारंपरिक उपयोग, पोषण गुण, पादप–रसायन एवं उनके औषधीय उपयोग तथा बेल के बने उत्पादों का संक्षिप्त विवरण करना है।

2. वानस्पतिक विवरण

यह धीमी गति से बढ़ने वाला बहुवर्षीय वृक्ष है इसकी मध्यम ऊंचाई लगभग 762 सेमी होती है। बेल के पेड़ में काँटेदार शाखाएँ देखी जाती है। पत्तियाँ आम तौर पर त्रिकोणीय होती हैं, इसमें 3–5 संख्या के पत्रक होते हैं, जिनकी लंबाई 4–10 सेमी एवं चौड़ाई 2–5 सेमी होती हैं। पत्तियों का रंग अपेक्षाकृत हल्का हरा होता हैं परन्तु परिपक्व होने पर यह गहरे हरे रंग का हो जाता है। इसके पेड़ की छाल मोटी एवं परतदार होती है। शाखाएँ अक्सर काँटेदार होती हैं। बेल का फूल हरे–सफेद रंग का होता है। यह उभयलिंगी, इब्रैक्टेट, हाइपोगिनस, एक्टिनोमोर्फिक एवं मीठी गंधयुक्त होता हैं। लीफ एक्सिल में कुछ पर्षिव्य पेनिकल्स होते हैं जिनमें दस फूल होते हैं। बेल के फल गोलाकार एवं पीले–हरे रंग होता है, जिसका व्यास 5.3–7.2 सेमी होता है। फल का गूदा पीले रंग का और श्लेष्मायुक्त होता है, जिसमें कई बीज भी होते हैं।

3. पारंपरिक चिकित्सीय उपयोग

आयुर्वेद और पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में बेल का व्यापक उपयोग पाया गया है। बेल के प्रत्येक भाग में विभिन्न रोगों को ठीक करने की क्षमता पाई जाती है।

3.1 पत्ती

पीलिया, दमा के उपचार में यह बहुत उपयोगी पाया गया है। ब्रोन्कियल ट्यूबों से श्लेष्म स्राव को दूर करने में बेल के पत्ते एक अच्छी सहायता प्रदान करते हैं। नेत्रश्लेष्मलाशोथ, कब्ज, बहरापन एवं प्रदर के इलाज

[1]तकनीकी सहायक, [2,3]शोधकर्मी, [4]प्रधान वैज्ञानिक एवं [5]पूर्व निदेशक

में भी प्रयोग किया जाता है। बाउल सिंड्रोम का इलाज बेल के पत्तों के पाउडर से किया जा सकता है। इसका उपयोग बेरी–बेरी के उपचार में एक उपचारात्मक उपाय के रूप में किया जाता है। बेल के पत्ते के सगंध तेल में विभिन्न चिकित्सीय गुणों को देखा गया है।

3.2 फल

इसके फलों एवं अर्क का प्रयोग थायराइड, रक्त शर्करा के स्तर को कम करने, आंतों के अल्सर, पुरानी कब्ज एवं अपच संबंधी विकारों, बवासीर और मलाशय की सूजन के इलाज, मिर्गी इत्यादि में किया जाता हैं। गर्भावस्था के दौरान होने वाली उल्टी की स्थिति में इसे चावल के पानी के साथ लेने पर बहुत मददगार माना गया है। फोड़ा ठीक करने में कच्चे फल के गूदे का चूर्ण बहुत फायदेमंद होता है। फलों के अर्क को गर्म पानी और सौंफ के साथ मिलाकर पीने से अर्क पेचिश में फायदेमंद होता है। दूध में फलों का गूदा चीनी के साथ मिलाकर प्रयोग करने से मूत्रजननांगी विकारों में उपयोगी है। फल और सरसों के तेल का चूर्ण 1:2 के अनुपात में प्रयोग जलने के उपचार में लाभदायक पाया गया हैं। बेल के शर्बत का सेवन करने से लंबे दिनों तक जमा हुआ मल साफ हो जाता है।

3.3 फूल

बेल के फूल में एंटीसेप्टिक गुण होते हैं, जिसका प्रयोग घाव भरने में किया जाता हैं। इसके फूल का उपयोग मिर्गी में भी किया जाता है। आसवन के बाद अलग किया गया मुरब्बा पानी नेत्रश्लेष्मलाशोथ के उपचार में मददगार पाया गया है।

3.4 जड़ एवं छाल

जड़ और छाल का काढ़ा उदासी, दिल की धड़कन और रुक–रुक कर होने वाले बुखार में उपयोगी है। एक लोकप्रिय आयुर्वेदिक दवा में दशमूला बेल के पेड़ की जड़ को प्रयोग किया जाता है। बेल की जड़ का अर्क प्याज, हल्दी के साथ बराबर मात्रा में मिलाकर कान से स्राव में उपयोगी होता है। इसका उपयोग च्यवनप्राश की एक सामग्री के रूप में किया जाता है। जड़ की छाल का उपयोग मछली के जहर और बुखार के उपचार के रूप में किया जा सकता है, जबकि छाल का काढ़ा, शहद के साथ पत्ती का अर्क और बेल के अर्क का उपयोग बुखार, ज्वरनाशक के साथ–साथ रुक–रुक कर होने वाले बुखार में किया जाता है।

4. पोषाहार संघटन

बेल की पोषण संरचना पर विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि फल विभिन्न पोषक तत्वों से भरपूर होता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए बेहद फायदेमंद होता है। कथित तौर पर फल में कार्बोहाइड्रेट, विभिन्न विटामिन (विटामिन ए, विटामिन बी समूह एवं विटामिन सी), खनिज (लोहा, कैल्शियम, पोटेशियम, फास्फोरस और उनके लवण), विभिन्न वसीय अम्ल एवं अमीनो अम्ल होते हैं। यह रेशा, ग्लूकोज एवं शर्करा से समृद्ध होता है। इसमें नमी (61.0%), खनिज (1.9%), फास्फोरस (52 मिलीग्राम), पोटेशियम (610 मिलीग्राम), कैल्शियम (80 मिलीग्राम), फाइबर (2.9%), प्रोटीन (1.6:) और कैरोटीन (55 मिलीग्राम) होता है। बेल के बीज में वसा की मात्रा (14.94%) अधिक होती है। फलों के गूदे और पत्तियों में वसा की मात्रा क्रमशः 0.28% और 0.07% बहुत कम होती है। बेल की पोषण संरचना तालिका 1 में प्रदर्शित की गई है।

तालिका 1. बेल (एगल मार्मेलोस) की पोषण संरचना।

क्र.स.	अवयव	अनुमानित मात्रा
1.	ऊर्जा (किलो केलौरी)	129–138
2.	खनिज	
2.1	पोटेशियम (मिलीग्राम)	585–610
2.2	फास्फोरस (मिलीग्राम)	50–52
2.3	आयरन (मिलीग्राम)	0.3–0.8
2.4	कैल्शियम (मिलीग्राम)	78–90
3.	विटामिन	
3.1	विटामिन ए (माइक्रोग्राम)	55–186
3.2	विटामिन बी1(मिलीग्राम)	9–13
3.3	विटामिन बी3 (मिलीग्राम)	0.89–1.1
3.4	विटामिन बी2(मिलीग्राम)	1000–1200
3.5	विटामिन सी (मिलीग्राम)	8–10
4.	प्रोटीन (%)	1.6–3.64
5.	कार्बोहाइड्रेट (%)	30–35
6.	वसा	0.2–0.43
7.	नमी (%)	61–64.2

5. बेल में पादप–रसायन

बेल में अच्छी संख्या में पादप–रसायन होते हैं। बेल फलों का गूदा, फलों का रस कई स्वास्थ्य वर्धक पॉलीफेनोल्स से भरपूर बताया गया है। बेल के गूदे में एल्कलॉइड, फ्लेवोनोइड्स, फेनोलिक यौगिक, टेरपेनोइड्स पाए जाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण पॉलीफेनोल्स एवं फ्लेवोनोइड्स में एल्कलॉइड, क्यूमरिन, पॉलीसेकेराइड और कैरोटेनॉइड शामिल हैं। बेल में मौजूद पॉलीफेनोल्स बेल की परिपक्वता अवस्था पर निर्भर करता है। बेल फलों के रस में फेनोलिक यौगिकों में कैफिक अम्ल, अर्बुटिन, कोलोरोजेनिक अम्ल, पी–कौमरिक अम्ल, पी–कौमारॉयल, क्विनिक अम्ल और प्रोटोकैटेच्यूइक अम्ल शामिल हैं। बेल फल से टेरपेनोइड्स, फ्लेवोनोइड्स, सैपोनिन्स, टैनिन्स, ग्लाइकोसाइड्स को अलग किया गया है। बेल की पत्तियों में रिपोर्ट किए गए यौगिकों में सिटोस्टेरॉल, रुटिन, बीटा–सिटोस्टेरॉल, ग्लाइकोसाइड्स, मार्मेलिन, एगेलिन, मार्मेसिनिन, हैलोर्डिओल, फिनाइल एथिल सिनामाइड्स एवं लुपियाल शामिल हैं। बेल के पेड़ की छाल से लिग्नान ग्लूकोसाइड यौगिकों जैसे कि 7, 8– डाइमेथॉक्सी–1–हाइड्रॉक्सिल–2–मिथाइल एन्थ्राक्विनोन और 6–हाइड्रॉक सी–1–मेथॉक्सी–3–मिथाइल एन्थ्राक्विनोन, स्किमियारेपिन ए, स्किमियारेपिन सी को पृथक किया गया है। बेल के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले विभिन्न पादप–रसायन का विवरण तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 2. बेल के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले पादप-रसायन, उनकी उपलब्धता, पता लगाने की विधि और गतिविधियाँ।

क्र. स.	पादप-रसायन का नाम	बेल के भाग में पादप-रसायन की उपस्थिति	उदाहरण	गतिविधियां
1.	अल्कलॉइड	फल एवं पत्तियां	एजेलिनोसाइड्स ए, मार्मेलिन, हाफॉर्डिनो, एगेलिन, डिक्टामाइन, एजेलेनिन, फ्रैग्रिन, ओ–मिथाइलहेलफोर्डिनिन, एथिल सिनामाइड, एजेलिनोसाइड्स बी, ओ –3, 3– (डी–मिथाइललली) हाफॉर्डिनॉल, एन–4–, ओ–आइसोपेंटेनिल हाफॉर्डिनॉल, एथिल सिनामेट, एन–2–एथोक्सी–2–एथिल–सिनामिड, मेथोक्सीस्टीरिल सिनामाइड एन–2–मेथॉक्सी –2– (4–(3´, 3´–डाइमिथाइललीलोक्सी) फिनाइल, एथिल सिनामेट, और एन–2–एथोक्सी –2– (4–मेथॉक्सी फिनाइल) एथिल सिनामाइड, एन–2–हाइड्रॉक्सी–2– (4–हाइड्रॉक्सीफेनिल) एथिल सिनामाइड, मार्मेलोसिन, मार्मेसिन, मार्मिन एवं रुटासीन	अल्फा–ग्लूकोसिडेज़ अवरोधक, सूजनरोधी, पीड़ानाशक,
2.	कौमारिन्स	फल, बीज, पत्ते, छाल एवं जड़	ज़ैंथोटॉक्सोल, मर्मेलोसिन, मार्मेनोल (7–गेरानिलोक्सीकौमरिन (7–2, 6–डायहाइड्रॉक्सी–7–मेथॉक्सी–7–मिथाइल–3–ऑक्टेनाइलॉक्सी) कौमारिन, मार्मिन, तेर, इम्प्रोम, सोरालेन, एलोइम्पेरेटरिन, 6´, 7´–एपॉक्सीयूराप्टीन, इम्पेयकिन, अम्बेलिफ़ेरोन, मार्मेलाइड, स्कोपोलेंटिन,(7–(2,6–डायहाइड्रोक्सी –7–मेथॉक्सी–7–मिथाइल–3–ऑक्टेनाइलॉक्सी) कौमारिन,	सूजनरोधी, पीड़ानाशक, मधुमेहरोधी प्रति–अक्सीकारक
3.	टेरपेनोइड्स	फल, पत्ती एवं छाल	पी–साइमीन, α–फेलैंड्रीन, β मायसीन, α–पिनीन, β–ओसीमीन, δ–कैरेन, लिनालूल, आइसोसिल्वेस्ट्रोन, टेरपेनोलिन, 3–आइसोथुजेनॉल, γ–टेरपीन, α–क्यूबेबीन, 4–टेरपीनॉल, γ–एलेमेन, γ–मुरोलीन, α–ह्यूमुलीन, γ–करक्यूमिन, β–बिसोबोलीन, β–बिसाबोलोल, β–सेलुलर, γ–कैडिनिन, हेक्सैनिलबुटानोएट, हेक्सानॉल, हेक्सानिलहेक्सानोएट, मिथाइल पेरीलेट, α–सेड्रिन, सिनेओल, α–कार्डिनॉल, α–कोपेन, सिस–लिमोनेन ऑक्साइड, सिस–लिनलूल ऑक्साइड,	मलेरिया रोधी, कैंसर रोधी

4.	फेनोलिक अम्ल	फल	क्लोरोजेनिक अम्ल, रूटारेटिन, गैलिक अम्ल, एग्लिक अम्ल, फेरुलिक अम्ल, प्रोकेच्यूइक अम्ल, सिरिंजिक अम्ल, जेंटिसिक अम्ल, कैफिक अम्ल, वैनिलिक अम्ल, पी–कौमरिक अम्ल	प्रति–अक्सीकारक
5.	फ्लेवोनोइड्स	फल	क्वेरसेटिन, रुटिन, कैटेचिन, फ्लेवन–3–ओल, फ्लेवोनोइड ग्लाइकोसाइड्स	प्रति–अक्सीकारक, उच्च रक्तचाप को कम करने, सीरम वसा–स्तर को कम करने, इंसुलिन संवेदनशीलता में सुधार हेतु
6.	कैरोटीनॉयड		α–कैरोटीनॉयड	
7.	टैनिन	फल	4, 7, 8–ट्राइमेथॉक्सीफ्यूरो–क्विनोलिन, स्किमिनियनिन	
8.	अमीनो अम्ल	कच्चा फल	फिनाइल ऐलेनिन, टायरोसिन, और ल्यूसीन, मेथियोनीन और आइसोल्यूसीन, एस्पार्टिक अम्ल, आर्जिनिन, ऐलेनिन	
9.	कार्बनिक अम्ल		ऑक्सालिक अम्ल, मैलिक अम्ल, टार्टरिक अम्ल	जीवाणुरोधी
10.	वसीय अम्ल	फल	लिनोलिक, पामिटिक, स्टीयरिक, लिनोलेनिक अम्ल, ओलिक अम्ल, लिनोलिक अम्ल, ओलिक अम्ल, रिकिनोलेइक अम्ल, स्टीयरिक और लिनोलेनिक अम्ल, टेट्राडेकोनिक अम्ल या मिरिस्टिक अम्ल, पेंटाडेकेनोइक अम्ल, स्टीयरिक अम्ल, पामिटोलिक अम्ल,	जीवाणुरोधी

6. बेल उत्पाद

बेल के पेड़ के विभिन्न भागों से विभिन्न बेल उत्पाद विकसित किए गए हैं। चूंकि बेल अत्यधिक पोषक तत्वों से समृद्ध है, लेकिन मौसमी फल होने के कारण पोषक तत्वों का उपयोग पूरे वर्ष उपलब्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि उन मूल्यवान पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने के लिए कई बेल उत्पादों को बनाने की अत्यधिक आवश्यकता होती है। शोधकर्ताओं द्वारा विकसित विभिन्न बेल उत्पादों जैसे कि बेल रस, अन्य फल के रस के साथ मिश्रित आरटीएस पेय, मट्ठा प्रोटीन और पेक्टिन के साथ फोर्टिफाइड पेय, जैम, वाइन, कैंडी, टॉफ़ी, बेल स्लैब, बेल पाउडर, बेल पंजीरी, बेल और एलोवेरा पेय, बेल चाय, किण्वित रस आदि उत्पादों को मानव उपयोग हेतु बनाया गया हैं।

7. बेल के अन्य उपयोग

कच्चे बीज में गोंद होता है जिसे आभूषण के लिए चिपकने के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, चूने के प्लास्टर या सीमेंट को वाटरप्रूफिंग या प्लास्टरिंग दीवारों के लिए मिश्रित किया जा सकता है। टेक्सटाइल प्रिंट के लिए, रेशमी कपड़ों की रंगाई के लिए टैनिन से प्राप्त पीली डाई का उपयोग किया जा सकता है। सीलोन के डचों द्वारा मर्मेल तेल का उपयोग किया गया है। मैल को बनने से रोकने और गाड़ियाँ तैयार करने में बेल का उपयोग किया जा सकता है। इससे औजार और चाकू के हैंडल, छोटे पैमाने की टर्नरी, मूसल और कंघे तैयार किए जाते हैं। भूरे रंग के प्लैथॉपर के खिलाफ कीटनाशक गतिविधि पाई जाती है। बेल फल के खोल से सक्रिय कार्बन क्रोमियम (VI) को जलीय प्रणाली से निकालने के लिए एक अधिशोषक के रूप में कार्य कर सकता है । बेल के उपयोग से समाप्त बैटरी से अन्य धातुओं के साथ मौजूद होने पर लेड (II) को हटाया जा सकता है।

8. निष्कर्ष

बेल द्वारा अत्यधिक आशाजनक चिकित्सीय गतिविधियों का अधिग्रहण किया गया है और इस प्रकार विस्तृत जांच के योग्य है। फलों के पादप–रसायन विशेष रूप से अल्कलॉइड, कौमारिन, आवश्यक तेल, फिनोल, फ्लेवोनोइड, एवं विभिन्न रोगों के लिए एक प्राकृतिक जादुई उपचार के रूप में उनकी असाधारण शक्ति पर प्रकाश डाला गया है। ताजे रस के सेवन के अलावा वैकल्पिक उत्पादों को तैयार करके फलों के भंडारण पर ध्यान देना चाहिए और उनका निर्यात करना चाहिए। यद्यपि पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली ने प्राचीन काल से बेल का अत्यधिक प्रयोग किया

है, लेकिन यह उपयुक्त समय है कि फल में बायोएक्टिव यौगिकों की क्रिया के तरीके के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जाए और इसे दुनिया भर में लोकप्रिय बनाया जाए।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा के साथ हिन्दी साहित्य में छायावाद के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। उन्होंने कई कहानियाँ, उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं किन्तु उनकी ख्याति विशेषरुप से कविता के कारण ही है। 'निराला' की अत्यधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचना 'जुही की कली' है।

टमाटर की जैविक खेती

अवधेश कुमार[1], रवीन्द्र कुमार[2], राजीव कुमार[3], प्रज्ञा ओझा[4], भगवान दीन[5] एवं विशम्भर दयाल[6]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

टमाटर का फल विभिन्न प्रकार से उपयोग होने के कारण यह बहुत ही लोकप्रिय सब्जी माना जाता है। इसका उपयोग अनेक प्रकार से जैसे पकाकर सब्जी के रूप में, ताजी अवस्था में काटकर सलाद के रूप में और परिरक्षित करके चटनी, जूस, अचार, सास, केचप, प्यूरी आदि रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसके फल में लाइकोपीन नामक वर्णक पाया जाता है। जो कि एंटीऑक्सीडेंट के रूप में कार्य करता है और टमाटर के पकने पर लाइकोपीन वर्णक की मात्रा लगभग 4 गुना बढ़ जाती है टमाटर की जैविक खेती करने से लागत में कमी आने के साथ–साथ उच्च गुणवत्ता के फल प्राप्त होते हैं जिनको बाजार में अच्छे भाव में बेचा जा सकता है टमाटर की जैविक खेती से लक्षित उत्पादन प्राप्त करते हुए प्रकृति की संपदा, मृदा जीवाश्म, जल एवं वायुमंडल के जीवन में सामन्जस्य स्थापित किया जा सकता है।

जलवायु :

टमाटर उपोष्णीय फसल है। वैसे टमाटर को गर्मियों और सर्दियों में दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है परन्तु इसके पौधे अधिक पाले से शीघ्र नष्ट हो जाते है। यद्यपि टमाटर के बीज के अंकुरित के लिए 21–24 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है पौधों की उचित वृद्धि के लिए 34–39 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। टमाटर के फल में लाइकोपीन की मात्रा 20–25 डिग्री सेल्सियस के बीच सर्वाधिक होती है एवं 27 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर लाइकोपिन का निर्माण तत्वात्मक कम हो जाता है। टमाटर में सुखा सहने की क्षमता भी होती है। अधिक वाष्पीकरण होने के कारण बहुत गर्म और शुष्क मौसम में टमाटर के कच्चे फल गिरने लगते है तापक्रम और प्रकाश की तीव्रता का टमाटर के फलों के लाल रंग और खट्टेपन पर काफी प्रभाव पड़ता है यही कारण है कि सर्दियों में फल मीठे और गहरे लाल रंग के होते है जबकि गर्मियों में कुछ कम लाल और खट्टेपन लिए होते है।

भूमि एवं उसकी तैयारी

टमाटर की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जाती है किन्तु उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट भूमि इसकी खेती के लिए अच्छी रहती है। अगेती फसल के लिए हल्की भूमि अच्छी रहती है जबकि अधिक उपज लेने के लिए चिकनी दोमट और दोमट मिट्टी अच्छी उपयुक्त होती है इसकी खेती के लिए मृदा पी.एच. मान 6.7 से 7.5 अधिक उपयुक्त होता है। रोपण के लिए 3 से 4 जुताईया करके खेत तैयार कर लें। अन्तिम जुताई के बाद पाटा अवश्य चला दे जिससे खेत की मिट्टी भुरभुरी एवं समतल हो जाय।

प्रजाति एवं किस्में

टमाटर लाइकोपार्सिकन वंश से सम्बन्धित प्रजाति का पौधा है। जैविक खेती से इस प्रजाति में लगने वाले फल अधिक चमकदार एवं उच्चगुणवत्ता वाले होते हैं। जिनको बाजार में अधिक मूल्य पर बेचकर अधिकतम आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अधिकांशतया टमाटर को ग्रहवाटिकाओं में ही उगाया जाता है। वृद्धि करने की प्रकृति के अनुसार टमाटर की किस्मों को प्रमुख दो वर्गों में विभक्त किया गया है।

भारतीय किस्में

भारत के भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान नई दिल्ली, क्षेत्रीय कृषि अनुसन्धान संस्थान ग्वालियर, भारतीय बागवानी अनुसन्धान संस्थान बंगलौर एवं अन्य विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय द्वारा टमाटर की अनेक उन्नत किस्मों का विकास किया गया है प्रमुख किस्मों के चारित्रिक गुणों का उल्लेख नीचे किया गया है।

[1]प्राविधिक सहायक, [2]सहायक प्राध्यापक, [3]विषय वस्तु विशेषज्ञ, [4]प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, [5]वैज्ञानिक

1. एच.एस. 101

यह किस्म चौधरी चरण सिंह, कृषि वि.वि., हिसार, हरियाणा द्वारा विकसित की गई है। इसके फल पूसा रूबी प्रजाति की अपेक्षा 10–15 दिन पहले पकने शुरू कर देते है फलों का गूदा कुछ मोटा होता है तथा फल पक कर पहले तैयार हो जाते हैं जिससे बाजार में अधिक मूल्य मिलता है, इसकी उपज 250–300 कुन्टल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त हो जाती है।

2. एच.एस. 102

यह किस्म भी चौधरी चरण सिंह, कृषि वि.वि., हिसार, हरियाणा द्वारा विकसित की गई है। इस किस्म के पौधे बौने रह जाते है एवं फल चपटे गोल मध्यम आकार वाले और हल्के धारीदार होते है। रोपाई के 85–90 दिनों बाद फल पकने शुरू हो जाते है। फलों का छिलका मोटा और लाल होता है। 250–275 क्विंटल तक उपज दे देती है। इसके गूदे मोटे होते है इसलिए इसकी भण्डारण क्षमता अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक होती है।

3. एच.एस. 110

यह किस्म भी चौधरी चरण सिंह, कृषि वि.वि., हिसार, हरियाणा द्वारा विकसित की गई है। शरद एवं इस किस्म को बसंत ऋतु दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है। यह एक पछेती किस्म है। इसके फल अन्य किस्मों की अपेक्षा तीन गुने भारी होते है जिसके कारण इसकी अधिक पैदावार मिलती है इसके फलों का गूदा गहरे लाल रंग का होता है। इस किस्म के फल खाने में अधिक मीठे होते है तथा पौधों में रोग व कीड़े–मकोड़े कम लगते है। इस किस्म का फल देर से पककर तैयार होता है जिससे बाजार मूल्य अधिक मिलता है, क्योंकि उस समय पर बाजार में अन्य टमाटर को प्रजातियों के फल अनुपलब्ध हो जाते है।

4. सेलेक्शन 12

इस किस्म का विकास पंजाब कृषि वि.वि., लुधियाना द्वारा किया गया है। इसके फल गोल सुडौल रस दार, मध्यम आकार के, हल्के और पतले छिलके वाले होते है इस किस्म को प्रति हेक्टेयर 250–275 क्विंटल तक उपज मिल जाती है। खेती में सामान्यतः जैविक उर्वरक एवं अन्य जैविक उत्पाद का प्रयोग करने से फलों की उच्चगुणवत्ता होती है जिससे बाजार में दुगने मूल्य पर इसकी विक्री की जाती है।

5. कल्याणपुर नं. 1

इस किस्म का विकास चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि. कानपुर द्वारा किया गया है। यह मध्यकालीन किस्म है इसके टमाटर गहरे लाल रंग के एवं गोल होते है, जिनका प्रसंस्करण द्वारा उत्पाद तैयार करके बाजार में बेचने से अधिक मूल्य मिलता है।

6. अंगूर लता

इस किस्म का विकास भी चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी वि.वि., कानपुर द्वारा किया गया है यह एक पछेती किस्म है। यह गृह–वाटिका में लगाने के लिए उत्तम किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के और गुच्छों में लगते है प्रत्येक गुच्छे में 8–10 फल लगते है। यह किस्म अक्टूबर में रोपाई करने के लगभग १०० दिन बाद फल देना शुरू कर देती है जो मई के अंत तक मिलते रहते है।

7. पूसा रूबी

इस किस्म का विकास भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। यह एक अगेती किस्म है जिसके फल रोपाई के 60–65 दिन में तैयार हो जाते है। इसके पौधे लम्बे और थोड़े फैले होते हैं। फल चपटे, गोल एवं मध्यम आकार के तथा पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। फल अधिक रस दार और थोड़ा खट्टापन लिए होते हैं जिसके कारण जल्दी खराब हो जाते हैं यह किस्म रस निकालने और चटनी बनाने के लिए अच्छी है। उत्तरी भारत में उगाई जाने वाली यह प्रमुख किस्म है इसकी उपज 200–250 क्विंटल प्रति हे. होती है।

अन्य संकर किस्मे

अविनाश–2, एस.टी.एच–537, पूसा हाइब्रिड–2, ए.आर.टी.एच.–3, गोट्या, एन.एस– 815 एवं बी. एस.एस. –99 आदि टमाटर की अन्य किस्में हैं।

बीज की बुवाई का समय

बुवाई का समय स्थान और किस्म के अनुसार भिन्न–भिन्न स्थानों पर अलग–अलग होता है। शरद

कालीन टमाटर की बुवाई का सही समय जुलाई से सितम्बर एवं ग्रीष्मकालीन टमाटर की बुवाई का समय नवम्बर से दिसम्बर माह होता है। टमाटर की बुवाई मैदानों में दो बार की जाती है जून–जुलाई एवं नवम्बर–दिसंबर। पहाड़ी क्षेत्रों में मार्च अप्रैल के महीने में भी बुवाई आसानी से करके उत्पादन कर सकते है।

बीज की मात्रा

प्रति हेक्टेयर बीज की दर 400–500 ग्राम होती है। टमाटर के बीज की अंकुरण क्षमता 85–90% तक होती है तथा टमाटर के बीज 4 वर्ष तक जीवित रहते हैं।

जैविक खाद

जैविक खाद की मात्रा भूमि की उर्वरता पर निर्भर करती है। मृदा परीक्षण के आधार पर ही खाद का निर्धारण किया जा सकता है। टमाटर की अच्छी उपज के लिए भूमि में सड़ी गोबर की खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट की खाद डालना अति आवश्यक होता है। क्योंकि जैविक खेती में किसी भी प्रकार का रासायनिक उर्वरक नहीं डाला जाता है। ध्यान रखना है कि गोबर की खाद को बुवाई से 4–5 सप्ताह पूर्व खेत में समान रूप से डालना चाहिए उसके बाद जुताई करके अच्छी तरह से मिलाना चाहिए।

भूमि शोधन

भूमि जनित बीमारी के लिए *ट्राइकोडर्मा* का 1 प्रतिशत घुलनशील पाउडर और भूमि जनित कीट के लिए *व्यूवेरिया वैसियाना* का 1 प्रतिशत घुलनशील पाउडर को सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर खेत में डालना चाहिए। भूमि शोधन प्रति एकड़ के लिए उपरोक्त जैविक फफूंदनाशक या जैविक कीटनाशक 1 किलोग्राम को 20–25 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद में मिलाकर 7–10 दिन के लिए छाया में रख दें। उसके बाद उस पर पानी से छींटा मारकर उसमें नमी बनायें तथा उसे नमीयुक्त जूट के बोरे से ढक दें। 5–6 दिन के बाद उसमें उपलब्ध फफूंद क्रियाशील हो जाते हैं। अब इस उपचारित की गई सड़ी गोबर की खाद को पौध रोपड़ से पहले सुबह खेत में छींट कर अन्तिम जुताई करके खेत में मिला देते हैं। जिससे खेत की मिट्टी उपचारित हो जाती है और खेत में रोपित की गई टमाटर की फसल में बीमारी एवं कीड़े न के बराबर लगते है।

पौधशाला में बीज की बुवाई

टमाटर की पौधशाला तैयार करने के लिए 125 वर्ग मीटर जमीन की आवश्यकता पड़ती है जिसकी लम्बाई 5 मीटर एवं चौड़ाई 1 मीटर की होती है तथा जमीन से ऊँचाई 15–20 सेमी की होती है। पौधशाला तैयार करने के लिए इसमें रसायन उर्वरक के स्थान पर सड़ी गोबर की खाद एवं केंचुए की खाद (वर्मी कम्पोस्ट) को मिलाना चाहिए। जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है। इसमें क्यारियों की लम्बाई अपनी सुविधानुसार रखनी चाहिए तथा बीच में 45–60 सेमी. की नाली छोड़नी चाहिए। बीज को बोने से पहले *ट्राइकोडर्मा* से बीज को शोधित कर लेना चाहिए, बीज बोने के बाद सड़ी गोबर की खाद से उसको ढक देना चाहिए जिससे बीज का जमाव अच्छा हो जाय और नर्सरी को पौधरोपण के लिए उखाड़ने पर पौधशाला से पौधे आसानी से निकल भी आते हैं।

सिंचाई

बीज की बुवाई के बाद क्यारियों को सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मी–कम्पोस्ट की खाद से ढक देना चाहिए, जिससे ऊपर की मिट्टी बैठने न पायें। उसके बाद फुहारे से हल्की सिंचाई करनी चाहिए। टमाटर की फसल के लिए सिंचाई का विशेष महत्व है इसमें अधिक और कम सिंचाई हानिकारक होती है गर्मी की फसल में प्रति सप्ताह और सर्दी में 10वें दिन सिंचाई करना चाहिए। अधिक पानी होने की दशा में पौधे सूखने लगते हैं।

खरपतवार नियन्त्रण

टमाटर जल्दी–जल्दी व उथली निराई–गुड़ाई चाहने वाली फसल है। इसमें गहरी गुड़ाई न करें, अन्यथा जड़ें कट सकती है, क्योंकि टमाटर एक उथली जड़ वाली फसल है। खरपतवार के नियन्त्रण हेतु मल्चिंग करना चाहिए। यदि खरपतवार उग आते हैं, तो उस दशा में खुरपी द्वारा आसानी से सभी अवांछनीय खरपतवारों को निकाल देना चाहिए।

फसल में लगने वाले कीट एवं उसकी रोकथाम

1. सुंडी

यह कीट पत्तियों और तनों को खाती है जिससे उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए नीम का तेल 0.4% का घोल बनाकर छिड़काव करने से कीड़े का आसानी से नियन्त्रण किया जा सकता है।

2. फल छेदक

इस कीट के लार्वा फल के अन्दर घुस कर गुदे को खाते रहते है जिसके कारण फल बिल्कुल बेकार हो जाता है एवं उपज में भारी कमी हो जाती है। इस कीट का प्रकोप मार्च–अप्रैल में अधिक होता है। इसमें नियन्त्रण हेतु *व्यूवेरिया वैसियाना* 1 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 3 किग्रा0 प्रति हे0 की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर सायंकाल छिड़काव करना चाहिए अथवा *मेटाराइजियम एनिसोप्ली* 1 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 25–50 किग्रा प्रति हे0 500–700 लीटर पानी में घोलकर सायंकाल छिड़काव करें अथवा एन.पी.वी. (एच.) 0.43 प्रतिशत ए.एस. 1500 मिली. प्रति हेक्टेयर की दर से 400–600 ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें। फल छेदक कीट से बचाने के लिए प्रत्येक 15–20 पंक्ति के बाद गेंदें की एक कतार अवश्य लगायें। पत्तियो पर फल छेदक के अण्डे दिखाई देने लगे तो खेत में अण्डा परजीवी *ट्राइकोकार्ड* के 2.5 लाख प्रति हे0 की दर से प्रयोग करे।

3. कटुआ कीट

यह मटमैले रंग की गिडार होती है जो रात्रि में निकलकर पौधों को जमीन की सतह से काटकर गिरा देती है और दिन में भूमि की दरारों और मिटटी के ढेलों के नीचे छिप जाती है। इसकी रोकथाम के लिए नीम का तेल 2 प्रतिशत या *वर्टीसीलियम लैकानी* 2.5 किग्रा0 प्रति हे0 की दर से 400–500 ली पानी में घोलकर सांयकाल छिड़काव करना चाहिए।

टमाटर में लगनी वाली बीमारियाँ

टमाटर के खेत में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ अल्टरनेरिया झुलसा, पछेती झुलसा, कालरराट, पत्ती का काला चूर्णी झुलसा, सफेद गलन, फलसड़न, जीवाणु पर्णदाग, जीवाणु स्पेक लगती है।

बिमारियों से उपचार

1. *ट्राइकोडर्मा हारजिएनम* 1 प्रतिशत से बीज शोधन करके ही नर्सरी डाले।
2. बुवाई हेतु रोग मुक्त फलों से ही स्वास्थ्य बीज इकठ्ठा करना चाहिए।
3. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
4. नीचे की प्रभावित पत्तियों तथा रोग से ग्रसित पौधों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
5. खेत में टमाटर लगाने से पूर्व हरी खाद या कम्पोस्ट की खाद पर्याप्त मात्रा में डालकर *ट्राइकोडर्मा* का प्रयोग करें।
6. पौधा लगाने से पूर्व जड़ को *ट्राइकोडर्मा* के 1 प्रतिशत घोल में 10 मिनट तक डुबोकर शोधित करके पौधों की रोपाई करें जिससे बाद में बीमारी लगने की आशंका नहीं रहती है।
7. फल सड़न से बचाने के लिए टमाटर की खेती लकड़ी के सहारे चढ़ाकर करना चाहिए।
8. पौधशाला में संक्रमण नियन्त्रण के लिए पौधशाला की मिट्टी का *सौर्यीकरण* करना चाहिए।
9. सफेद मक्खी के संक्रमण से बचाव हेतु, जिससे बीमारी न फैले पौधशाला को नाइलान की जाली के अन्दर पौध तैयार करना चाहिए।
10. जहाँ तक सम्भव हो अगेती फसल न लें एवं सितम्बर माह के बाद ही रोपाई करें।
11. संक्रमित पौधों को यथाशीघ्र उखाड़कर जला दें या भूमि के अन्दर खोद कर दबा दे।
12. हमेशा रोग सहनशील प्रजाति जैसे कि H–86, DVRT–1, DVRT–2 आदि का प्रयोग करें।
13. गर्मी के महीने में जुताई करके एक बार सिंचाई करें तथा इसके बाद पुनः दो जुताई करें। जिससे भूमि जनित बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं।
14. जून के अन्तिम पखवाड़े या जुलाई के प्रथम पखवाड़े में हरी खाद के रूप में ढैंचा का प्रयोग करें।
15. सफेद मक्खी के संक्रमण से बचाने के लिए मेड़ों के चारों तरफ मक्का, ज्वार और बाजरा को लगाना चाहिए।

जैविक खेती से लाभ

1. जैविक खेती करने से मृदा का जैविक स्तर बढ़ता है जिससे लाभकारी जीवाणुओं की संख्या बढ़ने के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति भी बढ़ जाती है।
2. जैविक खादों का प्रयोग करने से मृदा में हयूमस की बढ़ोतरी होती है, जिससे मृदा में भौतिक सुधार होता है।
3. जैविक खाद के सड़ने से कार्बनिक अम्ल का निर्माण होता है जो भूमि में अघुलनशील तत्वों को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर देती है। और फसल में जैविक उर्वरक कम मात्रा में मिलाना पड़ता है।
4. जैविक खेती करने से मृदा का पी.एच. मान 7 से कम हो जाता है जिससे मृदा में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है। जो फसल उत्पादन में लाभकारी सिद्ध होते हैं
5. जैविक खेती से टमाटर के खेत में कीट रोग जैसी समस्या की संभावना कम हो जाती है।
6. टमाटर की जैविक खेती करने से फल अधिक चमकदार, एवं उच्च गुणवत्तायुक्त होते हैं। जिसे बाजार में बेचने पर अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

फलों की तुड़ाई

फलों की तुड़ाई उसके उपयोग करने पर निर्भर करती है यदि दूर के बाजार में फल को भेजना है तो रंग परिवर्तन के समय तुड़ाई करें और यदि पास के बाजार में भेजना है या स्वंय खाने के लिए प्रयोग करना है तो पकने के तुरंत बाद तुड़ाई करें।

श्रेणीकरण करना

टमाटर के फलों को तोड़ने के बाद रोग ग्रसित सड़े गले इत्यादी फलों को सर्वप्रथम अलग कर दें। उसके बाद फल को आकार के अनुसार बड़े माध्यम एवं छोटे आकार में अलग–अलग वर्गीकृत कर ले। वर्गीकृत टमाटर को बाजार में बेचने पर मूल्य अधिक मिलता है।

भंडारण

जैविक विधि द्वारा खेती करने पर तुड़ाई उपरांत इसकी भंडारण क्षमता अधिक होती है बाजार में मांग अधिक न होने के कारण टमाटर के फल को कुछ दिनों के लिए भंडारित किया जा सकता है। जैसे हरे टमाटर को तोड़कर 12.5 डिग्री से. तापमान पर 30 से 35 दिनों तक भंडारित किया जा सकता है।

उपज

रासायनिक खेती की अपेक्षा जैविक खेती में उपज कुछ कम होती है। जैविक खेती से तैयार फसल की उपज 300 से 350 कुन्तल प्रति हे. तक प्राप्त होती है टमाटर की उपज शस्य क्रियाएं एवं जलवायु पर निर्भर करती है।

❁❁❁❁

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं। 'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गये। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' नामक कृतियों में मिलता है।

पपीते की बागवानी से सेहत एवं लाभ कमाएँ

दिनेश कुमार[1], के.के. श्रीवास्तव[2], एस.आर. सिंह[3] एवं इसरार अहमद[4]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

परिचय

पपीता एक लाभकारी फसल है जो उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रो में आसानी से उगाया जाता है। विश्व में पपीता उत्पादक देशो में ब्राज़ील, मैक्सिको एवं नाइजीरिया के बाद भारत का चौथा स्थान है इसकी खेती आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, ओडिशा, गुजरात, महाराष्ट्र, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु एवं उत्तर प्रदेश में की जाती है इसके फल औषधीय गुणों एवं आर्थिक रूप से लाभकारी होने के कारण पूर्व के कुछ वर्षो में लोगों ने इसकी खेती की ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया है। इसके फलों में विटामिन–ए प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें खनिज लवण भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके ताजा फलों से परिरक्षित पदार्थ भी बनाये जाते हैं। इसके पत्तों का प्रयोग डेंगू से ग्रसित लोगों के प्लेटलेट्स बढ़ाने में काम आता है, पपीते के कच्चे फल में प्रोटियोलिटिक एन्जाइम–पपेन भी पाया जाता है।

भूमि एवं जलवायु

पपीते की सफल बागवानी हेतु गहरी और उपजाऊ, सामान्य पी.एच. मान वाली बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त मानी गयी है। इसकी बागवानी के लिए भूमि में जल निकास का होना बहुत जरूरी है क्योंकि यह जल भराव के प्रति काफी सम्वेदनशील है।

पपीता एक उष्ण कटिबन्धीय फल है किन्तु इसकी खेती समशीतोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक की जा रही है। इसकी बागवानी समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊँचाई तक की जा सकती है। वायुमण्डल का तापमान 10 डिग्री सेल्सियस से कम होने पर पपीता फलों की वृद्धि तथा फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पपीता की अच्छी वृद्धि के लिए 22 से 26 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त पाया गया है। औसतन वार्षिक वर्षा 1200–1500 मिमी. पर्याप्त होती है। पपीता के पकने के समय शुष्क एवं गर्म मौसम होने से फलों की मिठास बढ़ जाती है।

किस्में

पपीता एक परपरागण वाली फसल है तथा इसका व्यावसायिक प्रवर्धन बीज के द्वारा होने के कारण एक ही प्रजाति में बहुत अधिक भिन्नता पायी जाती है। वर्तमान में भारत में पपीता की कई किस्में विभिन्न प्रदेशों में उगायी जा रही हैं। जिनमें प्रमुख रूप से 20 उन्नत किस्में हैं तथा कुछ स्थानीय एवं विदेशी किस्में हैं। जिसके कुछ प्रमुख किस्मों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है–

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय स्टेशन, पूसा (बिहार) द्वारा विकसित किस्में

पूसा डेलिसियस

यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है जिसमें मादा और उभयलिंगी पौधे निकलते हैं यह 60–80 सेमी. की ऊँचाई से फल देता है। इसका फल अत्यंत स्वादिष्ट एवं सुगंधित होता है। फल का आकार मध्यम से लेकर साधारणतः बड़ा होता है। जिसका वजन 1–2 किग्रा. तक होता है। पकने पर फल के गूदे का रंग गहरा होता है तथा गूदा ठोस होता है। गूदे की मोटाई 4.0 सेमी. तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 13 डिग्री ब्रिक्स होता है। फलों की पैदावार 30–45 किग्रा. प्रति पेड़ होती है।

पूसा मजेस्टी

इस प्रजाति में भी *पूसा डेलिसियस* की भांति मादा एवं उभयलिंगी पौधे निकलते हैं। यह 50–60 सें.मी. की ऊँचाई से फल देना शुरू होता है तथा फल का वजन 1.0–2.5 किग्रा तक होता है। यह किस्म पैदावार में उत्तम है तथा फलो में पपेन की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसके फल अधिक टिकाऊ होते हैं तथा इसमें विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है। पकने पर गूदा ठोस एवं पीले रंग का होता है तथा कुल घुलनशील ठोस 9 से 10 डिग्री

[1,2,3]प्रधान वैज्ञानिक, [4]वरिष्ठ वैज्ञानिक

ब्रिक्स होती है। एक पेड़ से औसतन 30–40 किग्रा. फल प्राप्त होता है। इसके गूदे की मोटाई 3.5 सेमी. होती है।

पूसा ड्वार्फ

यह एक डायोसियस प्रजाति है जिसमें नर एवं मादा पौधे निकलते हैं। इस किस्म के पौधे बौने होते हैं। तथा इसमें फलन जमीन से 30–45 सें.मी. की ऊँचाई से प्रारम्भ होता है तथा फल का वजन 0.5 से 1.5 किग्रा होता है। इसकी पैदावार औसतन 40–50 किग्रा. प्रति पौध है। फल के पकने पर गूदे का रंग पीला होता है। गूदे के मोटाई 3.5 सेंमी. होती है तथा कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 डिग्री ब्रिक्स होता है। पौधा बौना होने के कारण इसे आंधी या तूफ़ान से कम नुकसान होता है।

पूसा जायंट

यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। जिसमें फलन जमीन से 80 सें.मी. की ऊँचाई से होता है। इसके फल बड़े होते है तथा एक फल का वजन 1.5 से 3.5 किग्रा. तक होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 5 सेंमी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 8 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पेड़ औसत उपज 30–35 किग्रा. है।

पूसा नन्हा

यह पपीता की सबसे बौनी प्रजाति है जो गामा किरण द्वारा विकसित की गयी है। यह भी एक डायोसियस प्रजाति है। यह 30–45 सेंमी. की ऊँचाई से फलना प्रारम्भ करता है। इसमें प्रति पेड़ 20–25 किग्रा. फल प्राप्त होता है। इसके गूदे का रंग पीला तथा मोटाई 3 सेमी. होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 9 डिग्री ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति सघन बागवानी तथा गृह वाटिका के लिए काफी उपयुक्त पायी गयी है।

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान बंगलौर द्वारा विकसित किस्में

कुर्ग हनी ड्यू

यह किस्म भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बंगलौर के केन्द्रीय बागवानी प्रयोग केंद्र चेट्टाली द्वारा चयनित किस्म है जिसका चयन हनी ड्यू नामक प्रजाति से किया गया है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके पौधे मध्यम आकार के होते हैं। इसके फल लम्बे, अंडाकार आकार के एवं मोटे गूदेदार होते हैं। फल का वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। गूदे का रंग पीला होता है। इसमें कुल घुलनशील ठोस 13.50 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 40–50 किग्रा. तक होती है।

सूर्या

यह सनराइज सोलो एवं पिंक फलेश स्वीट के संकरण द्वारा विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं जिनका औसत वजन 600–800 ग्राम तक होता है तथा बीज की कैविटी कम होती है। फल का गूदा गहरा लाल रंग का होता है जिसकी मोटाई 3–3.5 सें.मी. तथा कुल घुलनशील ठोस 13.5–15 डिग्री ब्रिक्स होता है। फल की भंडारण क्षमता भी अच्छी है। प्रति पौध औसत उपज 55–65 किग्रा. तक होती है।

तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर द्वारा विकसित किस्में

को. 1

यह प्रजाति 1972 में राँची प्रजाति से चयनित की गयी है। यह एक डायोसियस किस्म है जिसके पौधे छोटे होते हैं। फल मध्यम आकार के होते है जिनका गूदा पीले रंग का होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 10 से 12 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 30–40 किग्रा. तक होती है।

को. 2

इस किस्म का चयन 1979 में स्थानीय किस्म से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जिसमें पपेन प्रचुर मात्रा (4 से 6 ग्राम प्रति फल) में पायी जाती है। फल का औसत वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। फल में 75 प्रतिशत गूदा होता है जिसकी मोटाई 3.8 सेंमी. तथा गूदा का रंग नारंगी होता है। फल का आकार बड़ा होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 11.4–13.50 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 70–75 फल प्रति वर्ष होती है। पपेन की औसत उपज 250 से 300 किग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है।

को. 3

यह को. 2 एवं सनराइज सोलो के संकरण द्वारा वर्ष 1983 में विकसित गायनोडायोसियस प्रजाति है। यह ताजे फल के रूप में खाने हेतु सर्वोत्तम किस्म है। इसके फल मध्यम आकार के होते है जिनका औसत वजन 500 से 800 ग्राम तक होता है। फल में गूदे का रंग लाल होता है। जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 14.6 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 80–90 फल होती है।

को. 4

यह किस्म भी वर्ष 1983 में को. 1 एवं वाशिंगटन के संकरण से विकसित की गयी है। यह एक डायोसियस प्रजाति है। पौधे के तने तथा पत्ती के डंठल का रंग बैंगनी होता है। फल मध्यम आकार का होता है जिसका औसत वजन 1.2 से 1.5 किग्रा. तक होता है। फल में गूदे का रंग पीला होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.2 डिग्री ब्रिक्स होती है। औसत उपज प्रतिशत 70 से 90 फल प्रति पौधा होती है।

को. 5

इस प्रजाति का चयन वर्ष 1985 में वाशिंगटन प्रजाति से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जो पपेन उत्पादन हेतु सर्वोत्तम पायी गयी है। प्रति फल 14.45 ग्राम शुष्क पपेन पाया जाता है। पत्ती के डंठल का रंग गुलाबी होता है। फल का औसत वजन 1.5 से 2.0 किग्रा. होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13 डिग्री ब्रिक्स होती है। 2 वर्ष के फसल चक्र में औसत उपज 75–80 फल प्रति पौध होती है।

को. 6

इस प्रजाति का चयन वर्ष 1986 में जायंट प्रजाति से किया गया है। यह एक डायोसियस प्रजाति है जो पपेन उत्पादन तथा ताजा खाने के लिए उपयोगी पायी गयी है। इसके पौधे छोटे होते हैं तथा फल की तुड़ाई पौध रोपण के आठवें माह से शुरू हो जाती है। फल का औसत वजन 2 किग्रा. तक होता है। फल के गूदे का रंग पीला होता है जिसमें कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 13.60 डिग्री ब्रिक्स होती है। प्रति पौध औसत उपज 80–100 फल है।

को. 7

यह पूसा डेलिसियस, को. 3, सी.पी.–75 एवं कुर्ग हनी ड्यू के बहुसंकरण द्वारा वर्ष 1997 में विकसित संकर किस्म है। यह एक गायनोडायोसियस प्रजाति है जिसमें फल जमीन से 50–60 सेंमी. की ऊँचाई से लगते हैं। इसके फल लम्बे, अंडाकार होते हैं जिसमें गूदे का रंग लाल होता है। फल में कुल घुलनशील ठोस की मात्रा 16.7 डिग्री ब्रिक्स होती है। यह प्रजाति 90–100 फल प्रति पौध उपज देती है।

पौध प्रवर्धन

पपीता का व्यवसायिक प्रवर्धन बीज द्वारा होता है। किन्तु पपीता को बड़े पैमाने पर उगाने में सबसे बड़ी समस्या शुद्ध बीज का उपलब्ध न होना है। अतः पपीता का शुद्ध बीज ही बुवाई हेतु उपयोग करना चाहिए जो कि किसी शोध संस्थान या प्रमाणित बीज भंडार से क्रय करना चाहिए। बीज की मात्रा 300–500 ग्राम प्रति हेक्टेयर लगता है।

पौध तैयार करना

पौधशाला में बीज बोने के लिए 3 मीटर लम्बी, 1 मी. चौड़ी तथा 15 सेंमी. ऊँची क्यारियाँ बनाना चाहिए। मिट्टी में गोबर की खाद मिलाकर बारीक बना लेना चाहिए। बीज को क्यारी में कतार में लगाना चाहिए। कतार से कतार की दूरी 10 सेंमी. तथा बीज को 1 सेंमी. गहरा बोना चाहिए। इसके बाद बीज को गोबर की खाद या कम्पोस्ट को भुरभुरी बनाकर ढक देना चाहिए। वर्षा या तेज धूप से बीज को बचाने के लिए खर पतवार या पुआल से ढक देना चाहिए। इसके उपरांत पौधशाला में फव्वारे से पानी प्रतिदिन देना चाहिए जब तक बीज का अंकुरण न हो जाय। पौधे को गलका रोग से बचाने के लिए बीज को केप्टान या सिरेसान (2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज) नामक दवाओं से उपचारित करना चाहिए। पौधशाला में जब भी गलका रोग दिखाई पड़े बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या मैंकोजेब या रिडोमिल या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का तुरन्त छिड़काव करना चाहिए। पपीते का बीज 7 से 15 दिन के भीतर जम जाते हैं तथा जमने के बाद पुआल हटा देना चाहिए। पुआल हटाने के

बाद फब्बारा द्वारा हल्की सिंचाई कर देना चाहिए ताकि नमी बनी रहे।

पौधों को पॉलिथीन के थैलियों में उगाना

पौधों को पॉलिथीन की थैलियों में उगाने हेतु छेद किये गये 150 से 200 गेज वाले पॉलिथीन के थैलों जिनकी लम्बाई 22 सेंमी. तथा चौड़ाई 15 सेंमी. हो काम में लाया जा सकता है। थैलों को एक तिहाई बालू, एक तिहाई कम्पोस्ट तथा एक तिहाई मिट्टी मिलाकर भर लेना चाहिए। प्रति थैले में 3–4 बीज एक सेंमी. की गहराई पर बोने के बाद पानी से सिंचाई कर देना चाहिए। पौधे जमने के बाद उचित देखभाल करनी चाहिए।

पौध तैयार करने का समय

साधारणतया पपीते का बीज नर्सरी में रोपने की निर्धारित तिथि से दो महीने पहले बोना चाहिए। इस प्रकार पौधे मुख्य क्षेत्र में रोपाई के समय करीब 15–20 सेंमी. की ऊँचाई के हो जाते हैं। जहाँ पानी जमाव की समस्या है तथा वर्षा के दिनों में विषाणु रोग अधिक तेजी से फैलते हैं वहाँ अगस्त के अंत में या सितम्बर के शुरू में नर्सरी में बीज बोना चाहिए।

पौध रोपण एवं देखभाल

पपीता की खेती हेतु ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिए जहाँ बरसात में पानी नहीं ठहरता हो। भूमि का चुनाव करने के बाद गर्मी के दिनों में भूमि को अच्छी तरह 2–3 बार जुताई करके खेत तैयार करना चाहिए। प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए पपीता को 1.8 × 1.8 मी. की दूरी पर लगाना चाहिए। पौध लगाने हेतु निर्धारित दूरी पर गर्मी के दिनों में 60 × 60 × 60 सेंमी. के आकार के गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढे को 15 दिन तक खुला छोड़ दें। वर्षा शुरू होने के पूर्व गड्ढे के ऊपर की भुरभुरी मिट्टी में 20 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद तथा 1 किग्रा. नीम की खली का मिश्रण मिलाकर गड्ढे को अच्छी तरह भर दें।

जब पौधे नर्सरी में 15–20 सेंमी. की ऊँचाई के हो जायें तब अक्टूबर माह में पौधों को गड्ढे के बीचों बीच लगाये। डायोसियस किस्म का दो–तीन पौधे तथा गायनोडायोसियस किस्म का एक पौधा प्रति गड्ढा लगाना चाहिए। इसके बाद प्रत्येक पौधे को हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

पौधों को खेत में लग जाने के बाद समुचित देखभाल करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी–कभी अधिक वर्षा के कारण भी पौधे नष्ट हो जाते हैं। अतः उन्हें उचित देखरेख द्वारा बचाना चाहिए। जाड़े के दिनों में जहाँ ठंड अधिक पड़ती है, कोमल पौधों को पॉलिथीन या घास फूस की पट्टी द्वारा ढक देना चाहिए। कुछ कीड़े कोमल पौधों को काटकर शुरू में नष्ट कर देते हैं उनसे पौधों को बचाना चाहिए। वर्षा के कारण नष्ट हुए पौधों को बसंत ऋतु में दूसरा पौधा लगाकर भर देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

पपीते को बहुत अधिक खाद की आवश्यकता होती है। औसतन प्रत्येक फलने वाले पेड़ों को 200–250 ग्रा. नाइट्रोजन, 200–250 ग्रा. फ़ॉस्फोरस तथा 250 से 500 ग्रा. पोटाश देने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। पोषक तत्वों को चार भागों में बाँट कर प्रत्येक माह के शुरू में वृक्ष के छाँव के नीचे पौधे से 30 सेंमी. की गोलाई में देकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। खाद देने के बाद हल्की सिंचाई कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूक्ष्म तत्व बोरॉन (1 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) तथा जिंक सल्फेट (5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव पौध रोपण के चौथे एवं आठवें महीने में करना लाभ दायक होता है।

सिंचाई

पपीता के सफल उत्पादन के लिए बगीचे में जल प्रबंध बहुत ही आवश्यक है। जब तक पौधा फलन में नहीं आता तब तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए जिससे पौधे जीवित रह सके। अधिक पानी देने से पौधे काफी लम्बे हो जाते है तथा विषाणु रोग का प्रकोप भी ज्यादा होता है। फल लगने से लेकर पकने तक पौधों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है। ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी के कारण फल झड़ने लगते है। गर्मी के दिनों में एक सप्ताह के अंतराल पर तथा जाड़े के दिनों में 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। पपीता में टपक सिंचाई प्रणाली (ड्रिप) के अंतर्गत 8–10 लीटर पानी प्रति दिन देने से पौधे की वृद्धि एवं उपज अच्छी

पायी गयी है। इस प्रकार 40–50 प्रतिशत पानी की भी बचत होती है। मृदा नमी को संरक्षित करने के लिए पौधे के तने चारों तरफ सूखे खरपतवार या काली पॉलिथीन की पलवार बिछाना चाहिए।

फूलन एवं फलन

पौधे लगाने के लगभग 5–6 माह बाद से पौधों में फूल आने लगते है। पपीता में मुख्य रूप से तीन प्रकार के लिंग नर, मादा एवं उभयलिंगी पाये जाते हैं। नर एवं उभयलिंगी पौधे वातावरण के अनुसार लिंग परिवर्तन कर सकते हैं किन्तु मादा पौधे स्थायी होते हैं। नर एवं मादा पौधों की पहचान फूल का आधार पर कर सकते है। ज्योंही नर पौधे दिखाई पड़े तुरन्त काटकर खेत से निकाल देना चाहिए। किन्तु परागण हेतु खेत में 10 प्रतिशत नर पौधे अवश्य रखना चाहिए।

रोग एवं कीट नियंत्रण

कवक जनित रोग

आर्द्रगलन रोग

यह बीमारी पौधशाला में *पीथियम एफैनिडरमेटम* नामक कवक के कारण होती है। इसका प्रभाव नये अंकुरित पौधों पर होता है तथा पौधे का तना जमीन के पास से सड़ जाता है और पौधा मुरझाकर गिर जाता है। अतः इससे बचाव के लिए नर्सरी की मिट्टी को बोने से पहले फारमेल्डिहाइड के 2.5 प्रतिशत घोल से उपचारित कर पॉलिथीन से 48 घंटों के लिए ढक देना चाहिए तथा बीज को थायरम, एग्रोसान जी.एन. या केप्टान (2 ग्रा. प्रति किग्रा. बीज) नामक दवाओं से उपचारित कर बोना चाहिए। पौधशाला में इस रोग से बचाव के लिए बोर्डो मिश्रण (5:5:50) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या मैंकोजेब (2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर 3–4 बार करना चाहिए।

फलों का सड़ना (एंथ्रेक्नोंज)

यह पपीता के फल की प्रमुख बीमारी है। यह *कोलिटोट्राईकम ग्लीयोस्पोरायडस* नामक कवक के द्वारा होती है। इस रोग में फलों के ऊपर छोटा जलीय धब्बा बन जाता है जो बाद में बढ़कर पीले या काले रंग का हो जाता है। यह रोग फल लगने से लेकर पकने तक लगता है जिसके कारण फल पकने के पूर्व ही गिर जाते है। इसकी रोकथाम के लिए ब्लाइटाक्स 50 या मैंकोजेब (2.5 ग्रा. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

विषाणु जनित रोग

पर्ण कुंचन रोग

यह पपीते का एक गंभीर विषाणु रोग है। इस रोग के कारण शुरू में पौधों का विकास रुक जाता है और पत्तियाँ गुच्छा नुमा हो जाती है तथा पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का ऊपरी सिरा अंदर की ओर मुड़ जाता है। प्रभावित पौधों में फूल एवं फल नही लगते हैं।

पपीते का रिंग स्पॉट रोग

पर्ण कुंचन की तरह यह भी एक विषाणु रोग है। इस रोग में पपीते की पत्तियाँ कटी–फटी सी हो जाती है तथा हर गाँठ पर कटे–फटे पत्ते निकलने लगते है। पत्तियों के तनों एवं फलों पर छोटे गोलाकार धब्बे पद जाते है। प्रभावित फल का आकार अच्छा नहीं होता है तथा फलत बहुत ही कम हो जाती है। फल की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

उपरोक्त दोनों विषाणु रोगों की पूरी तरह रोकथाम संभव नहीं है। विषाणु रोग वर्षा के दिनों में काफी तेजी से फैलता है। अतः वर्षा के समाप्त होने पर (अक्टूबर माह) खेत में पपीता लगाने से विषाणु रोगों का प्रभाव कम होता है। यह विषाणु रोग कीटों जैसे सफेद मक्खी और माहू से फैलते हैं। अतः इनकी रोकथाम हेतु डाइमेंथोऐट (2 मिली. प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव प्रति माह करना चाहिए। प्रयोगों द्वारा ऐसा देखा गया है कि नीम की खली या अत्यधिक कम्पोस्ट खाद के उपयोग करने पर विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है। इस रोग से प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

लाभ

पपीता का फल सेहत के लिए अच्छा होता है इसका उपयोग कच्चा फल सब्जी के लिए एवं पका फल खाने के लिए उपयुक्त होता है एक हेक्टेयर पपीता की खेती से अच्छी पैदावार के साथ साथ अधिक लाभ भी कमा सकते है।

आधुनिक तरीके से करें आम की बागवानी

नरेश बाबू[1], सुभाष चंद्र[2] एवं अरविन्द कुमार[3]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

आम पूरी तरह भारतीय मूल का फल है। ऐसा माना जाता है कि चौथी–पांचवी सदी में बौद्ध धर्म प्रचारकों के साथ भारत से आम मलेशिया और पूर्वी एशिया के देशों तक पहुँचा। पारसी लोग 10वीं सदी में इसे पूर्वी अफ्रीका ले गए और पुर्तगाली 16वीं सदी में इसे ब्राजील ले गए, जहां से यह वेस्टइंडीज और मैक्सिको पहुंच गया। भारत में सभी फलों में आम का उत्पादन सबसे ऊपर हैं भारत दुनिया का 41 फीसदी आम का उत्पादन करता है लेकिन हमारे देश में आम की उत्पादकता (9.66 टन प्रति हेक्टेयर) अन्य देशों जैसे ब्राज़ील में (16 टन प्रति हेक्टेयर) की तुलना में कम है। आम के फल की देश ही नहीं बल्कि विदेशों में भी बहुत मांग रहती है। भारत में आम लगभग सभी प्रदेशों में होते हैं लेकिन अलग–अलग राज्यों में आम फल की अलग–अलग किस्में होती है। आज आम की खेती से देश के किसान अच्छी आमदनी कर रहे हैं। आम की खेती तो सभी करते हैं लेकिन वैज्ञानिक तरीके से करने पर कम समय में ही अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जलवायु और भूमि

आम की खेती उष्ण एव समशीतोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु में की जाती है। आम की खेती समुद्र तल से 600 मीटर की ऊँचाई तक सफलता पूर्वक होती है इसके लिए 23.8 से 26.6 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान अति उतम होता है। आम की फसल का उत्पादन तो प्रायः सभी तरह की भूमि में किया जाता है लेकिन अच्छी जल धारण क्षमता वाली गहरी, बलुई दोमट सबसे उपयुक्त मानी जाती है। भूमि का पी.एच. मान 5.5–7.5 तक इसकी खेती के लिए उपयुक्त माना जाता है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [3]स.मु. तकनीकी अधिकारी

गड्ढों की तैयारी में सावधानियाँ

वर्षाकाल आम के पेड़ों को लगाने के लिए सारे देश में उपयुक्त माना गया है। जिन क्षेत्रों में वर्षा अधिक होती है वहां वर्षा के अन्त में आम का बाग लगाना चाहिए। पौधे लगाने के लिए 1×1×1 मीटर का गढ्ढा खोदते हैं मई माह में गड्ढे खोद कर उनमें लगभग 30 से 40 किलो ग्राम प्रति गड्ढा सड़ी गोबर की खाद मिटटी में मिलाकर और 100 ग्राम क्लोरोपाईरीफॉस पाउडर प्रति गड्ढ़े की दर से बुरककर गड्ढों को भर देना चाहिए। गड्ढ़े भरते समय इन्हें खेत की सतह से थोड़ा ऊँचा भरना चाहिए ताकि वर्षा के बाद भी गड्ढे और खेत की सतह बराबर रहे। आम के दशहरी प्रजाति के पौधों को 10×10 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है, किन्तु सघन बागवानी में इसे 5×5 मीटर की दूरी पर लगाते हैं। आम्रपाली जोकि एक बौनी किस्म है। 2.5×2.5 मीटर की दूरी पर लगाई जा सकती है।

आम के पौधे रोपने के लिए उचित समय

आम उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में पाया जाने वाला फल है फिर भी इसे उपोष्ण क्षेत्र में सफलतापूर्वक पैदा किया जा सकता है। 25–27 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान तक इसकी खेती के लिए उपयुक्त माना जाता है। मानसून के दौरान 125 से.मी. वर्षा होती है जो इसके लिए उपयुक्त है। मानसून के अभाव में खाद एवं मिट्टी से भरे हुये गड्ढ़ों में पौध रोपण के 3–4 दिन पूर्व सिंचाई करना अति आवश्यक होता है।

आम की उपयुक्त किस्में

यूपी का दशहरी, लंगड़ा, चौसा : उत्तर प्रदेश में दशहरी का बोलबाला है। दशहरी को यह नाम काकोरी के पास दशहरी गांव की वजह से मिला। कहा जाता है कि दशहरी आम का पेड़ सबसे पहले यहीं हुआ। इस आम की गुठली छोटी, उत्तम स्वाद, और गूदा भरपूर होता है।

उन्नत किस्म में रेशे नहीं होते। फल का औसत वजन करीब 150–200 ग्राम, पल्प प्रतिशत 76.75 एवं टी.एस.एस. 24.6 होता है। इसके बाद नंबर आता है लंगड़ा आम का, जो रेशेदार होता है, यह अपनी खास मिठास के लिए जाना जाता है। लोकप्रिय लंगड़ा आम का प्रादुर्भाव बनारस से बताया जाता है। कहा जाता है बनारस के एक शिव मंदिर में एक साधु आम का पौधा लेकर आया था। उसे वहाँ के पुजारी को देकर उनकी सेवा करने को कहा। पुजारी ने उसे मंदिर के पीछे लगा दिया। पेड़ बड़ा हुआ तो उस पर बड़े मीठे और रसीले अलग तरह के आम लगे। पुजारी के पास आने वाले श्रद्धालुओं से इसकी शोहरत फैलती गई। चूंकि मंदिर का पुजारी पैर से दिव्यांग था, इसलिए इस आम को भी लंगड़ा कहा जाने लगा। इस आम में रेशा सहित गूदा, छोटी गुठली, खास मिठास, और गूदा भरपूर होता है। फल का औसत वजन करीब 200–250 ग्राम, पल्प प्रतिशत 76.75 एवं टी.एस.एस. 22.5 होता है। वहीं चौसा, जब आम के सीजन के अंत में बाकी आम मिलने लगभग बंद हो जाते हैं, तब आता है। इसके रेशामुक्त गूदा और मिठास के तो क्या कहने। चौसा का नाम भी संडीला के पास स्थित एक गांव चौसा पर रखा गया। कहा जाता है कि वहां एक बार एक जिलेदार ने अपने दौरे के दौरान गांव के एक पेड़ का आम खाया। लजीज स्वाद और जुदा खुशबू के कारण उसे यह आम बहुत पसंद आया। उसने इसकी खबर संडीला के नवाब को दी और नवाब ने चौसा की नस्ल को फैलाने का काम किया।

महाराष्ट्र का अलफांसो

आम अल्फांसो देश का सबसे चर्चित आम है और धनाढ्य वर्ग का आम कहा जाता है अनोखे मिठास, स्वाद और सुगंध वाला यह आम पकने के एक हफ्ते तक खराब नहीं होता। इसीलिए अल्फांसो सब से ज्यादा निर्यात किया जाता है। हां, आम लोग यह आम नहीं खा पाते, क्योंकि इसका दाम ही हजारों रुपये दर्जन होता है।

पश्चिम बंगाल का मालदा और हिमसागर

पश्चिम बंगाल में हिमसागर आम बहुत लोकप्रिय है। वहीं मालदा आम की खुशबू और मिठास के दीवाने देश–विदेश तक फैले हुए हैं। पूरे देश में और बाहर के मुल्कों में इसके बड़े कद्रदान हैं।

बिहार का जर्दालू और फजली : बिहार के भागलपुर में होने वाले जर्दालू आम का स्वाद ही निराला है। यह आम आम जनता के साथ राजनेताओं के लिए भी खास रहा है। कहा जाता है कि बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार हर साल सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से लेकर राष्ट्रपति तक विशिष्ट लोगों को जर्दालू आम भेंट करते हैं। बिहार में भागलपुर के एक गांव में फजली नाम की एक महिला के घर पैदा हुए आम की एक किस्म का नाम फजली पड़ गया।

दक्षिण भारत का बैंगनपल्ली

आंध्र प्रदेश के कुरनूर जिले में बैंगनपल्ली के शाही परिवार ने इस आम का परिचय कराया था। इस आम से तमिल स्टाइल में कढ़ी भी बनाई जाती है। इस आम के दीवानों का मन तो इसका छिलका भी खा जाने का करता है।

देश भर में आम की करीब 1300 किस्में है लेकिन 20 किस्मों की ही व्यवसायिक खेती होती है। इनमें से कुछ प्रजातियों का नीचे विवरण दिया जा रहा है।

किस्म का नाम	कुल वजन (ग्राम)	पल्प (%)	टी.एस.एस.	उत्पादन (किलो प्रति)	खास गुण
आम्रपाली	200–300	73.75	23.5	40	नियमित फलन सघन वागवानी हेतु उपयुक्त
दशहरी	150–200	76.75	24.6	80	उत्तम स्वाद, छोटी गुठली
लंगड़ा	200–250	76.75	22.5	75	रेशा रहित गूदा छोटी गुठली
सुंदरजा	300–350	75.95	22.5	65	मनमोहक सुगंध–मीण
मल्लिका	200–350	72.20	22.20	65	नियमित फलन

पौधों की देख-भाल

अच्छे उत्पादन के लिए पौधों की देखभाल करना जरुरी है शुरूआती तीन–चार वर्ष तक तो अवश्य ध्यान देने की जरुरत है। शुरूआत के दो तीन वर्षों तक आम

के पौधों को विशेष देखरेख की आवश्यकता होती है। जाड़े में पाले से बचाने के लिए एवं गर्मी में लू से बचाने के लिए सिंचाई का प्रबंध करना चाहिए। जमीन से 80 से.मी. तक की शाखाओं को निकाल देना चाहिए और अलग–अलग दिशाओं में मुख्य शाखाओं के बीच में 20–25 सेंटीमीटर का अंतर होना चाहिए। ऐसी शाखायें जो आपस में एक दूसरे के आर–पार जा रही हों, काट देनी चाहिए। कटाई उस अवस्था में ही की जाय जब शाखायें पेंसिल के बराबर मोटाई की हों क्योंकि बाद की कटाई से पौधे को हानि हो सकती है।

आम के पौधों में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग

यह पाया गया है कि कृषक आम के बागों में समुचित खाद एवं उर्वरक का प्रयोग नहीं करते हैं। बागों की जुताई करते समय आम की गिरी हुई पत्तियों एवं अन्य खरपतवारों को मिला देते हैं जिससे उत्पादन कम होता है। अच्छी उपज लेने के लिए बागों की दस साल की उम्र तक प्रतिवर्ष उम्र के गुणांक में नाइट्रोजन, पोटाश तथा फास्फोरस प्रत्येक को 100 ग्राम प्रति पेड़ जुलाई में पेड़ के चारों तरफ बनायी गयी नाली में देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मृदा की भौतिक एवं रासायनिक दशा में सुधार हेतु 25 से 30 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति पौधा देना उचित पाया गया है। जैविक खाद हेतु जुलाई–अगस्त में 250 ग्राम *एजोसपाइरिलम* को 40 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर थालों में डालने से उत्पादन में वृदि पाई गयी है।

वर्ष	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)	यूरिया (ग्राम)	सिंगल सुपर फास्फेट (ग्राम)	म्यूरेट आफ पोटाश (ग्राम)
1–3	2–5	200	300	150
4–10	10– 20	900	800	600
10 वर्ष बाद	50– 60	2000	3000	1600

सिंचाई का समय

छोटे पौधों को गर्मियों में 4–7 दिन के अन्तर से तथा ठंड में 10–12 दिन के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिए लेकिन फल वाले पेड़ों की अक्टूबर से जनवरी तक सिंचाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि कि अक्टूबर के बाद यदि भूमि में नमी अधिक रहती है तो फल कम आते हैं, तथा नई शाखाएं ज्यादा आ जाती है तथा जब पेड़ों में फल लगने लगे तो दो तीन सिंचाई करनी अति आवश्यक है। आम के बागों में पहली सिंचाई फल लगने के पश्चात दूसरी सिंचाई फलों का काँच की गोली के बराबर अवस्था में तथा तीसरी सिंचाई फलों की पूरी बढ़वार होने पर करनी चाहिए। प्रायः देखा गया है कि कृषक आम के बागों में सिंचाई समतल विधि से करते हैं जिससे पानी भी अधिक लगता है एवं सिंचाई पर व्यय भी अधिक होता है सिंचाई नालियों द्वारा थालों में ही करनी चाहिए जिससे कि पानी की बचत हो सके।

आम के पौधों के साथ अन्तराशस्य फसलें

आम के पेड़ों के बड़े होने तक उनके बीच काफी भूमि बिना उपयोग के रहती है। इसके उचित उपयोग हेतु पेड़ों के 8–10 वर्ष उम्र के होने तक अन्य फसलें उगाई जा सकती हैं। आरंभ में 3–4 वर्षों में जब पेड़ छोटे रहते हैं, उनके बीच खाली जगह में मूंग, लोबिया, फ्रेंचबिन, भिण्डी; फूलों में गेंदा तथा रजनीगंधा की फसल प्राप्त की जा सकती है। पेड़ों के बड़े होने पर जहां छाया के कारण धूप कम आती है वहाँ हल्दी, अदरक तथा अनन्नास की फसलें सफलतापूर्वक लगायी की जा सकती है अन्तराशस्य फसलों से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है, साथ ही भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ती है।

आम के पुराने वृक्षों का जीर्णोद्धार

पौधे का जीवन 50 वर्ष का होता है। पौधे की उम्र जैसे–जैसे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे पेड़ का मुख्य तना खोखला होता जाता है तथा शाखाएं आपस में मिल जाती हैं, तथा बहुत सघन हो जाती हैं आम के ऐसे पौधों में बारिश का पानी खोखली जगह में भर जाता है। जिससे सड़न व गलन की समस्या उत्पन्न होती है तथा, पौधे कमजोर हो जाते हैं और थोड़ी सी हवा में टूट जाते हैं, ऐसे में उपचार के लिए सबसे पहले सभी अनुत्पादक शाखाओं को हटा देना चाहिए 50 कि.ग्रा. अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद तथा 2.5 कि.ग्रा. नीम की खली प्रति पौधा देना चाहिए। जिससे अगले सीजन में लगी शाखाओं में वृद्धि होती है।

पौधे में फलों का आना

6–8 माह पुरानी शाखाओं में फरवरी माह में फूल पूर्ण रूप से विकसित होकर खिल जाते हैं।

रोग और नियंत्रण

आम के रोगों का प्रबन्धन कई प्रकार से करते हैं। जैसे कि पहला आम के बाग में पाउडरी मिल्ड्यू बीमारी लगती है जिसे खर्रा रोग भी कहते हैं। इनसे बचाने के लिए घुलनशील गंधक 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में या डाईनोकैप 1 मिली प्रति लीटर पानी घोलकर प्रथम छिड़काव बौर आने के तुरन्त बाद दूसरा छिड़काव 10 से 15 दिन बाद तथा तीसरा छिड़काव उसके 10 से 15 दिन बाद करना चाहिए। आम की फसल को एन्थ्रेक्नोज, फोमा ब्लाइट, डाईबैक तथा रेडरस्ट से बचाव के लिए कापर आक्सीक्लोराईड 3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तराल पर वर्षा ऋतु प्रारंभ होने पर दो छिड़काव तथा अक्टूबर–नवम्बर में 2–3 छिड़काव करना चाहिए। इसी प्रकार से आम में गुम्मा विकार या मालफार्मेशन भी बीमारी लगती है इसके उपचार के लिए कम प्रकोप वाले आम के बागों में जनवरी फरवरी माह में बौर को तोड़ दें एवम अधिक प्रकोप होने पर एन.ए.ए. 200 पी.पी.एम. रसायन की 900 मिली प्रति 200 लीटर पानी घोलकर छिड़काव करना चाहिये। कोयलिया रोग के नियंत्रण के लिए बोरेक्स 10 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर प्रथम छिड़काव फल लगने पर तथा दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

कीट और उनका नियंत्रण

आम की फसल में भुनगा, फुदका कीट, गुझिया कीट, आम की छाल खाने वाली सुंडी, डासी मक्खी तथा तना भेदक प्रमुख कीट लगते हैं। आम की फसल को फुदका कीट से बचाव के लिए एमिडाक्लोरपिड 0.3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर प्रथम छिड़काव फूल खिलने से पहले करते हैं। दूसरा छिड़काव जब फल मटर के दाने के बराबर हो जाये, तब कार्बरिल 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। इसी प्रकार से गुझिया कीट से बचाव के लिए दिसंबर माह के प्रथम सप्ताह में आम के तने के चारों ओर गहरी जुताई करें, तथा क्लोरोपाईरीफॉस चूर्ण 200 ग्राम प्रति पेड़ तने के चारों ओर बुरक दें, यदि कीट पेड़ पर चढ़ गए हों तो एमिडाक्लोरपिड 0.3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर जनवरी माह में 2 छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए तथा आम की छाल खाने वाली सुंडी तथा तना भेदक कीट के नियंत्रण के लिए डाइक्लोरवास 0.5 प्रतिशत रसायन के घोल में रूई को भिगोकर तने में किये गए छेद में डालकर छेद बंद कर देना चाहिए। इस प्रकार से ये सुंडी ख़त्म हो जाती है। आम की डॉसी मक्खी के नियंत्रण के लिए मिथाईलयूजीनाल ट्रैप का प्रयोग प्लाई लकड़ी के टुकड़े को अल्कोहल : मिथाईलयूजीनाल : मैलाथियान के 6:4:1 के अनुपात के घोल में 48 घंटे डुबोने के पश्चात पेड़ पर ट्रैप मई के प्रथम सप्ताह में लटका दें तथा ट्रैप को दो माह बाद बदल दें। एक हेक्टेयर के लिए 10 ट्रैप की आवश्यकता होती है।

फलों को तोड़ने का समय

आम के परिपक्व फलों की तुड़ाई 8 से 10 मिमी लम्बी डंठल के साथ करनी चाहिए, जिससे फलों पर स्टेम राट बीमारी लगने का खतरा नहीं रहता है। तुड़ाई के समय फलों को चोट व खरोंच न लगने दें तथा मिटटी के सम्पर्क से बचायें। आम के फलों का श्रेणीकरण उनकी प्रजाति, आकार, भार, रंग व परिपक्वता के आधार पर करना चाहिए।

आम का प्रति हेक्टेयर उत्पादन

एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में 10 × 10 मीटर में रोपण हेतु 100 पौधों की जरूरत पड़ती है। आम का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 90–100 क्विंटल है। जिससे किसान को लगभग 2.5–3.0 लाख की आमदनी हो जाती है।

आधुनिक विधि से बेर उत्पादन एवं प्रबंधन

लवकुश पाण्डेय[1], संजय पाठक[2], शिव पूजन[3] एवं रितेश सिंह[4]
[3]भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
[1,2,4]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

परिचय

बेर (*जिजिफस मारीशियाना*) भारत में पैदा होने वाले प्राचीन फलों में से एक है। सस्ता एवं लोकप्रिय फल होने के कारण इसे गरीबों की मेवा भी कहा जाता है। ग्रीष्मकालीन सुसुप्तावस्था, वर्षा के बाद पुष्पन एवं फलन शुरू होता हैं, इसे रेगिस्तानी फलों का राजा भी कहते हैं। बेर के फलों को मुख्यतः ताजे रूप में प्रयोग करने के साथ–साथ इसके फलों से कैंडी, स्क्वैश, बटर आदि भी बनाये जाते हैं। बेर में कार्बोहाइड्रट, विटामिन तथा खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके फल रक्त साफ करने एवं दस्त रोकने हेतु उपयोगी होते हैं। ऊसर, बंजर एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिये बेर एक वरदान है। भारत के अलावा बेर की खेती चीन, अफगानिस्तान, ईरान, सीरिया, म्यांमार, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, फ्रांस तथा संयुक्त राज्य अमेरिका सहित कई देशों में की जाती है। भारत में इसकी खेती राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में की जाती है। जिजिफस वंश के अन्तर्गत लगभग 40 प्रजातियां पाई जाती है। प्रायः भारतीय बेर को *जिजिफस मारीशियाना* एवं चायनीज बेर *जिजिफस जुजुवा* में वर्गीकृत किया गया है।

उन्नत प्रजातियाँ

देश में बेर की लगभग 125 से भी अधिक किस्में उगाई जाती हैं। इन किस्मों का विकास विभिन्न क्षेत्रों में फल के भौतिक तथा रासायनिक गुणों जैसे फल का रंग, आकार, वजन, मिठास व खटास की मात्रा के आधार पर चयन द्वारा किया गया है। ऐसी कुछ उन्नत किस्मों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :–

गोला

यह एक अगेती किस्म है। फल लगभग गोल, निचला सिरा कुछ चपटा, चमकीले पीले रंग के तथा सफेद गूदे वाले होते हैं। इनके फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 17–18 प्रतिशत पाये जाते हैं। यह लवणीय मृदाओं के लिये सहनशील है।

कैथली

यह कैथल (हरियाणा) से चयन किया गया है। फल आकार में बड़े होते हैं जिनका गूदा मुलायम होता है। इनमें 14–16 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ पाये जाते हैं। उपज लगभग 120 कि.ग्रा./वृक्ष, फल मध्य मार्च से अप्रैल के प्रारम्भ में पकते हैं।

बनारसी कड़ाका

उत्तर प्रदेश में उगाई जाने वाली प्रमुख किस्म है। फल का रंग हल्का पीला, सिरा हल्का नुकीला होता है। गूदे का रंग सफेद मीठा तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ लगभग 17 प्रतिशत होते हैं।

सेब

सेब के आकार की देर से तैयार होने वाली किस्म का गूदा हल्का क्रीम रंग का एवं काफी मीठा होता है। कुल घुलनशील ठोस पदार्थ लगभग 19 प्रतिशत होते हैं।

उमरान

यह देर से पकने वाली किस्म है। इसके फल बड़े आकार के होते हैं। फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा 18–19 प्रतिशत तक होती है। फलों की भण्डारण क्षमता अधिक होती है। इस किस्म की उपज 175–200 कि.ग्रा./वृक्ष तक हो जाती है।

सनौर–2

इसके फल जल्दी पकते हैं। फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 19–20 प्रतिशत तक होते हैं तथा विटामिन–सी की मात्रा 80 मि.ग्रां./100 ग्राम खाद्यांश में पायी जाती है।

हाल ही में गोधरा (गुजरात) से गोमा कीर्ती तथा केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर से थार सेविका

[1,3,4]शोध छात्र, [2]प्रोफेसर

तथा थार भुवराज किस्में विकसित की गयी हैं जो 70 कुन्तल/हे0 तक उपज देती है तथा सफेद चूर्ण फफूंद के लिए प्रतिरोधी हैं।

नरेन्द्र बेर सेलेक्सन-1

- वृक्ष वृहद एवं फैलावदार।
- फल लम्बा गोल, सतह चिकनी, रंग पीला हरा।
- देर से पकने वाली किस्म।
- फलोत्पादन 90–100 किलो ग्राम प्रति पेड़।

नरेन्द्र बेर सेलेक्सन-2

- वृक्ष वृहद एवं फैलावदार।
- फल का आकार बड़ा, सतह चिकनी रंग पीला–हरा।
- देर से पकने वाली किस्म।
- फलोत्पादन 80–90 किलोग्राम प्रति पेड़।

भूमि एवं जलवायु

बेर विभिन्न प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है परन्तु गहरी बलुई दोमट भूमि जो हल्की क्षारीय हो इसकी बागवानी के लिये सर्वोत्तम होती है। विभिन्न अनुसंधानों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि बेर को 9.2 पी–एच मान तक की मृदाओं में उगाया जा सकता है।

बेर को विभिन्न प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है किन्तु शुष्क व गर्म जलवायु में बेर अधिक स्वादिष्ट और गुणवत्तायुक्त होते हैं। पौधों की पत्तियां गर्मी में झड़ जाती है। अतः यह सूखे को भलीभांति सहन करने के सक्षम तथा फूल खिलने एवं फल बनने के समय अधिक आर्द्रता फलन के प्रतिकूल होती है। समुद्र तल से 900–1000 मीटर ऊँचाई तक इसकी अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

प्रवर्धन

भारत में अधिकांश बेर के पेड़ बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं, परन्तु ऐसे पेंड़ों से पैदावार कम तथा फलों की गुणवत्ता बहुत खराब होती है। इसलिये प्रवर्धन वानस्पतिक विधियों से करते हैं। वानस्पतिक विधियों में ढाल तथा छल्ला चश्मा इन दिनों बेर के लिए व्यावसायिक रूप ले चुका है, अतः इन्हीं विधियों को अपनाते हैं।

उत्तर भारत में *जिजिफस मारीशियाना* के जंगली पेंड़ों से गुठलियां लेकर मूलवृन्त हेतु पौधे तैयार किये जाते हैं। बेर के जातियों जैसे *जिजिफस रुगोसा, जिजिफस ओइनोप्लिया* अथवा *जिजिफस रोटन्डीफोलिया* के पौधे भी मूलवृन्त के उद्देश्य से लगाये जा सकते हैं। फलों से गुठली निकालने के बाद उन्हें एकत्र कर बोया जाता है। बीज कठोर होने के कारण देर से जमते हैं अतः बीज को 500 पी पी एम जिब्रेलिक अम्ल के घोल में 24 घंटे या सान्द्र गंधक अम्ल में 6 घंटे डुबाकर बोने से अंकुरण अधिक व शीघ्रता से होता है। बीजों के कठोर आवरण को तोड़कर बोने से वे एक सप्ताह में अंकुरित हो जाते हैं और यदि तोड़ा न जाये तो एक माह का समय लेते हैं।

बीजों को मार्च–अप्रैल में नर्सरी में 30 से.मी. की दूरी पर 2 से.मी. गहरा बोते हैं। सिंचित क्षेत्रों में जुलाई–अगस्त में उद्यान में निर्धारित स्थान पर लगाते हैं तथा वहां पर उनका कलिकायन कर देते हैं या नर्सरी में ही कलिकायन कर जनवरी में नंगी जड़ों के साथ रोपण करते हैं। केवल वर्षा पर आधारित क्षेत्रों में बीज 300 गेज की पालीथीन नलिका (25 से.मी. लम्बी व 10 से.मी. व्यास) में अप्रैल में बोते हैं। पौधों पर जुलाई में कलिकायन करते हैं। मूलवृन्त के तने की मोटाई पेन्सिल के बराबर हो जाने पर पौधा कलिकायन के योग्य माना जाता है। बेर में ढाल कलिकायन और छल्ला कलिकायन दोनों ही व्यवसायिक रूप से की जाती है। कलिकायन के लिये जून से लेकर अगस्त तक का समय उपयुक्त होता है।

रोपण

रोपण हेतु सर्वप्रथम खेत में 8×8 मीटर की दूरी पर 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे तैयार कर लेते हैं। गड्ढों में 20 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट तथा 1 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट मिलाकर भर देते हैं। पौधों को दीमक से बचाव के लिए 50 ग्राम क्यूनालफास धूल प्रति गड्ढा के दर से भरते समय डालते हैं। पौध रोपण का कार्य वर्षा शुरू होते ही जुलाई–अगस्त में किया जाता है। सिंचाई की समुचित सुविधा होने पर पौध रोपण का कार्य फरवरी–मार्च में भी किया जा सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

बेर आसानी से अनुपजाऊ भूमि में सफलतापूर्वक तैयार होने वाला वृक्ष है, परन्तु अच्छी वानस्पतिक वृद्धि एवं पैदावार के लिये खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करते हैं। पोषक तत्वों की मात्रा भूमि की किस्म एवं उर्वरता, पेड़ की उम्र तथा सिंचाई की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

उर्वरकों को दो बराबर भागों में बांटकर आधी मात्रा जून में तथा शेष आधी मात्रा सितम्बर–अक्टूबर में देते हैं। खाद देने के बाद सिंचाई करना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त यूरिया 1.0 प्रतिशत, जिंक सल्फेट 0.4 प्रतिशत, फेरस सल्फेट 0.4 प्रतिशत एवं बोरिक अम्ल के 0.2 प्रतिशत के पर्णीय छिड़काव से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई

नये पौधों को पानी की अधिक आवश्यकता होती है। जाड़े के मौसम में 15–20 दिन के अन्तर पर तथा गर्मी में 8–10 दिन के अन्तर पर सिंचाई कर दी जाती है। 3 साल के बाद सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाती है। काट–छांट के बाद तथा फल लगने के बाद पौधों की सिंचाई करना आवश्यक होता है, जिससे फलों का गिरना कम हो जाता है तथा फलों का आकार बढ़ जाने से उपज भी बढ़ जाती है। पौधों के थाले के चारों तरफ घास–फूस की पलवार बिछा देने से नमी संरक्षित रहती है तथा खरपतवार कम उगते हैं।

निराई-गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबंधन

पौधों की अच्छी बढ़वार एवं मृदा तत्वों के द्वारा रोकने के लिये पौधों के आस–पास के खरपतवार निकालते रहते हैं। जब पौधे बड़े हो जाते हैं तो थाले की निराई–गुड़ाई करके उसे साफ रखते हैं या पूरे बाग में 2–3 जुताइयां प्रति वर्ष करते हैं। बाग में ग्लाइफोसेट के 4 किग्रा./हेक्टेयर सक्रिय पदार्थ के छिड़काव से खरपतवारों की संख्या में कमी आती है।

काट-छांट

बेर के पेड़ों को उचित ढांचा प्रदान करने एवं अच्छे किस्म के अधिक फल लेने के लिये आवश्यक है कि उनकी नियमित काट–छांट की जाये। बेर पर फल नई शाखाओं पर ही आते हैं अतः काट–छांट और भी आवश्यक हो जाती है। कटाई–छंटाई करने का सबसे उपयुक्त समय अप्रैल–मई माह होता है, क्योंकि इस समय पौधे सुसुप्तावस्था में रहते हैं, जिससे उनके कोशा–रस को नुकसान नहीं होता है। पुरानी शाखाओं का लगभग 50–60 प्रतिशत भाग काट देते हैं तथा कटे भाग पर ब्लू कापर या ब्लाइटाक्स–50 का लेप लगा देते हैं।

पादप नियंत्रकों का प्रयोग

फलत बढ़ाने और अपरिपक्व फलों को गिरने से रोकने के लिये पादप नियंत्रकों का प्रयोग बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। 80 पी पी एम जिब्रेलिक अम्ल के 2 छिड़काव अक्टूबर एवं दिसम्बर के प्रारम्भ में करने से काफी लाभ होता है। इसी प्रकार एन ए ए (5–25 पी पी एम) का छिड़काव फलन प्रारम्भ होने पर करने से फलों के आकार एवं गुणवत्ता में वृद्धि हो जाती है। उमरान किस्म में फलों के रंग परिवर्तन के समय 400 या 500 पी पी एम इथराल के छिड़काव करने से फल दो सप्ताह पहले पक जाते हैं तथा फलों की गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।

पुष्पन एवं फलन

बेर में 2 से 3 वर्ष की आयु में ही फूल आना प्रारम्भ हो जाते हैं परन्तु 5–6 वर्ष की उम्र के पौधे से फलत लेना चाहिए। फूल नई शाखा पर पत्तियों के कक्ष में आते हैं। बेर में फूल सितम्बर माह से अक्टूबर माह तक आते हैं। दक्षिण भारत में फूल मई–जून में ही आ जाते हैं। फूल नर एवं उभयलिंगी होते हैं। बेर में पर–परागण मुख्यतः

(चित्र संख्या– 1) पुष्पन

(चित्र संख्या– 2) फलन

मधुमक्खियों द्वारा होता है। पुष्प निकलने से लेकर फल बनने तक लगभग 25–27 दिन का समय लग जाता है।

तुड़ाई एवं उपज

किस्मों के अनुसार उत्तर भारत में फल फरवरी से अप्रैल तक प्राप्त होते हैं। अगेती किस्में फरवरी में पकने लगती है जबकि कुछ पछेती किस्में अप्रैल तक पकती हैं। फूल खिलने से लगभग 120–150 दिन बाद फल तोड़ने योग्य हो जाते हैं। फलों को उस समय तोड़ा जाता है जब उनका रंग हरा से सुनहरा पीला या पीला पड़ने लगे। एक पूर्ण विकसित पेड़ से 100–200 कि.ग्रा. तक फलों की उपज प्राप्त हो जाती है।

भण्डारण

बेर के फलों को 10–12 डिग्री सें. तापमान और 85–90 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर अथवा पैराफीन मोम की पर्त चढ़ाकर 10–12 डिग्री सें. तापमान पर 18 दिनों तक भंडारित किया जा सकता है।

पादप सुरक्षा

कीट

बेर में लगने वाले प्रमुख कीट निम्नलिखित हैं :–

1. फल मक्खी

इस कीट का प्रकोप फूल से फल बनने की अवस्था पर होता है। यह फल की सतह के नीचे अण्डे देती हैं। इससे निकलने वाला गिडार फल के अन्दर गूदा खाना प्रारम्भ करता है। फलस्वरूप पूरा फल अन्दर से सड़कर खराब हो जाता है। फल बाहर से देखने में टेंढ़ा–मेढ़ा दिखाई देता है। उत्तरी भारत में लगभग 80 प्रतिशत फल इससे प्रभावित होते हैं।

नियंत्रण

1. प्रभावित फलों को इकट्ठा कर मिट्टी में दबा देते हैं।
2. 0.3 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास का छिड़काव फूल से फल बनते समय तथा दूसरा छिड़काव 0.05 प्रतिशत फेनथियान तथा तीसरा छिड़काव 0.1 प्रतिशत कार्बेरिल का करते हैं। छिड़काव करते समय 0.5 प्रतिशत की दर से शीरा भी मिलाते हैं। प्रत्येक छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करते हैं।
3. काठा, टिकाड़ी, देधिया व महरून ऐसी प्रतिरोधी किस्में उगाते हैं।

2. छाल भक्षक कीट

यह कीट पौधे की छाल को खाकर नुकसान पहुंचाता है तथा तने में छेद बनाकर रहता है। इसके खाये हुए छाल के अवशेष गोली की तरह लड़ियों के रूप में लटकते रहते हैं। इसके आक्रमण से पौधे की बढ़वार प्रभावित होती है तथा उपज भी कम प्राप्त होती है। इसका नियंत्रण निम्न प्रकार करते हैं।

3. बेर भृंग

इस कीट का प्रौढ़ बहुत नुकसान पहुंचाता है। यदि पत्तियों को खाकर छलनी कर देता है, जिससे पौधे की वृद्धि एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसका प्रकोप वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) में अधिक होता है। इसके नियंत्रण हेतु मोनोक्रोटोफास 0.03 प्रतिशत घोल का छिड़काव वृक्षों पर करते हैं।

रोग

1. चूर्णिल आसिता

यह रोग *ओडियम जिजिफी* कवक से फैलता है। बेर को सबसे अधिक हानि इसी रोग से होती है। पत्ती, पुष्प एवं फलों पर सफेद चूर्ण का आवरण सा बन जाता है, वृद्धि

रूक जाती है तथा फल बिना विकसित हुये गिरने लगते हैं। इसका प्रभाव अक्टूबर से दिसम्बर के बीच दिखता है। इसकी रोकथाम हेतु केरोथेन 0.1 प्रतिशत (1.0 मिलीलीटर) घोल अथवा घुलनशील गन्धक 0.2 प्रतिशत (2.0 ग्राम/लीटर) घोल का छिड़काव करते हैं। किस्म इलायची इस रोग के प्रति सहनशील पाई गई है।

2. काला धब्बा

आइसेरियोपसिस जिजिफी नामक कवक से होने वाले इस रोग के प्रभाव से पत्तियों की निचली सतह पर सितम्बर–दिसम्बर में काले धब्बे बनते हैं। पत्तियां पेड़ से गिर जाती है तथा उपज प्रभावित होती है। इस रोग के नियंत्रण के लिये डाईथेन जेड–78 के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव करते हैं।

❀❀❀❀

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के प्रसिद्ध कवि थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में वे खड़ी बोली के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कृति भारत–भारती (1912) भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के समय में काफी प्रभावशाली सिद्ध हुई थी और इसी कारण महात्मा गांधी ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' की पदवी भी दी थी। उनकी जयन्ती 3 अगस्त को हर वर्ष 'कवि दिवस' के रूप में मनाया जाता है। सन 1954 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया।

फलों के अपशिष्ट का निस्तारण तथा आर्थिक उपयोग

डॉ. अजय कुमार त्रिवेदी[1]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

बागवानी में फलों, सब्जियों, पुष्पों, सजावटी पौधों तथा औषधीय एवं सगंध पौधों की खेती, प्रसंस्करण, विक्रय एवं अन्य सम्बंधित कार्य किये जाते हैं। फल, सब्जी एवं पुष्प शीघ्र ख़राब (पेरीशेबल) होने के करण बागवानी में इनका अपशिष्ट बहुत अधिक मात्र में निकलता है। बागवानी की फसलों में पोषक तत्व, एंटीऑक्सीडेंट (प्रतिउपचायक/ऑक्सीकरणरोधी), विटामिन्स, खनिज तत्व, रेशा (फाइबर) एवं द्वितीयक मेटाबोलाइट्स आदि प्रचुर मात्र में पाए जाते हैं। इसके साथ ही बागवानी के दैनिक कार्यों में सूखी पत्तियां, टहनियां व गिरे हुए फूल, फल भी अपशिष्ट का निर्माण करते हैं। भारत में बागवानी के उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा, लगभग 25% भाग नष्ट हो जाता है। उचित शीत संग्रहण व शीत श्रंखला प्रबंधन के अथवा में एकत्रित फल व सब्जियों का 20–40% तक भाग सड जाता है। फल व सब्जियों के प्रसंस्करण में कमी के चलते अधिक मात्रा में अपशिष्ट का निर्माण होता है। बागवानी अपशिष्ट के प्रबंधन में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य उसका जैविक अपघटन होने की क्षमता है। फूल, फल तथा कोमल पत्तियों का अपघटन शीघ्रता से होता है लेकिन टहनियों, मोटी पत्तियों, फलों के छिलके या खोल आदि का अपघटन धीमी गति से होता है। जैविक अपघटन की प्रक्रिया में जैव रासायनिक क्रियाएँ, जीवाणु, फफूंद तथा मृतोपजीवी जीव महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रक्रिया में कई प्रकार के जीवाणुवों की उपस्थिति मानव जीवन के लिए रोगजनक भी होती है। अतः अपघटन के लिए उपयोग की जाने वाली किसी भी तकनीक के उपयोग से पूर्व, अपशिष्ट की प्रकृति एवं परिस्थितियों का आंकलन कर लेना चाहिए, साथ ही अपघटन के उपरान्त बनने वाले यौगिकों, अवयवों का पूर्वानुमान भी कर लेना चाहिए।

सामान्यतः अपशिष्ट को अनुपयोगी माना जाता है लेकिन जैव अपघटन प्रकृति के कारण बागवानी अपशिष्ट उपयोगी होता है। भौतिक रूप से अपशिष्ट के दो रूप होते हैं ठोस एवं तरल। बागवानी अपशिष्ट सामान्यतः ठोस प्रकृति का होता है। ठोस अपशिष्ट में भी टहनियां, शाखाएं, तना आदि का अपशिष्ट कठोर अवस्था में होता है जबकि फूल, पत्तियां आदि का कोमल रूप में होता हैं। इसी तरह रासायनिक रूप से बागवानी अपशिष्ट मुख्यतः तीन तरह के होते हैं, सरल शर्करा एवं शर्करा (कार्बोहाइड्रेट्स) के बहुलक, लिग्निन (काष्ठ द्रव्य) तथा नत्रजन यौगिक। अपशिष्ट निष्पादन हेतु बागवानी अपशिष्ट की प्रकृति के साथ साथ कार्बन/नत्रजन अनुपात भी महत्वपूर्ण होता है। कार्बन युक्त भाग मुख्यतः उर्जा श्रोत के रूप में उपयोगी होता है। नत्रजन युक्त भाग जैविक अपघटन में सूक्ष्म जीवियों की संख्या के निर्धारण में उपयोगी होता है। नमी के आधार पर बागवानी अपशिष्ट दो प्रकार के होते हैं–हरा अपशिष्ट एवं भूरा या सूखा अपशिष्ट। हरी पत्तियों, घास आदि से निर्मित अपशिष्ट हरा अपशिष्ट होता है इसमें नत्रजन तत्त्व का अनुपात अधिक होता है। सूखी पत्तियों, सूखी घास, टहनियों आदि से निर्मित अपशिष्ट भूरा अपशिष्ट होता है इसमें कार्बन तत्त्व की मात्रा अधिक होती है। फलों व सब्जियों के उत्पादन में थोक, खुदरा तथा उपभोक्ता स्तर पर अपशिष्ट के रूप में 30% से अधिक नुकसान होता है। कटाई, तुड़ाई के पश्चात् प्रसंस्करण के विभिन्न चरणों में भी अत्यधिक मात्र में अपशिष्ट उत्पन्न होता है।

बागवानी अपशिष्ट प्रबंधन

फलों के उत्पादन, वितरण एवं प्रसंस्करण के विविध चरणों में अपशिष्ट की प्रकृति व प्रकार में भिन्नता होती है अतः अलग–अलग तरह के अपशिष्ट के निष्पादन हेतु भिन्न–भिन्न प्रबन्धन तरीकों की आवश्यकता होती है।

[1]प्रधान वैज्ञानिक

बागवानी उत्पादन के समय अपशिष्ट निस्तारण

बागवानी के उत्पादन स्तर पर अपशिष्ट की मात्रा व प्रकृति उत्पादन में प्रयुक्त तकनीक, उत्पादकता व फसल के प्रकार पर निर्भर करती है। उत्पादन के समय ही अनावश्यक अपशिष्ट की उत्पति को न्यून स्तर पर रखना चाहिये। यदि अपशिष्ट की मात्रा बहुत कम है तो इसे प्राकृतिक अपघटन हेतु छोड़ा जा सकता है क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से फलों के अपशिष्ट के जैव अपघटन की अवधि कम होती है। अपशिष्ट अगर अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है तब अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली की आवश्यकता होती है।

अपशिष्ट एकत्रीकरण

बागवानी अपशिष्ट को उसके उत्पति केन्द्र पर ही एकत्रित किया जा सकता है या संग्रहण स्थल पर एकत्रण हेतु ले जाया जा सकता है। अपशिष्ट प्रबंधन में संग्रहण की विधि, संग्रहण स्थलों की स्थिति, संग्रहण की समयावधि, आवश्यक श्रम या संरचनात्मक सुविधाएं, घटकों का प्रबन्धन, लागत तथा अपशिष्ट निरन्तरता पर एकत्रीकरण के प्रभाव की जाँच पूर्व में ही कर लेनी चाहिये।

अपशिष्ट संग्रहण

यह एक अस्थायी व्यवस्था होती है। अपशिष्ट प्रंबधन के इस चरण में निर्धारित समय में नियंत्रित ढंग से अपशिष्ट संग्रहण किया जाता है। अपशिष्ट संग्रहण में भण्डारण समयावधि, अनुमानित भण्डारण मात्रा, भण्डारण सुविधा, स्थान, लागत तथा अपशिष्ट निरन्तरता पर संग्रहण के प्रभाव की जानकारी आवश्यक होती है।

अपशिष्ट का उपचार

अपशिष्ट के प्रदूषण की रोकथाम हेतु भौतिक, रासायनिक व जैविक उपचार किये जाते हैं। इसमें प्राथमिक स्तर पर किये जाने वाले कार्य भी शामिल होते हैं जैसे कि ठोस अपशिष्ट (कंकर, पत्थर, मिट्टी) का पृथक्करण। उपचार विधि के चयन से पूर्व अपशिष्ट का विश्लेषण कर अपशिष्ट की विशेषताओं का निर्धारण, उपचार विधि, अनुमानित मात्रा आदि के विषय में जानकारी ले लेना चाहिये।

अपशिष्ट का स्थानान्तरण

इस चरण में अपशिष्ट को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। इसमें संग्रहण बिन्दु से भंडारण सुविधा व उपयोग स्थल तक पहुँचाया जाना शामिल है। सान्द्रता के आधार पर अपशिष्ट को ठोस अथवा स्लरी (घोल) के रूप में स्थानान्तरित किया जाता है। पूर्व चरणों की भांति स्थानान्तरण व्यवस्था के चयन से पूर्व अपशिष्ट की निरन्तरता, स्थानान्तरण की विधि दो बिन्दुओं के बीच की दूरी, पुनरावृति, समयावधि, आवश्यक उपकरण एवं प्रणाली की लागत व प्रबंधन का विश्लेषण कर लेना चाहिए।

बागवानी अपशिष्ट के प्रबंधन की विधियाँ

बागवानी अपशिष्ट का प्रबंधन अनेक प्रक्रियाओं द्वारा किया जा सकता है परन्तु सर्वोत्तम विकल्प बागवानी के प्रत्येक स्तर पर अपशिष्ट की मात्रा में कटौती, पुनः उपयोग, पुनःचक्रण तत्पश्चात निस्तारण होता है।

(1) अपशिष्ट में कटौती

जितना संभव हो स्त्रोत पर ही अपशिष्ट को छोड़ना तथा उपयोग करना एक अच्छा विकल्प है। जैसे बागवानी स्थल पर ही उपज के अनुपयोगी भाग को अलग करना तथा मिट्टी के कणों को अलग कर बचे हुए अवशेष को वही छोड़ना जिससे उस स्थल की मृदा में गुणात्मक वृद्धि हो। जैव अपशिाष्ट को उपयुक्त विधि से सड़ाकर अथवा गलाकर पुनः चक्रण हेतु व्यवस्थित कर देना चाहिये। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि अवशेष में किसी प्रकार के जहरीले पदार्थ (रासायनिक, कीटनाशक, पेस्टीसाइड आदि) अथवा रोग जनित उपज का सम्मिश्रण न हो। इनकी उपस्थिति होने पर उचित निष्पादन विधि का ही प्रयोग करना चाहिए।

(2) अपशिष्ट का पुनः उपयोग, पुनःचक्रण, पुनः प्राप्ति

बागवानी अपशिष्ट के जैव अपघटन की प्राकृतिक विधि का लाभ लेकर अपशिष्ट का पुनःचक्रण कर उपयोगी बनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ जैव अपशिष्ट को छोटे पौधों के वृद्धि–संवर्धन मीडिया, पलवार, मिट्टी उपचार, हरी उर्वरा आदि के रूप मे पुनः उपयोगी/पुनःचक्रित किया जा सकता है।

(3) बागवानी अपशिष्ट का निस्तारण

अगर कटौती या पुनः उपयोग/पुनःचक्रण संभव न हों तो उस दशा में बागवानी अपशिष्ट का उपयुक्त विधि से निस्तारण ही एकमात्र विकल्प है। निस्तारण हेतु उपयुक्त स्थल के चयन में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। पर्यावरण एजेंसी द्वारा अनुज्ञा पत्र प्राप्त कर उचित विधि से निस्तारण करना चाहिये। निस्तारण तकनीक द्वारा उपचारित अपशिष्ट को विपणन योग्य भी बनाया जा सकता है।

(4) बागवानी अपशिष्ट का उपयोग

बागवानी का कुछ अपशिष्ट बहुत ही उपयोगी होता है ऐसे अपशिष्ट का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जा सकता है जैसे कि ऊर्जा, पशु आहार, कार्बनिक पदार्थ, पौधों हेतु पोषक तत्व तथा क्रियाशील पोषक दृव्य आदि तैयार करने में।

बागवानी अपशिष्ट के कुछ प्रमुख उपयोग

(क) पलवार

बागवानी से उत्पन्न वानस्पतिक अपशिष्ट में विशेषकर पत्तियों व घास का अनुपात अधिक होता है। इसे पलवार के रूप में उपयोग करने में इसकी मोटाई 3–5 सेमी रखी जाती है। पलवार धीरे–धीरे खाद बन जाता है। अतः वर्ष में एक या दो बार नया पलवार बिछानें से बागवानी अपशिष्ट का उपयोग करके खरपतवार की समस्या भी कम हो जाती है तथा इस पलवार के गलने पर भूमि को पुनः पोषक तत्व मिल जाते हैं। पलवार हेतु बीज रहित, रोग रहित घास–पत्ते की अधिकता वाले बागवानी अपशिष्ट को उपयोग में लाना चाहिए।

(ख) हस्तनिर्मित कागज

बागवानी अपशिष्ट से कागज निर्माण करना इसके उपयोग का एक अच्छा विकल्प है। लखनऊ की सीतापुर रोड फल मंडी व दुबग्गा की फल मंडी में प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में अपशिष्ट उत्पन्न होता है जिसमे सूखे पत्ते, छोटी–छोटी डंठल, फल एवं फलों के तुकडे आदि प्रमुख होते हैं। केले की अत्यधिक खपत के कारण इन मंडियों में प्रतिदिन केले के अवशेषों का अपशिष्ट बहुतायत में उत्पन्न होता है। केले के अवशेष, कागज एवं इसी प्रकार के अन्य सामान बनाने में अत्यन्त अपयोगी होते है। अतः कागज निर्माण उद्योग में पौधों के सीधे उपयोग के विकल्प के रूप में बागवानी अपशिष्ट के उपयोग से अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है।

(ग) पशु आहार

बागवानी अपशिष्ट को पशु आहार के रूप में भी तैयार किया जा सकता है। जो फल खाने योग्य नहीं है या खट्टे हैं ऐसे फलों के अवशेष से पशुओं हेतु उत्तम आहार का निर्माण किया जा सकता है। जुगाली करने वाले पशुओं के लिए फलों के अवशेष का आहार उत्तम होता है। केले के अवशेष जुगाली करने वाले पशुओं हेतु उत्तम पूरक आहार के रूप में उपयोगी होते हैं।

(घ) क्रियाशील पोषक दृव्य

बगवानी अपशिष्ट में विशेषकर फलों के अवशेष में विभिन्न प्रकार के क्रियाशील यौगिक तथा तत्वों की बहुलता होती है। इससे खाद्य सामग्री के पूरक, पोषक तत्वों की दवा (न्यूट्रास्युटिकल) तथा अन्य क्रियाशील दृव्यो को तैयार किया जा सकता है। फलों के अवशेष, बीज व डण्ठल में एण्टीआक्सीडेंट (फीनोलिक अम्ल, क्वेरसिंटन, फ्लेवेनोइड, फाइटोइलेक्सिन व रेसवेराटोल आदि) की प्रचुरता होती है। फलों के अवशेष में व्याप्त पदार्थो से कई प्रकार की औषधियों का निर्माण् किया जा सकता है। क्रियाशील पदार्थो के निष्कर्षण तैयार करने में यह ध्यान रखना चाहिए कि निष्कर्षण आर्थिक रूप से लाभकारी हो।

(ड़) प्राकृतिक रंग

फलों के अवशेषों से प्राकृतिक रंग निकालने का भी कार्य किया जा सकता है। सुरक्षित भोज्य पदार्थो के निर्माण में इन रंगो का उपयोग महत्वपूर्ण होता है। एंथोसायनिन, केरोटनोइड, क्लोरोफिल, ल्यूटीन, बीटालेन व अन्य प्राकृतिक रंग फलों में विभिन्न रूपों में मिलते हैं, जिन्हें मनुष्यों व अन्य जीवों द्वारा भोजन में ग्रहण किया जाता है। पांरपरिक व नए तरीकों के माध्यक से इन प्राकृतिक रंगो का निष्कर्षण कर उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान समय में उन्नत तकनीकों के उपयोग से फलों से

उत्पन्न अवशेष से प्राकृतिक रंगो का उत्पादन और अधिक आसान हो गया है।

(च) कम्पोस्टिंग

बगवानी अपशिष्ट से किसी भी विधि अथवा तकनीक के द्वारा प्राकृतिक कार्बनिक जैविक खाद के निर्माण की प्रक्रिया को कम्पोस्टिंग (वनस्पति खाद निर्माण) कहते हे। कम्पोस्टिंग में फसल अवशेष व गोबर की अलग–अलग परत बनाकर या मिलाकर जमीन के अन्दर गड्ढा बनाकर या जमीन के ऊपर ईटों की चार दीवार बनाकर नाडेप विधि द्वारा खाद बनाई जा सकती है। जैसे–जैसे फसल अवशेष व गोबर उपलब्ध होता है गड्ढे में इनकी परत लगातें जाते है और अन्त में गड्ढा भरने पर मिट्टी के लेप से इसे बन्द कर देते है। कुछ दिन बाद खाद बनकर तैयार हो जाती है। खाद निर्माण ऐसे स्थान पर करना चाहिए जहाँ जल इकट्ठा न होता हो, खाद बनाने का स्थान छायादार हो तो और भी अच्छा है साथ ही खाद को पलटने व तापमान का सीमा से अधिक न होने देने का ध्यान रखना चाहिये।

(छ) वर्मी तकनीक

केचुओं द्वारा बागवानी अपशिष्ट का अपघटन करने की विधि को वर्मी तकनीक कहा जाता है। केंचुए जैव अपशिष्ट के जटिल घटकों को सरल अणुओं में परिवर्तित कर मिट्टी की उर्वरकता को बनाये रखते है। केचुआ फल अपशिष्ट का भोजन के रूप में उपयोग कर पचे हुए जैव–अपशिष्ट का उत्सर्जन करता है जिसे "कृमिकास्ट" कहा जाता है। कृमिकास्ट को 'काला सोना' भी कहते हैं जो पोषक तत्वों, वृद्वि संवर्धन पदार्थ, उपयोगी मृदा, सूक्ष्म वनस्पति व रोगजनक जीवाणु निषेद्वक पदार्थ युक्त होता है। कृमिकास्ट पीट जैसा पदार्थ होता है जिसकी संरचना, संरध्रता वायवीय विनिमय, जल व आर्द्वता धारण क्षमता उच्च कोटि की होती है। हुमिक अम्ल इसका एक महत्वपूर्ण घटक है। इसके अतिरिक्त कृमिकास्ट का महत्वपूर्ण गुण इसके द्वारा पौधों हेतु उपयोगी पोषक तत्वों को धीमी गति से मुक्त करना होता है।

(ज) जैव ऊर्जा

बगवानी उपज में फलों का एक बड़ा भाग व्यर्थ हो जाता है जिसका अधिकांश हिस्सा खुले में सड़ने के लिए फ़ेंक दिया जाता है। इससे न केवल आसपास के वातावरण में प्रदूषण फैलता है अपितु यह कई प्रकार के रोगजनित जीवाणुओ व बड़ें जन्तुओं (पशु–पक्षियों) को आमन्त्रित कर महामारी फैलाने वाले जीवों की उत्पति का कारण बनता है। बागवानी अपशिष्ट का उपयोग जैविक ऊर्जा के रूप में भी लाभदायक होता है। बागवानी के अपशिष्ट को नियन्त्रित स्थितियों में किण्वन के माध्यम से जैव ईधन के निर्माण में उपयोग किया जा सकता है। सूचकों के आधार पर इनकी गुणवत्ता की जाँच भी की जा सकती है।

(झ) जैविक गैस

सूक्ष्मजीवों की क्रियाओं द्वारा अवायवीय पाचन से उत्पन्न जैविक गैस/बायोमीथेन, पर्यावरण–मित्र अक्षय ऊर्जा का एक अत्यन्त सस्ता विकल्प है। सामान्यतः बायोगैस 45–70% मीथेन, 30–45% कार्बन डाइआक्साइड 0.5–1.0% हाइड्रोजन सल्फाइड, 1–5% जल वाष्प और अन्य गैसों (हाइड्रोजन, अमोनिया, नाइट्रोजन आदि) का सम्मिश्रण होता है। बायोगैस निर्माण सूक्ष्मजीवों द्वारा श्रृखला बद्ध अवायवीय क्रियाओं के द्वारा अलग–अलग चरणों में पूर्ण होता है जिनमें हाइड्रोलिसिस, एसिड़ोजेनेसिस, एसिटोजेनेसिस और मीथेनोजेनेसिस आदि क्रियाएं प्रमुख होती हैं।

(ञ) बायोइथेनाल

फल प्रसंस्करण उद्योग के अवशेष बहुशर्करा यौगिकों (सेल्यूलोस, अर्ध–सेल्यूलोस व लिग्निन) से युक्त होते हैं। जिनमें किण्वन के माध्यम से इथेनाल व ब्यूटेनाल का उत्पादन किया जा सकता है। कई उद्योगों में इनका उपयोग विलायक तथा तरल ईधन के पूरक के रूप में किया जाता है।

अतः फलों के अपशिष्ट को अनुपयोगी कचरे की तरह फेकने के बजाय उसका विभिन्न विधियों द्वारा उपयोग करके आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है। फलों के अपशिष्ट का उचित उपयोग करके "व्यर्थ से अर्थ" का व्यवसाय स्थापित करना इसके प्रबंधन का पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी अनुकूल, आर्थिक रूप से संभव तथा टिकाऊ विकल्प हो सकता है।

फल मंडी के बाहर पड़े हुए फल अपशिष्ट के ढेर

❁❁❁❁

रबीन्द्रनाथ टैगोर

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार, दार्शनिक और भारतीय साहित्य के नोबल पुरस्कार विजेता हैं। उन्हें गुरुदेव के नाम से भी जाना जाता है। बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान फूँकने वाले युगदृष्टा वे ही थे। उनकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं–भारत का राष्ट्र–गान 'जन गण मन' और बाँग्लादेश का राष्ट्रीय गान 'आमार सोनार बांङ्ला' गुरुदेव की ही रचनाएँ हैं।

संस्थान में राजभाषा गतिविधियाँ (2022)

अरविन्द कुमार[1]
भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ

विश्व हिंदी दिवस

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन की वर्षगांठ की स्मृति में विश्व हिंदी दिवस का आयोजन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा 10 जनवरी 2022 को आभासी माध्यम से किया गया इस अवसर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के महानिदेशक एवं सचिव डेयर, नई दिल्ली डॉ. त्रिलोचन मोहपात्रा जी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए बताया कि उत्तर भारत में स्थित परिषद के संस्थानों द्वारा वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान को हिंदी माध्यम से लोगों तक पहुँचाया जा रहा है साथ ही गैर हिंदी भाषी राज्यों में स्थित परिषद के संस्थानों द्वारा वहाँ की स्थानीय भाषा में भी किसानों तक पहुँचाया जा रहा है। इस अवसर पर कार्यक्रम के मुख्य वक्ता महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के पूर्व प्रति–कुलपति प्राध्यापक ए. अरविंदाक्षन ने कहा कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में मंजूरी मिले तो हिंदी का प्रभाव बढ़ेगा। भाकृअनुप–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान में उपरोक्त कार्यक्रम हेतु संस्थान की निदेशिका द्वारा नामित सदस्यों सहित अन्य कर्मियों ने भी आनलाईन प्रतिभाग किया।

विश्व हिंदी दिवस के अवसर पर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के महानिदेशक एवं सचिव डेयर, नई दिल्ली डॉ. त्रिलोचन मोहपात्रा जी का आनलाईन संबोधन।

[1]सहा.मु. तकनीकी अधिकारी

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने उक्त अवधि में चार बैठकों का आयोजन कर संस्थान में राजभाषा को बढ़ावा देने पर बल दिया गया। संस्थान के नोटिस बोर्ड, मोहरें, प्रयोगशालाओं के दरवाजों पर नाम पट्टिकाओं को द्विभाषी करना, 'क' क्षेत्र में हिन्दी के पत्रों का प्रतिशत बढ़ाना, द्विभाषी पत्रों को बढ़ाना, हिन्दी की पुस्तकों को क्रय करना एवं हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन करना आदि सबंधित निर्णयों के कार्यान्वयन हेतु चार बैठकों का आयोजन क्रमशः दिनांक 29.03.2022, 29.06.2022, 31.08.2022 एवं 06.12.2022 में किया गया।

हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन

संस्थान के निदेशक एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष की अध्यक्षता में उक्त अवधि में पाँच कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। दिनांक 26.03.2022 को गाय आधारित प्राकृतिक खेती विषय पर कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमे संस्थान के डॉ. सुशील कुमार शुक्ला, प्रधान वैज्ञानिक द्वारा व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। दिनांक 23.06.2022 को फलोत्पादन में जैविक खेती की उपयोगिता विषय पर आयोजित कार्यशाला में संस्थान के डॉ. राम अवध राम, प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, फसल उत्पादन द्वारा व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। दिनांक 18.08.2022 को गाजर घास के उन्मूलन विषय पर आयोजित कार्यशाला में संस्थान के डॉ. सुशील कुमार शुक्ला, प्रधान वैज्ञानिक द्वारा व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। दिनांक 05.09.2022 को शिक्षक दिवस के अवसर पर औद्यानिक बंधुत्व द्वारा राष्ट्र निर्माण में योगदान विषय पर हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के पूर्व निदेशक डॉ. राम कृपाल पाठक ने व्याख्यान प्रस्तुत किया। दिनांक 15.12.2022 को ''कृषि आधारित खाद्य उद्योगों के लिए केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान दारा विकसित उन्नत प्रौद्योगिकियाँ'' विषय पर आयोजित वैज्ञानिक हिंदी

कार्यशाला में डॉ. पदम प्रकाश गोथवाल, वैज्ञानिक–जी एवं केन्द्राध्यक्ष,सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, संसाधन केन्द्र, लखनऊ द्वारा व्याख्यान प्रस्तुत किया गया। उपरोक्त सभी कार्यशालाओं में संस्थान के 146 वैज्ञानिक/अधिकारी एवं 39 कर्मचारियों ने प्रतिभाग किया।

गाय आधारित प्राकृतिक खेती विषय पर कार्यशाला का आयोजन (26.03.2022)

फलोत्पादन में जैविक खेती की उपयोगिता विषय पर कार्यशाला का आयोजन (23.06.2022)

कृषि आधारित खाद्य उद्योगों के लिए केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित उन्नत प्रौद्योगिकियाँ विषय पर आयोजित वैज्ञानिक हिंदी कार्यशाला का आयोजन (15.12.2022)

व्यक्तिशः आदेश जारी करना

राजभाषा नियमावली 1976 के नियम 8(4)के अनुसार अपना समस्त कार्य हिंदी में करने के लिए संस्थान के 13 हिंदी में प्रवीणता/कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अध्यक्ष राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा व्यक्तिशः अदेश जारी किए गए।

छमाही बैठकों में प्रतिभाग

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास) कार्यालय–2, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, लखनऊ द्वारा आयोजित प्रथम छमाही बैठक दिनांक 17.05.2022 एवं द्वितीय छमाही बैठक दिनांक 29.11.2022 में संस्थान ने प्रतिभाग किया तथा समीक्षित बिन्दुओं का पालन संस्थान में किया गया।

भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, लखनऊ (नराकास कार्यालय–2) द्वारा आयोजित छमाही बैठक में प्रतिभाग

ऑनलाईन गहन हिंदी कार्यशालाओं में प्रतिभाग

संस्थान ने केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आयोजित ऑनलाईन गहन हिंदी कार्यशालाओं में प्रतिभाग करने हेतु गैर हिंदी भाषी राज्यों के संस्थान में कार्यरत् 6 वैज्ञानिकों को नामित किया जिससे वे हिंदी में उत्साहपूर्वक कार्य कर सकें।

राजभाषा कार्यान्वयन संबधी त्रैमासिक एवं छमाही प्रतिवेदनों का प्रेषण

संस्थान ने केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आयोजित ऑनलाईन गहन हिंदी कार्यशालाओं में प्रतिभाग, संस्थान के विभिन्न विभागों/अनुभागों द्वारा हिंदी में किये जा रहे कार्यों की प्रगति निर्धारित प्रोफार्मा में भरकर प्रत्येक त्रैमास एवं छमाही पर मांगी गयी तथा

सभी विभागों/अनुभागों से प्राप्त रिपोर्ट को संकलित कर समेकित रिपोर्ट को राजभाषा विभाग,गृह मंत्रालय (भारत सरकार) को आनलाईन प्रेषित करना एवं उनकी एक प्रति भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (नराकास), लखनऊ को भी प्रेषित किया गया।

हिंदी दिवस समारोह एवं द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय (भारत सरकार) द्वारा सूरत (गुजरात) में 14 से 15 सितंबर, 2022 तक में आयोजित हिंदी दिवस समारोह एवं द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में संस्थान में राजभाषा का कार्य कर रहे श्री अरविन्द कुमार, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी एवं नोडल अधिकारी (राजभाषा) ने प्रतिभाग किया।

हिंदी दिवस समारोह एवं द्वितीय अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन, सूरत में प्रतिभाग

राजभाषा हिंदी पखवाड़ा–2022

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान में राजभाषा विभाग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा जारी दिशा–निर्देशानुसार दिनांक 14 से 29 सितंबर, 2022 हिंदी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। इस अवधि में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ जिसमें 19 सितंबर, 2022 को हिंदी निबंध लेखन प्रतियोगिता में संस्थान के वैज्ञानिक/तकनीकी/प्रशासनिक/शोध एवं संविदा वर्ग से 19 प्रतियोगियों ने प्रतिभाग किया, दिनांक 20 सितंबर, 2022 को आयोजित हिंदी काव्य–पाठ प्रतियोगिता में 18 प्रतियोगियों ने प्रतिभाग किया, दिनांक 21 सितंबर, 2022 को आयोजित यूनिकोड में हिंदी टंकण प्रतियोगिता में 42 प्रतियोगियों ने प्रतिभाग किया, दिनांक 24 सितंबर, 2022 को आयोजित हिंदी वाद–विवाद प्रतियोगिता में 21 प्रतियोगियों ने प्रतिभाग किया तथा 27 सितंबर, 2022 को वर्ष में हिंदी में सर्वाधिक कार्य प्रोत्साहन हेतु प्रतिभागियों का मूल्यांकन किया गया। वहीं दिनांक 23 सितंबर, 2022 को संस्थान कर्मियों में हिंदी भाषा शैली, रस, अलंकार, छंद आदि से सुसज्जित रचनाओं से परिचय कराने हेतु एक कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया जिसमें दिल्ली, बाराबंकी एवं लखनऊ से सम्मिलित कवियों ने अपनी विभिन्न रचनाओं को उपस्थित श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया।

पखवाड़ा का समापन दिनांक 29 सितंबर, 2022 को हुआ इस अवसर पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित प्रशासनिक शब्दावली पुस्तक से अंग्रेजी के शब्दों का हिंदी में अनुवाद किये गये शब्द पर आधारित एक प्रश्न–मंच प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। उपरोक्त आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में संस्थान के 48 प्रतियोगियों ने सफलता प्राप्त की जिन्हें नियमानुसार कार्यक्रम के समापन समारोह में सम्मिलित मुख्य अतिथि संस्थान के सेवानिवृत पूर्व प्रधान वैज्ञानिक एवं फसल सुरक्षा विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. अशोक कुमार मिश्रा ने पुरस्कृत किया एवं संस्थान की निदेशक महोदया ने प्रमाण–पत्र प्रदान कर सम्मानित किया।

हिंदी पखवाड़ा के दौरान हिंदी निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन

कवि सम्मेलन का आयोजन (23.09.2022)

हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह (29.09.2022)

राजभाषा पत्रिका का प्रकाशन

संस्थान की प्रकाशन समिति द्वारा राजभाषा पत्रिका उद्यान रश्मि वर्ष 2021 (अंक–1,2) का मई 2022 में ई–प्रकाशन किया गया। इसमें संस्थान के सभी अधिकारियों शोधकर्ताओं ने हिन्दी में रोचक एवं ज्ञानवर्धक लेखों द्वारा नई जानकारी प्रस्तुत की।

संस्थान की मुख्य गतिविधियों का झरोखा

भाकृअनुप
ICAR

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान

रहमानखेड़ा, पोस्ट-काकोरी, लखनऊ - 226 101
दूरभाष : (0522) 2841022-24, 2841026, मो. : 6306935633
ई-मेल : cish@icar.gov.in वेबसाइट : www.cish.icar.gov.in

केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
CENTRAL INSTITUTE FOR SUBTROPICAL HORTICULTURE
ISO : 9001-2015